श्रीकृष्णायनमः
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

तत्वार्थदीपनिबन्ध

व्रजभाषा टीका

शास्त्रार्थ प्रकरण

सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह।
तथात्वं येन संसिध्येत् तदर्थं व्यास उक्तवान्।।१।।
श्रीभागवतमत्यन्तं सर्वेषां सुखदायकम्।
तस्याऽपि तत्त्वं येनैव सिध्येदिति विचार्य हि।।२।।
अग्निश्चकार तत्वार्थदीपं भागवते महत्।
तच्चापि येन संसिध्येद् व्याख्यानं तन्निरूप्यते।।३।।

श्रीभागवततत्वार्थं प्रकटीकरिष्यन् प्रथमं शास्त्रार्थोपनिबन्धनलक्षणं मङ्गलम् आचरति नम इति.

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे।

भगवति जीवैः नमनमेव कर्तव्यं, न अधिकं शक्यम् इति सिद्धान्तः. ''किमासनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय, लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयमस्ति'' इत्यादिवाक्यैः परमकाष्ठापन्नं वस्तु नमस्यत्वेन निर्दिशति भगवत इति. पुरुषोत्तमाय इति अर्थः. तत्सिद्धये लोकवेदप्रसिद्धिम् आह तस्मै इति. मतभेदेन तस्य अन्यथाकल्पनाव्यावृत्त्यर्थम् आह कृष्णाय इति. सएव परमकाष्ठापन्नः कदाचित् जगदुद्धारार्थम् अखण्डः पूर्णएव प्रादुर्भूतः 'कृष्ण' इति उच्यते.

ननु पूर्वं साधनानि सिद्धान्येव सर्वत्र, तत्र अनधिकारेण साधनाभावे भगवानपि अवतीर्य किं करिष्यति? इति आशङ्कायाम् आह अद्भुतकर्मणे इति. भगवतः अद्भुतकर्मत्वम् अग्रे व्युत्पाद्यम् ''असाधनं साधनं करोति'' इत्यादि.

एवं साक्षाद्भगवत्वे हेतुम् उक्त्वा तस्य लीलाम् आह रूप इति.

रूपनामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः।।१।।

रूपनामविभेदेन यः क्रीडति, रूपनामविभेदेन यो जगत्, रूपनामविभेदेन यतो जगद् इति. अनेन क्रीडायां स्वातन्त्र्यम् उक्तम्. निर्लेपत्वाय आह एतादृशं जगद् यतः इति. एवं ज्ञानेन मुच्यन्ते इति सङ्क्षेपः।।१।।

'सुलोचन' व्रजभाषा टीका

परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रने सबन्के उद्धार करिवेकु अपनो निजस्वरूप प्रकट कियो तथा आगे होयवेवारे जीवन्को उद्धार करिवेकु महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायनजीके मुखद्वारा श्रीभागवतस्वरूपसों आप प्रगट भये. सो श्रीभागवतस्वरूप सब जीवन्कुं अत्यन्त सुखदायक हे. परन्तु श्रीमद्भागवतको ठीक-ठीक अर्थ कलिकालसों मलिनबुद्धिवारे जीव नाहीं जान सके हें ये विचारिकें ठीक-ठीक अर्थ जनायवेकु श्रीकृष्णके मुखाग्निरूप श्रीवल्लभाचार्यजीने 'तत्वार्थदीप'नामको ग्रन्थ रच्यो तथा वाकु भी स्पष्ट करिवेकु 'प्रकाश'नामसों प्रसिद्ध व्याख्यान भी आपनें ही बनायो. वा व्याख्यानकु भी स्पष्ट करिवे अर्थ

आचार्यकुलभूषण श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने 'आवरणभङ्ग'नामसों प्रसिद्ध व्याख्यान बनायो. साधारण भाषा जानिवे वारे बालकन्कु सुगम रीतिसों समुझायवके अर्थ अन्वयक्रमकु छोडिके निबन्ध एवं आवरणभङ्गके तात्पर्यको सङ्क्षेपसों या भषाग्रन्थमें वर्णन कियो हे.

श्रीवल्लभाचार्यजी ग्रन्थके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण करे हें एवं या मङ्गलाचरणमें ही सङ्क्षेपसों वेद-गीता-व्याससूत्र-श्रीभागवतको सिद्धान्त भी वर्णन करे हें. नमो भगवते इति . भगवानने जीवन्कुं सर्व पुरुषार्थ दिये हें ताके प्रत्युपकारमें जीवन्के आडीसूं भगवान्के अर्थ नमस्कार ही होय सके हें याके सिवाय भगवान्को प्रत्युपकार कछू भी जीव नाहीं करि सके हे–ये शास्त्रको सिद्धान्त हे. शास्त्रमें लिख्यो हे ''जिनके गरुडजी आसन बैठवेकु हे, कौस्तुभ मणि भूषण-अलङ्कार जिनको हे, लक्ष्मीजी जिनके स्त्री हें तथा जो स्वयं वाणीके पति हें तिनको आसन, आभूषण, धन, स्तुति आदि द्वारा जीव कहा सत्कार करेगो''. या प्रकारके बहुतसे वाक्य हें. तासों जीवन्कुं नमस्कार करिवे योग्य सबसों बडे देव पुरुषोत्तमही हें. पुरुषोत्तम वो ही हे जो वेदमें लोकमें प्रसीद्ध होय. अनेक वादीजनन्नें अपने-अपने मतमें पुरुषोत्तम कछु अन्य ही मान राख्यो हे परन्तु यथार्थ विचार कियो जाय तो कृष्ण ही पुरुषोत्तम हें. सबसे बडेसों भी बडो परब्रह्म जाकु कहे हें वो ही जगत्को उद्धार करिवेकों अखण्ड पूर्णरूपसों, जितनो हे उतनोही, समग्र प्रकट भयो तब 'कृष्ण' कहायो. यहां 'कृष्ण' शब्द परब्रह्मको वाचक हे. ''यस्मात् क्षरमतीतोहम् अक्षरादपि चोत्तमः, अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'' अर्थ : हे अर्जुन १.क्षर जो सम्पूर्ण भूत एवं २.अक्षरब्रह्म जाकी ज्ञानी उपासना करे हे–इन दोनोन्सों में उत्तम हुं. एवं लोक-वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसों प्रसिद्ध हुं. तथा भागवतमें ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' या श्लोकमें भी लिखे हें.

जेसे राजा अपने पुत्रनमें लडाई देखे हे तब स्वयं आपके क्रूर स्वभाव वारे पुत्रन्कुं दूर करिके शान्त स्वभाव वारे भोले-भोले पुत्रन्कुं अपने समीप राखे हे एसें ही दैवजीव हें सो भगवान्के शान्तरूप हें आसुर जीव हें सो भगवान्के अशान्तरूप हें. जब अशान्त आसुरजीव शान्त स्वभव वारे सूधे दैवजीवन्कुं अत्यन्त दुःख देवे लगे हें तब पुरुषोत्तम अत्यन्त करुणा करिके स्वयं पूर्ण अखण्डरूपसों ही वितने देशकी माया दूर करिकें वेसें ही प्रकट होय हें जेसें काष्ठके घिसवेसों विना अग्नि लाये काष्ठमेंसों ही अग्नि प्रकट हो जाय हे. तासों केवल धर्म रक्षाके ही अर्थ पुरुषोत्तम अवतार नाहीं हे. क्योंकि धर्म रक्षा तो अंशावतारद्वारा भी कर सके हें. परन्तु जब सूर्यको उदय होवे हे तब दीपककी आवश्यकता नाहीं रहत हे क्योंकि दियाके कामकु सूर्य ही करि देत हे या ही रीति सों जब कृष्ण परब्रह्म प्रकट भये तब अंशावतारके भी कार्य आप द्वारा ही ह्वे गये. तासों कितनेक मनुष्यन्कुं अंशके कार्य देखिके कृष्णमें अंशावतारको धोखा हो जावे हे. सो ये मोह इन्द्रादिकन्कों भी भयो हतो. तब भगवान्ने गोवर्द्धन धारणादि लीलाकरिकें उनको अज्ञान दूर कर्यो हतो. और तो कहा वसुदेवजी भी एक समयमें नारदादिक ऋषिन्सों अपनो कल्याण होयवेको उपाय पूछवे लगे हते तब नारदजीने कही ''हे वसुदेवजी हम सब ऋषि लोग अपनो कल्याण अर्थ जा कृष्णके दर्शन करिवेकों आवे हें वे पूर्ण ब्रह्म कृष्ण तुम्हारे पुत्र भावकुं प्राप्त होयके सर्वदा समीप रहे हें. तुम्हारो सदा कल्याण ही होय रह्यो हे'' इत्यादि. तथा गीतामें श्रीकृष्णनेंही स्वयं आज्ञा करी हे ''अवजानन्ति मां मूढा मानुषींतनुमाश्रितम्''. अर्थात् अज्ञानी मनुष्य मेरे सदानन्द मूर्तिरूप परम भावको नाहीं जाने हें तासों मोकुं वे अज्ञानी लोग मेरे शरीरकु भी अन्य मनुष्यन्के शरीरन्की तरह रुधिर-मांसादिकन्को बन्यो जाने हें. इत्यादि शतशः वाक्यन्सों श्रीकृष्णको स्वरूप आनन्दरूप ही हे. तथा आपके गुण-कर्म-स्वभाव भी आनन्दरूप ही हें. जेसे दियाको प्रकाश दियासों अलग नाहीं होवे हे एसे गुण-कर्म-स्वभाव भी भगवानसों न्यारे नाहीं हें. कहीं-कहीं अंशावतारमें 'कृष्ण'शब्दको प्रयोग आवे हे तहां गौण समुझनो. मुख्य 'कृष्ण'नाम उनको ही हे जो स्वयं कृपा करिके जगत्को विना साधन उद्धार करिवेंके अर्थ आप्तकाम अखण्ड पूर्ण परब्रह्म अग्निकी तरह माया दूर करिके अपनो रूप दिखावे हें. यद्यपि अंश-कलावतार भी उद्धार करे हें परन्तु धर्मादि साधन बतायकें उनके द्वारा उद्धार करे हें. क्योंकि गीतामें लिखे हें ''धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे''. यामें युगावतारको धर्मस्थापन मात्र प्रयोजन लिख्यो हे. पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र तो अद्भुत कर्म करिवेवारे हें. काम क्रोधादिक जो मोक्षके साधन नाहीं हें उनकुं भी साधन बनायके अपने अलौकिक सामर्थ्य करिकें गोप, गोपी, कंस, गो, मृग, पशु, पक्षी आदिको उद्धार कियो. श्रीकृष्ण जो परब्रह्म नाहीं होते तो विनासाधन ज्ञानरहित जीवन्को उद्धार नाहीं करि सकते. यद्यपि कितनेक लोग कर्मकुं ही ईश्वर माने हें.

कितनेक ईश्वरकों नाहीं माने हें. वे लोग कहे हें : पदार्थन्के स्वभावसों ही जगत्को उत्पत्ति-नाश होतो जावे हे. उनके मतमें स्वभावही गुप्त रीतिसों ईश्वर भयो. ओर तो कहा कारू लोग भी विश्वकर्माकों ही ईश्वर मानत हें. ओर सब ही अपने-अपने ईश्वरकों नित्य-शुद्ध-बुद्धस्वरूपही माने हें ये बात कुसुमाञ्जलिविवेकमें उदयनाचार्यने भी लिखी हे. परन्तु ये ईश्वरके एक-एक देशके मानिवेवारे हें. जेसे बहुत अन्धे पुरुष हाथीके पास जावे हें तब कोईके हाथमें हाथीकी सूड़ आवे हे वो वाही घाटको हाथीकु जाने हे. जाके हाथमें पांव आवे हे वो हाथीको मोटो थम्भा जेसो जाने हे, जाके हाथमें पूंछ आवे हे वो लम्बो डण्डा जेसो जाने हे या रीतिसों एक-एक अङ्गगकुं हाथी मान बेठे हें. समग्र हाथीकों नाहीं जाने हें. याही प्रकार परमात्माके एक-एक देशकों यथाशक्ति ऋषि आदिक वर्णन करे हें. वेदमें सृष्टि करनो ब्रह्मको लक्षण लिख्यो हे ताको वर्णन करे हें.

रूपनाम इति. रूप-नामके भेद करिके जो क्रीडा करे हे, रूप-नामके भेद करिके जो जगत् बन जावे हे, रूप-नामके भेद करिके जासों जगत् प्रकट होवे हे अर्थात्; जगत्में जितने पदार्थ हें उन सबन्को रूप बनायके तथा उनके नाम भी बनायके रूप तथा नामके भेदसों श्रीकृष्ण ही क्रीडा कर रहे हें. पदार्थ स्वरूप तथा शब्द स्वरूप दो प्रकारको जगत् हे सो भी आप ही भये हें. अर्थात् कार्य भी आप ही हें. मृत्तिकासों जेसे घट बने हे एसें नाम तथा अर्थ रूप करिकें आपसों जगत् बन्यो हे. जगत्के उपादानकारण भी आप ही हें. अपने स्वरूपके सिवाय क्रीडामें अन्य कोई पदार्थकी अपेक्षा नाहीं हे. अर्थात् क्रीडाके पदार्थ तथा क्रीडा करिवेवारे आप ही स्वयं हें. या ही सों आप अपनी क्रीडामें परम स्वतन्त्र हें. आप श्रीभगवान्के सिवाय कोई पदार्थ नाहीं हे जामें आप आसक्त होंय. यासों आप निर्लेप हें. या रीतिके (भगवत्स्वरूपके) ज्ञानसों मोक्ष होवे हे. ये ही सर्वशास्त्रन्को निचोड हे. श्रीवल्लभाचार्यजी ग्रन्थके आदिमें एसी लीला करिवे वारे श्रीकृष्णचन्द्रकों नमस्कार करे हें।।१।।

विस्तरेण वक्तुं प्रतमतः अधिकारिणम् आह सात्त्विका इति.

सात्त्विका भगवद्भक्ताः ये मुक्तावधिकारिणः।।
भवान्तसंभवा दैवात् तेषामर्थे निरूप्यते।।२।।

स्वभावप्रकृत्यपेक्षया अधिकं विहितम् अलौकिकं ये कुर्वन्ति ते सात्त्विकाः. तत्रापि भगवत्सेवकाः सेवापराः. तत्रापि ये निष्कामाः. तएव मुक्ताधिकारिणः. तत्रापि ईश्वरेच्छया अन्तिमजन्मनि जाताः शरीरं गृहीतवन्तः. तेषां यथा अन्तिमत्वं सिद्ध्यति तथा उपायो निरूप्यते इति अर्थः।।२।।

मुक्तिके अधिकारी जीवको स्वरूप कहे हें. जे जीव अपने स्वभाव तथा आचरणसों भी अधिक शास्त्रोक्त अलौकिक कार्यकुं करते रहें, भगवत्सेवामें परायण रहें, कोई कामना नाहिं राखें, भगवान्की इच्छा करके अन्तिम जन्म जिनको भयो होय, अर्थात् जिन जीवन्कुं भगवान् आगें जन्म नाहीं दियो चाहें–एसे जीव मुक्तिके अधिकारी हें. श्रीवल्लभाचार्यजी या ग्रन्थमें एसो उपाय वर्णन करे हें जाके करिवेसों फिर जीवको जन्म न होय.

तात्पर्य ये हे आछी रीतिसों कह्यो भयो भी सिद्धान्त अधिकारीके हृदयमें स्थिर नहीं होवे हे. याहीसों व्याससूत्रन्में तथा भागवतादिकन्में अधिकारीके लक्षण वर्णन करे हें तथा गीताजीमें "इदं ते नातपस्काय" इत्यादि श्लोकन्में अनधिकारीकुं ज्ञान देवेको निषेध लिख्यो हे तेसें यहां भी सात्विक अधिकारीन्के अभिमत लक्षण वर्णन करे हें. देवतान्को यजन-पूजन करनो सात्विक जीवन्को स्वभावकार्य हे. वाकी अपेक्षा भी अधिक अच्छे कार्यकुं करे. अर्थात् १करे कर्मन्कुं भगवान्के अर्पण करते रहे तथा जहां सत्पुरूष इकट्ठे होयकें भगवान्के पराक्रमकुं जतायवेवारी तथा हृदयकर्णन्कुं रसदेवेवारी भगवत्कथा वर्णन करते होंय वहां जायके २भगवत्कथाकुं सर्वदा सुनते भये प्रशंसा करते रहें तथा द्रव्य-देह करकें भगवत्सेवा करते रहें तथा ३जिनके हृदयमें कोइ कामना नाहीं होय–कामना हे सो अधिकारीको दोष हे अर्थात् जा पुरुषमें बुद्धि, आयुष्य, दोषन्को अभाव–ये तीनों वस्तु होंय वाकु अधिकारी समुझनो. इतने गुण होंय ओर भगवान्की भी जा जीवको शीघ्र उद्धार करिवेकी इच्छा होय; केवल गुरुरूपी पार लगायवेवारे विना जा जीवकी मनुष्यदेहरूपी नाव संसारसागरके पार नहीं लागती होय; एसे जीवकी भगवान्में द्रढ आसक्ति सम्पादन करिकें शीघ्र उद्धार करिवेके अर्थ श्रीआचार्यचरणन्नें ये ग्रन्थ प्रकट कियो हे।।२।।

वक्ता स्वस्य तादृशज्ञानप्राप्तौ प्रकारम् आह भगवच्छास्त्रमाज्ञाय इति.

भगवच्छास्त्रमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः।।
यदुक्तं हरिणा पश्चात् सन्देहविनिवृत्तये।।३।।

अन्यथा अनाप्तत्वं स्यात्. भगवच्छास्त्रं भागवतं, गीता, पञ्चरात्रञ्च इति. तस्य सर्वतो ज्ञानम्. भगवत्कृपादिना इति शेषः. तथापि आपाततः प्रतिपन्नं न प्रमाणमिति विचारम् आह पुनः पुनः निश्चयानन्तरमपि. ननु शतशोऽपि विचारितं जीवबुद्ध्या अप्रमाणं कदाचिद् भवतीति तदर्थम् आह यदुक्तम् इति. हरिणा सर्वदुःखहर्त्रा श्रीजगन्नाथेन श्रीपुरुषोत्तमस्थितेन मोहकसर्वशास्त्रोत्पत्यनन्तरं यन्निर्धारकवाक्यम् उक्तं तदपि ज्ञात्वा इति।।३।।

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञा करे हें : हमनें श्रीगीताजी, भागवत, नारदपंचरात्र इनको अर्थ भगवत्कृपा करिकें आछी रीतिसुं जान्यो. फिर वारंवार विचार करिके तात्पर्यको निश्चय भी कियो. तदुपरान्त मोहकशास्त्र देखवेसों जे जीवन्कों अनेक प्रकारके संदेह भये तिनके दूरि करिवेके अर्थ श्रीजगन्नाथरायजीनें जो वचनामृत आज्ञा कियो वाके उपर द्रढ विश्वास राखिके तथा दैवी जीवन्कुं भी ये सिद्धान्त जतायवेके अर्थ या ग्रन्थकु प्रकट करे हें।।३।।

तदेव आह एकं शास्त्रम् इति.

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव।।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।४।।

अत्र आख्यायिका पारम्पर्यादेव अवगन्तव्या. देवकीपुत्रेण गीतं गीता. गीतायां भगवद्वाक्यान्येव शास्त्रम् इति अर्थः. वेदानामपि तदुक्तप्रकारेणैव अर्थनिर्णयः. उपास्यनिर्धारम् आह एको देवो इति. मूलभूतो अयम् इति अर्थः. सर्वदा स्मरणार्थं साधनम् आह मन्त्रोऽप्येकः इति. कर्तव्यम् आह तस्य इति. न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्यः इति आह देव इति. सेवैव कर्तव्या. शास्त्रम् अवगत्य मनोवग्देहैः कृष्णः सेव्यः इति अर्थः।।४।।

श्रीजगन्नाथरायजीनें जो ''एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्'' इत्यादि श्लोक आज्ञा कियो हे ताकी कथा या रीतिसों प्रसिद्ध हे. मायावादी तथा ब्रह्मवादी दोनों उत्कलदेशके राजाकी सभामें विवाद करिवे लगे.
विवाद करते सात दिन होय गये परन्तु कोइको भी जय नाहीं भयो. तब ये निश्चय भयो जो श्रीजगन्नाथरायजीके मन्दिरमें प्रश्न लिखिकें पत्र धर देनों चहिये. तब वा ही दिन सायंकालके समय चार प्रश्न एक पत्रमें लिखिकें सबन्के समक्ष मन्दिरमें पत्र धरि दियो. प्रातःकाल वा पत्रमें एक श्लोक लिख्यो निकस्यो. सो श्लोक ''एक शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्'' इत्यादि मूलमें लिख्यो हे. ताको अर्थ. देवकी पुत्र श्रीकृष्णकी आज्ञा करी जो गीता हे वो ही एक शास्त्र हे. देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ही एक देव हें. देवकीपुत्र श्रीकृष्णके जितने नाम हें वे ही मन्त्र हें. देवकीपुत्र श्रीकृष्णकी सेवा हे वो ही कर्म हे.

या श्लोकमें चारों प्रश्नन्को उत्तर लिख्यो आय गयो. सभासदन्नें या उत्तरकुं मानि लियो परन्तु मायावादीन्ने कही जो ये श्लोक तो तुमारो बनायो भयो हे. तब तो राजाने वा दिन मायावादीके ही आगें वानें कही वा रीतिसों पत्र मन्दिरमें घरके वाके समक्ष कपाट बन्ध किये. प्रातःकाल मायावादीके ही आगें कपाट खोले. पत्र मायावादीके आगें ही लायके बांच्यो. वामें ये श्लोक निकस्यो ''यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम्, यः पुमान् श्रीहरिं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यरेतसम्''. अर्थ : जो पुरुष पिताके साथ द्वेष करे हे वाकुं अन्यके वीर्यसों पैदा भयो जाननों. जो पुरुष श्रीहरिसों द्वेष करे हे वाकुं नीचवर्णके वीर्यसों उत्पन्न भयो जाननों. श्लोक सुनत ही मायावादी तो लज्जित ह्वे गयो. राजाने मायावादीकी माताकुं बड़ो भय देके पूछी तब वानें कही जो ''म्लेच्छ धोबीसों मेरे गर्भ रहि गयो हतो''. फेरि राजाने वाकुं अपने देशमेंसों निकास दियो. ये इतिहास जगन्नाथपुरीमें अभी तक परम्परासों प्रसिद्ध चल्यो आवे हे।।४।।

एवं स्वयं ज्ञात्वा लोकज्ञापनार्थं शास्त्रं कथयन् बुद्धिसौकर्यार्थं प्रकरणत्रयम् आह इत्याकलय्य इति.

इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः।।

श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति।।५।।

सततम् इति मध्ये विरोधिज्ञानाभावः. शास्त्रार्थो गीतार्थः. सर्वस्यापि ज्ञानेदेः निर्णये द्वितीयः. असम्भावना-विपरीतभावनानिवृत्त्यर्थं द्वितीयम्. शास्त्रार्थस्य सङ्क्षेपरूपत्वाद् विस्तारार्थं भागवतरूपं तृतीयं प्रकरणम् यत्र भागवतं निरूप्यते. चकरात् मीमांसाद्वयभाष्यं, प्रकरणानि, भागवतटीका च गृहीता. त्रयम् एतद् उपदेशन्यायेन कथयामि।।५।।

या प्रकार स्वयं ज्ञान प्राप्त करके लोगन्कों बतायवेके अर्थ बोधसौकर्यार्थ तीन प्रकरणकी रचना करे हें. समुझिवेमें सुगमता पडे याके अर्थ या निबन्धग्रन्थमें तीन प्रकरण राखें हें. प्रथम शास्त्रार्थप्रकरण हे; तामें श्रीगीताजीको अर्थ हे. दूसरो सर्वनिर्णयप्रकरण हे; तामें असम्भावना-विपरितभावना दूरि करिवेके अर्थ सब पदार्थन्को निर्णय कियो हे. तीसरो श्रीमद्भागवतरूप प्रकरण हे; तामें श्रीभागवतके शास्त्रार्थ, स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ तथा अध्यायार्थ को निरूपण हे।।५।।

परिभाषाम् आह वेदान्ते इति सार्द्धेन.

वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा।।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।
त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयात्र हि।।६।।

निर्गलितवस्तुज्ञापकं लिङ्गं 'ब्रह्म'इत्यादिपदं तत्र-तत्र सिद्धं मयापि परमकाष्ठापन्नवस्तुबोधार्थं तत्तत्प्रकरणे वक्तव्यम् इति अर्थः।।६।।

ग्रन्थके आदिमें सङ्केत कहे हें श्रीमत्परमकाष्ठापन्न परमेश्वरको वेदान्तमें 'ब्रह्म' नाम प्रसिद्ध हे. स्मृतिमें 'परमात्मा' नाम हे. श्रीभागवतमें 'भगवान्' नाम हे. या ग्रन्थके तीनों प्रकरणमें क्रमशः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् को निरूपण होयगो.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हें हम भी या ही रीतिसों शास्त्रार्थप्रकरणमें 'ब्रह्म' कहेंगे, सर्वनिर्णयप्रकरणमें 'परमात्मा' कहेंगे, श्रीभागवतरूप प्रकरणमें 'भगवान्' नामसों वर्णन करेंगे।।६।।

अस्मिन् शास्त्रे परिभाषाम् उक्त्वा प्रमाणम् आह वेदाः इति.

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।।७।।

शब्दएव प्रमाणम्. तत्रापि अलौकिकज्ञापकमेव. तत् स्वतःसिद्धप्रमाणभावं प्रमाणम्. वेदाः सर्वएव काण्डद्वयस्थिता अर्थवादादिरूपाअपि. स्मृतित्वेन कृष्णवाक्यानि वेदत्वेऽपि पृथग् उक्तानि. व्याससूत्राणि चकारात् जैमिनिसूत्राणि च. एवकारेण व्याससूत्राविरोधेनैव तदङ्गीकरणम्. हि युक्तश्च अयम् अर्थः, उपजीव्यत्वात्. व्यासस्य समाधिभाषा भागवतम्. तत्रापि यन् न लौकिकरीत्या वदति. यथा ''अथौषस्युपवृत्तायाम्'' (भाग.पुरा.१०।७०।१) इत्यादि. नापि परमतरीत्या ''श्रुतं द्वैपायनमुखात्'' (भाग.पुरा.६।१४।९) इत्यादि. यावत् समाधौ स्वयम् अनुभूय निरूपितं सा समाधिभाषा. एतच्चतुष्टयम् एकवाक्यतापन्नं प्रमाजनकम् इति अर्थः।।७।।

या भगवत्सिद्धान्तके दृढ करिवे वारे चारि प्रमाण हें. १. संहिता-ब्राह्मण सहित चारि वेद, २. श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णके वचनामृत ३. श्रीवेदव्यासजीके रचित ब्रह्मसूत्र ४. श्रीमद्भागवतमें व्यासजीनें समाधि चढायकें अनुभव करिके जो वाणी कही हे वो समाधिभाषा चतुर्थ प्रमाण हे. इन चारों प्रमाणन्के मेलसों जो सिद्ध होय वाहीकों ठीक समुझनो. प्रत्यक्ष, अनुमान, एतिह्य तथा शब्द इन चारि प्रमाणन्में शब्द प्रमाण हे सो सबन्सों बडो हे. शब्दप्रमाणमें भी अलौकिक पदार्थको जतायवे वारो जो

शब्द हे सो ही मुख्य प्रमाण हे. एसो शब्द वेद ही हे. तासों वेद ही मुख्य प्रमाण हे. लोकसुं नाहीं जान्यो जाय एसो जो धर्म वाकुं जतायवे वारो वेद ही हे. वेदोक्त जो

धर्म तथा वेदोक्त जो ब्रह्म को स्वरूप हे वाकुं अन्य प्रमाण नाहिं जताय सके हें. वेदके वाक्यमें कोई स्थानमें जो अयोग्यता प्रतीत होवे हे सो जानवे वारेकी बुद्धिके दोषसों प्रतीत होवे हे. जेसे वेदमें लिख्यो हे ''ग्रावाणः प्लवन्ते'', अर्थ : पाषाण तरते हें; इत्यादि वाक्यनकुं भी झूठे नहीं मानने. क्योंके वेद हे सो भूत-भविष्यत्-वर्तमानकालके जानिवे वारे इश्वरके वाक्य हें. तासों आगें होयवे वारे वृतान्तको भी वेदमें वर्णन कियो हे. रामावतारके समयमें समुद्रमें सेतु बंध्यो तब पाषाणके तिरवेको सबन्को प्रत्यक्ष अनुभव भयो. या ही प्रकार वेदके अन्य वाक्यनकुं भी यथार्थ ही मानने. अपनी मलिन बुद्धिके अनुसार वेदके वाक्यन्को उलटो अर्थ नहीं करनो. या सिद्धान्तमें अर्थवादकुं भी प्रमाण माने हें. गीताजीमें भी भगवान्के वाक्य हें तासों गीताजी वेदरूप ही हें. परन्तु अर्जुनके अधिकारानुसार कहे गये हें तासों स्मृतिरूप हें. ''स्मृतेश्च'' या व्याससूत्रमें स्मृतिकी प्रमाणता लिखी हे. विष्णुपुराणमें ''वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेषु न संशयः'' या वाक्यमें पुराणन्में सब वेद स्थित हें ये बात लिखी हे. तासों सब पुराणन्में श्रीभागवत प्रमाण हे. तामें भी समाधिभाषा परम प्रमाण हे. श्रीभागवत हे सो भी भगवद्वाक्य हे तासों वेदरूप ही हे. परन्तु स्त्री-शूद्रादिकन्को उद्धार करिवेके अर्थ पुराणमें गणना कियो गयो हे।।७।।

ननु चतुर्णां क्व उपयोगः? एकेनैव चरितार्थत्वात् च इति आशङ्क्य आह उत्तरम् इति.

उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्।।

अविरुद्धं तु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा।।

उत्तरोत्तरं पूर्व-पूर्वस्य सन्देहवारकं प्रकर्षेण कीर्तितम्. यथा ''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता'' (श्वेता.उप.३।१९) इति अत्र किं प्राकृतपाणिपादरहितं ब्रह्म आहोस्वित् सामान्यनिषेधः? इति सन्देहे ''सर्वतः पाणिपादान्तम्'' (भग.गीता१३।१३) इत्यादि गीतावाक्यं निर्णायकम्. तथा गीतायां ''नित्यः सर्वगतः स्थाणुः'' (भग.गीता२।२४) ''ममैवांशो जीवलोके (भग.गीता१५।७) इत्यादिषु सन्देहे सूत्रैः निर्णयः ''उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्'' (ब्रह्मसू.२।३।१९) इत्यादिभिः. तथा ''जन्माद्यस्य यतः'' (ब्रह्मसू.१।१।२) इति सन्देहे 'अन्वयव्यतिरेकतः' इति भागवतेन निर्णयः. एतदविरोधेनैव मन्वादीनां प्रामाण्यम् आह अविरुद्धम् इति.

चार प्रमाण मानिवेको कारण ये हे जो आगेको प्रमाण पहिले प्रमाणके सन्देह दूरि करिवे वारो हे. जेसे के वेदको सन्देह गीताजीसों दूर करनो. वेदमें लिखे हें ''अपाणिपादो जवनो गृहिता'' अर्थःब्रह्मके पांव नाहीं हें तोहु चले हे तथा हाथ नाहीं हें तोहु ग्रहण करले हे. या श्रुतिमें सन्देह होय हे के ब्रह्मके हाथ-पांव सर्वथा ही नहीं हें अथवा अलौकिक हाथ-पांव हें? अर्थात् लोकमें जेसे हाथ-पांव होय हें तेसे हाथ-पांव नाहीं हें तासों वेदमें बिना हाथ-पांव वारो कह्यो हे? या सन्देहको निर्णय श्रीगीताजीमें लिख्यो हे. ''सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्''. अर्थ : परमात्माके श्रीहस्त तथा चरणारविन्द सर्व ठिकाने विद्यमान हें. तथा हस्त-चरणन्को अन्त भी सर्व ठिकाने वर्तमान हे. या गीतावाक्यसों स्पष्ट जान्यो जाय हे के परब्रह्म परमात्माके लौकिक हाथ-पांव नहीं हें. क्योंके लौकिक हाथ-पांव होंय तो सर्व ठिकाने नहीं रहि सकें. तासों परमात्माके हस्त-चरण अलौकिक हें एसें समुझनो चहिये.

एसें ही जब गीताजीमें हु सन्देह होय ताको निर्णय व्याससूत्रन्सों करनो. जेसे गीताजीमें लिख्यो हे ''नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः'' अर्थ : जीव नित्य, व्यापक, चेष्टा रहित, अचल तथा सनातन हे. तथा दूसरे ठिकाने गीताजीमें लिख्यो हे ''ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातनः'' अर्थःजीवलोकमें जो जीव हे सो मेरो ही सनातन अंश हे. अब इन दोउ वाक्यन्के देखिवेसों सन्देह होवे हे के जीवकु यदि व्यापक माने हें तो वो अंश नहीं होय सके हे. याको निर्णय ''उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्''

(ब्रह्मसूत्र२।३।१९) या व्याससूत्रसों होवे हे. या सूत्रको अर्थःजीव उत्क्रमण करे हे अर्थात् या देहसों इन्द्रियन्के छिद्रमें होयके निकसे हे तथा ये जीव गमन करे हे तथा आगमन करे हे. अर्थात् अन्य लोकन्में जावे हे तथा अन्य लोकन्सों यहां आवे हे. या सूत्रसों स्पष्ट जान्यो जाय हे के जीव अंश हे व्यापक नाहीं हे. जीवकु यदि व्यापक मानें तो जायवो-आयवो नाहीं बन सके. आकाश, जेसे, व्यापक हे तासों आकाशको जायवो-आयवो नाहीं मान्यो जाय हे. ओर गीतामें जीव व्यापक हे एसें जो लिख्यो हे सो ताको निर्णय आगे ''व्यापकत्व श्रुतिस्तस्य'' या श्लोकमें लिखेंगे.

याही रीतिसों व्याससूत्रमें लिख्यो हे के ''जन्माद्यस्य यतः'' (ब्रह्मसू.१।१।२)) अर्थःब्रह्म हे सो जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-नाशके करिवे वारो हे. यामें सन्देह होय हे के जगत् हे सो माया सहित ब्रह्मको बनायो भयो हे अथवा शुद्ध ब्रह्म ही या जगत्को कारण हे? शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को बनायवे वारो हे ताको निर्णय ''अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा'' (भाग.पुरा.२।९।३५) श्लोक सों होवे हे. अर्थःब्रह्मको जगत्में अन्वय हे जेसे मृत्तिकाको घटमें अन्वय हे. अर्थात् जितने घड़ा हें उन सबमें मृतिका प्रविष्ट होय रही हे. घड़ाको कोई अंश एसो नाहीं हे जामें मृतिका नहीं होय–ये ही मृत्तिकाको घटमें अन्वय हे. या ही प्रकार जगत्में कोई अंश एसो नहीं हे जामें ब्रह्म प्रविष्ट नहीं होय. अर्थात् सत्-चित्-आनन्दरूप ब्रह्म जगत्में जितने भी छोटे-बड़े पदार्थ हें उन सबमें विद्यमान हे. जेसें घड़ामें ''ये घड़ा हे'' ये जो अनुभव हे याहीसों 'अस्ति'को (अर्थात् ब्रह्मके सत् धर्मको) अनुभव कहे हें. घड़ाकी ज्ञानमें आयवेकी ज्यो सामर्थ्य हे सो ब्रह्मको 'चित्' धर्म हे. याकों 'भाति' कहे हें. घडामें जो आछो हे सो आनन्द हे याहीसों 'प्रियम्' कहे हें. याही रीतिसों जगत्के सर्व पदार्थमें ''पटोऽस्ति'' ''पटो भाति'' ''पटः प्रियम्'' या प्रकारसों सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मको अनुभव होवे हे तासों सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त हे–ये ही ब्रह्मको जगत्मे समन्वय हे. या ही प्रकार ब्रह्मको जगत्के साथ व्यतिरेक भी हे जेसें घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक हे. अर्थात् कुण्डा, बटेरा आदि जितने पदार्थ हें उनमें भी रहे हे तथा इन सब पदार्थन्सों अधिक भी बहुत मृत्तिका हे–ये ही घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक हे. केवल अन्वय वारो होय सो कारण नहीं होय हे (क्योंके) जगत्को भी जगत्में अन्वय हे; केवल व्यतिरेक वारो होय सो भी कारण नहीं होय हे (क्योंके) खपुष्पको जगत्के साथ व्यतिरेक हे किन्तु अन्वय-व्यतिरेक ये दोनों जाके घटते होंय वो कारण होवे हे. यासों निश्चय होय हे के शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को कारण हे. ''जन्माद्यस्य यतः'' ''शास्त्रयोनित्वात्'' इन सूत्रन्में भी शुद्ध ब्रह्म जगत्के प्रति कारण हे या बातको वर्णन हे. वेद, गीता, व्याससूत्र तथा भागवतकी समाधिभाषा इन चारि प्रमाणन्सों मिलते भये ही मनुस्मृति आदि प्रमाण हें.

वेदादिना अविरुद्धमेव मन्वादिकं प्रमाणम्. क्वचित् संवादः क्वचिद् विरोधः इति उभयसम्भवे अप्रमाणमेव इति आह एतद्विरुद्धम् इति.

एतद्विरुद्धं यत् सर्वं न तन्मानं कथञ्चन।।८।।

जा शास्त्रमें इन चारों प्रमाणन्सों कितनीक मिलती बातें होंय तथा कितनीक बातें बिना मिलती भी होंय वा शास्त्रकी पूर्णरीत्या प्रमाणता नहीं हे. जहां तांई या जीवकु ब्रह्मको ज्ञान नहीं होय तहां तांई इन चार प्रमाणन्की एकवाक्यतानुसार ही निर्णय करनो. पूरो ब्रह्मज्ञान होय जाय ता पीछे तो वाणिमात्र प्रमाण हे. क्योंके ब्रह्मज्ञानीकुं जेसें सब पदार्थ भगवान्के रूप दीखे हें तेसें ही सब शब्द भगवान्के नाम दीखें हें।।८।।

एवं पूर्णज्ञानोदयावधि यद् ग्राह्यं प्रमाणत्वेन तन् निरूप्य तदनन्तरं यत् प्रमाणं तद् आह अथवा इति.

अथवा सर्वरूपत्वात् नामलीलाविभेदतः।।
विरुद्धांशपरित्यागात् प्रमाणं सर्वमेव हि।।९।।

वाङ्मात्रमेव प्रमाणम्, अर्थस्य भगवद्रूपत्वात्. तदेव आह सर्वरूपत्वात् इति. रूपलीलावत् नामलीलाया विभेदानां वक्तव्यत्वात् नानाविधानि वाक्यानि प्रवृत्तानि. विरुद्धवाक्यत्वेनैव परस्परं भासमानेषु अविरोधप्रकारम् आह

विरुद्धांशपरित्यागाद् इति. विरुद्धांशपरित्यागो द्वेधा वक्तव्यः १भगवत्सामर्थ्येन अलौकिकप्रकारेण २भगवतः सर्वरूपत्वेन वा. अतो युक्तएव अविरोधः।।९।।

या तरेहसुं जहां तांई पूर्ण ब्रह्मज्ञान नहीं होय तहां तांइ व्यवहारसिद्धिके अर्थ चार प्रमाण माननें. अब जहां एक ही भगवान्के स्वरूपको शास्त्रके कोई वाक्यमें शिव रूपसों वर्णन हे, कोई वाक्यमें विष्णु रूपसों वर्णन हे, कोई ठिकानें निराकार रूपसों वर्णन हे, कोइ ठिकानें साकार रूपसों वर्णन हे–या प्रकारके अनेक विरोध शास्त्रमें दीखवेमें आवे हें तहां भगवान्को अलौकिक सामर्थ्य जानिके अथवा भगवान् सर्वरूप होय सके हे एसें जानिके विरोध दूर करनो. भगवान्ने अपनी अलौकिक सामर्थ्यद्वारा छोटेसे अपने स्वरूपमें आखे ब्रह्माण्डके दर्शन यशोदा माताकुं कराये हें या ही प्रकारसुं कंस मामाजीकी सभामें भगवान्ने अपनी सर्वरूपता दिखाई हे. वहां मल्लन्कुं वज्रसे दीखे हें, स्त्रियन्कुं कामदेव दीखेहें, वसुदेव–देवकीकुं बालक दीखे हें, कंसकुं कालरूप दीखे हें. एसे ही अन्य ठिकानें भी समुझ लेनो. सत्य युगमें तो धर्ममें सन्देह ही नहीं होतो हतो।।९।।

उक्तमानचतुष्टयविरोधे मन्वादिस्मृतीनाम् अप्रामाण्यमेव इति उक्तम्, तन् न युक्तम् ''यद्वै किञ्चन मनुरवदत् तद् भेषजम्'' (तैत्ति.सं.२।२।१०।२) इति श्रुतेः मन्वादीनाम् उक्तमानविरोधेऽपि प्रामाण्यस्य अवश्यवाच्यत्वाद् इति आह द्वापरादौ तु इति.

द्वापरादौ तु धर्मस्य द्विपरत्वाद् द्वयं प्रमा।।
विरुद्धवचनानां च निर्णयानां तथैव च।।१०।।

चोदनाविषयत्वेन अवश्यकर्तव्यताकत्वेन अभिमतो अर्थो अत्र 'धर्म'शब्देन उच्यते. तस्य द्वे श्रुति–स्मृती उभेऽपि परे प्रमापिके यस्य तादृशत्वात् द्वयं श्रुतिः तत्संवादिनी असंवादिनी च मन्वादिस्मृतिश्च एतद् द्वयमपि प्रमा प्रमाणम् इति अर्थः. यद्वा पूर्वोक्तधर्मस्य उक्तरीत्या द्विपरत्वात् श्रुतिसंवादिनि असंवादिन्यपि स्मार्ते धर्मे कर्तव्यताज्ञानं प्रमा इति अर्थः. विरुद्धयोः अविरोधख्यापनार्थं साम्प्रतं लौकिकं दृष्टान्तम् आह विरुद्धवचनानाम् इति. यथा स्मृतिवाक्यानि परस्परं विरुद्धानि स्मृतिव्याख्यानकारैः अविरोधप्रकारेण निर्णीयन्ते तथा निर्णयानामपि परस्परविरुद्धानां वैष्णवस्मार्तादिभेदेन अविरोध इति अर्थः।।१०।।

पूर्वमें कहे गये चारि प्रमाणन्सों विरोध होयवे पर मनु आदि स्मृतिन्कुं प्रमाण नाहीं माननी एसे जो कही सो ठीक नाहीं हे क्योंके श्रुतिमें ही कह्यो हे जो मनुने जो कछु कह्यो हे सो औषधकी भांति कल्याणकारी हे. तासुं उपर्युक्त चारि प्रमाणन्सों विरोध होयवे पर भी मनु आदि स्मृतिन्कुं प्रमाण माननी–एसे जो कोई कहे तो वाको समाधान द्वापरादौ तु या श्लोकसुं करत हें.

अर्थ : द्वापरके प्रारम्भमें धर्मके श्रुतिपरक तथा स्मृतिपरक या तरेहसुं द्विपरक हो जायवेसुं अवश्यकर्तव्य–शास्त्राज्ञारूप जो धर्म वाके विषयमें श्रुति तथा स्मृति दोउ प्रमाण हें. या ही प्रकारसुं परस्पर विरोधी वाक्य तथा निर्णय में दोउ प्रकारके वाक्य तथा दोउ प्रकारके निर्णय हु प्रामाणिक हें.

द्वापरयुगमें मनुष्यकी बुद्धि मलिन होयवेसों धर्ममें सन्देह भयो. तब श्रुति–स्मृति दो प्रमाणन्के द्वारा धर्मको निर्णय भयो. या विषयमें मत्स्यपुराणके प्रमाण आवरणभङ्गमें दिखाये हें. अर्थात् द्वापरादिमें धर्मके ज्ञानमें श्रुति तथा स्मृति दोनों प्रमाण हें. आशय ये हे के द्वापरादिमें धर्मके द्विपरक होयवेसुं वा धर्मके विषयमें १.श्रुति तथा श्रुतिसंवादिनी एवं श्रुतिविसंवादिनी मनु आदि २.स्मृति ये दोउ प्रमाण हें. अथवा आगे कहे गये विधिरूप धर्मके श्रुतिपरक एवं स्मृतिपरक होयवेसुं श्रुतिसंवादी एवं श्रुतिविसंवादी दोउ प्रकारके स्मार्त धर्मन्को अनुष्ठान करिवे योग्य होयवेको ज्ञान प्रामाणिक हे.

पूर्णज्ञानको उदय भयो न होय एसी अवस्थामें विरोधी वाक्यन्में अविरोध केसे सिद्ध करनो ताको प्रकार बतायवेके अर्थ लौकिक दृष्टान्त देत हें. जेसे स्मृतिवाक्यन्को विरोध स्मृतिकार व्यवस्था करके निवृत्त करिदे हें एसे ही जिन निर्णयन्में परस्पर विरोध होय वहां भी वैष्णव-स्मार्तादि भेदसों व्यवस्था कर लेनी।।१०।।

अत्र प्रमाणचतुष्टये श्रुतिः सूत्राणि एकाः कोटि, गीता भागवतश्च अपरा स्पष्टैव. तत्र उभयत्र प्रमेयभेदाभावे द्वयनिरूपणार्थं भेदे विरोधइति कथम् एकवाक्यता? इति आशङ्क्य द्वयं समर्थयितुम् आह यज्ञरूपःइति.

यज्ञरूपो हरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे।।
अवतारी हरिः कृष्णः श्रीभागवत ईर्यते।।११।।

''यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः'' इति श्रुतेः, ज्ञानक्रियोभययुतः सर्वेषाम् अर्थः. तत्र क्रियायां प्रविष्टः क्रियारूपो यज्ञात्मा पूर्वकाण्डार्थः. ज्ञाने प्रविष्टो ज्ञानात्मा ब्रह्मरूपः उत्तरकाण्डार्थः. 'तनु'शब्दः साकारब्रह्मप्रतिपादनाय. परे उत्तरस्मिन् काण्डे. क्रिया ज्ञानं च, द्वयं प्रकटीकृत्य यो अवतीर्णः कृष्णः स श्रीभागवते विशिष्टो निरूप्यते. अतः खण्डशो निरूपणं वेदे, भागवते तु समुदायेन निरूप्य तस्य लीला अनेकविधा निरूप्यन्तइति एकार्थत्वेऽपि पृथग्वचनं युक्तम् इति अर्थः।।११।।

माने भये चार प्रमाणन्में दो विभाग हें. एक विभागमें तो वेद तथा सूत्र एवं दूसरे विभागमें श्रीभागवत तथा श्रीगीताजी. तहां वेदके दो विभाग हें:१.पूर्वकाण्ड तथा २.उत्तरकाण्ड. तहां पूर्वकाण्डोक्त क्रियामें भगवान्नें प्रवेश कियो तब आप क्रियारूप होयकें वेदमें 'यज्ञ'नामसों प्रसिद्ध भये. तासों यज्ञरूपी भगवान् पूर्वकाण्डको अर्थ हें. एसें ही उत्तरकाण्ड जो उपनिषद् हे उनमें भगवान्नें ज्ञानमें प्रवेश कियो तब आप ज्ञानरूप होयकें वेदान्तमें 'ब्रह्म'नामसों प्रसिद्ध भये. तासों ब्रह्मरूप भगवान् उत्तरकाण्डको अर्थ हे. श्रीगीताजी तथा श्रीभागवतजी में क्रिया तथा ज्ञान ये दोउ धर्म सहित जिननें अपनो स्वरूप प्रकट कियो हे उन मूलरूप श्रीकृष्णचन्द्रको वर्णन हे।।११।।

वेदे पुराणे च क्वचिद् अन्यार्थप्रतिपादनम् आशङ्क्य तेषाम् अङ्गत्वम् इति अभिप्रायेण आह सूर्यादिरूपधृग् इति.

सूर्यादिरूपधृक् ब्रह्मकाण्डे ज्ञानाङ्गमीर्यते।।
पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा।।१२।।

ब्रह्मकाण्डे ज्ञानसिद्ध्यर्थम् उपासनाः निरूप्यन्ते. तत् चित्तशुद्धिद्वारैव इति केचित्, फलदानद्वारा माहात्म्यप्रतिपादनेन भक्तिद्वारा इति सिद्धान्तः. तथा पुराणोक्तानां दुर्गा-गणपतिप्रभृतीनां विशिष्टशेषत्वम् आवरणदेवतात्वेन. तथापि भिन्नार्थत्वम् आशङ्क्य तत्तद्रूपो हरिस्तथा इति उक्तम्. साधनरूपः फलरूपश्च स्वयमेव इति एकवाक्यता।।१२।।

वेद तथा पुराणन् में क्वचित् श्रीकृष्णसुं भिन्न एसे अन्य देवतान्के उपास्य होयवेको प्रतिपादन देखिवेमें आवे हे एसी शङ्का करिके वाको समाधान आगेके श्लोकसुं करे हें जो वे उपास्य देवता ज्ञानके अङ्गभूत हें.

श्लोकार्थ : सूर्यादिरूपधारी हरि ज्ञानकाण्डमें ज्ञानके अङ्ग कहे गये हें. वाही प्रकारसुं सभी पुराणन्में भी उन-उन पुराणन्में वर्णित विभिन्न उपास्य देवतान्को रूप धारण करिवे वारे हरि ज्ञानके अङ्ग ही हें.

शङ्का : उत्तरकाण्डमें यदि ज्ञानरूप भगवान्को ही वर्णन हे तो सूर्य वायु आदि देवतान्की उपासना क्यों लिखी? तासों जा स्थलमें उपासनान्को वर्णन हे ता स्थलकुं उपासनाकाण्ड कहनो चैये.

समाधान : उपासनाकाण्ड जुदो नहीं हे. सूर्य, वायु आदिरूप भगवान्नें ही धारण करे हें. उन रूपन्की उपासना करिवे वारेंन्कुं शास्त्रानुसार फल देकें श्रीकृष्ण अपनो महात्म्य जतावे हें. माहात्म्य जानिवेसों आपके विषे भक्ति होय हे. भक्तिसों ज्ञान होवे हे. या प्रकारसों ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ ही उपासनाको वर्णन हे. तासों उपासनाको उत्तरकाण्डमें ही अन्तर्भाव हे.

एसें ही पुराणन्में जो दुर्गा, गणपति आदि देवतान्की उपासना लिखी हे तथा ब्रह्मके समान जगत्की उत्पत्ति-रक्षा-संहार करिवेकी सामर्थ्य लिखी हे सो पूर्ण क्रिया-ज्ञानशक्तियुक्त जो मूलरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण जिनको श्रीभागवतमें वर्णन किये हें तिनको महात्म्य उपासकन्कुं वाञ्छित फल देकें जतावे हें. ओर माहात्म्यज्ञानके द्वारा मूलरूपकी भक्तिके बढायवे वारी हे तासों स्वयं भगवान्नेही दुर्गा गणपति इत्यादि अनेक साधनरूप धारण करे हें।।१२।।

अत्र अवान्तरनिर्णयं वक्तुं भक्तिमार्गे विशेषम् आह भजनं सर्वरूपेषुइति.

भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्ध्यै तथापि तु।।
आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया।।१३।।

ज्ञानमार्गे न कोऽपि विशेषः क्वापि, सर्वस्यापि पूर्णब्रह्मत्वात्. वक्ष्यति च ''अखण्डं कृष्णवत् सर्वम्'' (तत्व.नि.सर्व.१८२) इति. भक्तिमार्गे तु न तथा. यथा भगवान् जगत् कृतवान् तथा स्वार्थं भक्तिमार्गमपि पृथक् कृतवान्. विभूतिरूपेषु साधनानि फलानि च व्यवस्थया कृतानि, पूर्णफलदानं च स्वस्मिन्. अतो भजनं मूलरूपएव कर्तव्यम्. ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्'' (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र यत् सायुज्यं मुख्यतया निरूपितं तत् कामनायां सत्यां कृष्णएव सेव्यः. 'कृष्ण'पदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यम् इति निरूपितम्.''यो वेद निहितं गुहायाम्'' (तैत्ति.उप.२।१) इति तु ज्ञानमार्गे।।१३।।

अब प्रमेयके सम्बन्धमें अवान्तर अर्थात् साधन तथा फल को निर्णय करिवेके अर्थ भक्तिमार्गरूप साधनमें वैशिष्ट्य अर्थात् भजनीयके स्वरूपके अनुसार फलमें तारतम्य होयवेको प्रतिपादन करत हें.

श्लोकार्थ : भगवान्के कोई भी रूपको भजन करिवेसुं फलकी सिद्धि होय हे तथापि सायुज्यरूप फलकी कामना जाकु होय वाकु तो आदिमूर्ति श्रीकृष्णकी ही सेवा करनी चहिये. एकादशस्कन्धमें मनुष्यन्के कल्याण करिवे वारे तीन मार्ग भगवान्नें उद्धवजी प्रति कहे हें:१.कर्ममार्ग २.ज्ञानमार्ग ३.भक्तिमार्ग. तहां कर्ममार्ग तो ज्ञानमार्गको सहायक हे. कल्याणके करिवे वारे तो दोई मार्ग हें : १.ज्ञानमार्ग तथा २.भक्तिमार्ग. तहां ज्ञानमार्गमें तो सब पदार्थ ब्रह्मरूप हें तासों कोई रूपकी ब्रह्म मानके उपासना करी जाय तो ब्रह्मभावरूप फल मिल जावे हे. ताहीसों वेदमें ''अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत'' ''मनो ब्रह्मेत्युपासीत'' इत्यादि श्रुतिन्में अन्न, मन आदिकन्की भी ब्रह्मरूप मानिकें उपासना लिखी हे. भक्तिमार्गमें तो जेसे अपनी क्रीडाके अर्थ भगवान्नें जगत् बनायो हे तेसें ही जीवन्कुं अपनी प्राप्ति करायवेके अर्थ भक्तिमार्ग प्रकट कीयो हे. या मार्गमें अन्य देवता श्रीकृष्णकी विभूतिरूप हें. कामनावारेन्कों ओर-ओर फलन्कुं दे हें ओर निष्काम होयके यदि विभूतिरूप देवतान्की भक्ति करी जाय तो कालान्तरमें पुरुषोत्तममें भक्ति होय हे ये बात ब्रह्मपुराणके अन्तमें मायानुकीर्तनाध्यायमें लिखी हे. अन्य देवतान्की भक्ति करिवेसों यज्ञमें भक्ति होय हे. बहोत यज्ञादिक करिवेसों अग्नि प्रसन्न होय हे तब सूर्यमें भक्ति होय हे. सूर्य जब प्रसन्न होय हे तब शिवमें भक्ति होवे हे. शिव जब प्रसन्न होवे हें तब केशव भगवान्में भक्ति होवे हे. केशव भगवान् जब प्रसन्न होवें हें तब पूर्णफलकी प्राप्ति होवे हे. पूर्ण फलदानको सामर्थ्य तो मूलरूपमें ही हे. गीताजीके ''अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः'' या श्लोकमें, भागवतके ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'' या श्लोकमें ओर वेदमें गोपालतापनी उपनीषद्में श्रीकृष्णकी ही मूलरूपता लिखी हे. तथा ब्रह्मवैवर्तके ब्रह्मखण्डके द्वितीयाध्यायमें गोलोककी नित्यता लिखी हे. गोलोकमें योगिन्के ध्यानमें जो ज्योतिरूप आवे हे ताको वर्णन हे. योगिन्कुं आपको स्वरूप ज्योतिरूप ही भासमान होवे हे. वा ज्योतिमें प्रकृतिसों पर नित्य निर्गुण

आपको मेघश्याम स्वरूप विराजे हे. वो स्वरूप द्विभुज हे. कोटिकन्दर्प जेसो लावण्यवारो हे. वाही स्वरूप सों ब्रह्मा, विष्णु, सावित्रि, शिव, धर्म, सरस्वती, दुर्गा आदिकन्की उत्पत्ति लिखी हे–इत्यादि अनेक प्रमाण हें. या विषयको पण्डितकरभिन्दिपाल तथा प्रहस्त वादमें विस्तारसों वर्णन हे. मुख्य सायुज्यरूप फलकुं भगवान् ही देवे हें तासों सायुज्यके अर्थ आदिमूर्ति श्रीकृष्णहीकी सेवा करनी चहिये. मूल कारिकामें आये भये 'कृष्ण'पदसुं ये प्रतिपादित होत हे के भक्तिमार्गमें कृष्णको बहिर्भजन ही मुख्य हे. तैत्तिरीयश्रुतिके ''जो गुहामें स्थित परमतत्वकु जाने हे'' इत्यादि वाक्यमें हृदयमें ब्रह्मको दर्शन अथवा अनुभव करिवेको जो प्रतिपादन भयो हे वो ज्ञानमार्गकी दृष्टिसुं समझनो.

ननु सर्वत्रैव तत्तद्देवतासायुज्यं फलत्वेन श्रूयते. ततो विशेषः कः? इति चेत् तत्र आह निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धि इति.

निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धि सगुणा साऽन्यसेवया।।

सायुज्यं मुक्तिः. निर्गुणे सायुज्ये निर्गुणा भवति, सगुणे सगुणा. भगवद्व्यतिरिक्ताः सर्वएव कालपर्यन्तं सगुणाः. कालोऽपि गुणानुरोधीति सगुणप्रायः. अक्षरस्य प्रकारस्तु वक्तव्यः. ''मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्'' (भाग.पुरा.११।२५।।२४) इति ''तं भजन् निर्गुणो भवेद्'' (भाग.पुरा.१०।८८।५) इति वाक्यात् कृष्णसायुज्यमेव निर्गुणा मुक्तिः.

श्रुतिमें विभिन्न देवतान्की उपासनासों उन-उन देवतान्में सायुज्यरूप फलकी प्राप्ति होयवेकी बात लिखि हे. तब कृष्णसेवासों सायुज्य प्राप्त करिवेमें पूर्वोक्त उपासनान्सों प्राप्त होयवेवारे सायुज्यकी अपेक्षा कहा वैशिष्ट्य हे जाके कारण कृष्णकी ही उपासना करनी चहिये, अन्य देवतान्की नहीं? या प्रश्नको उत्तर आगेके श्लोकसुं देत हें.

श्लोकार्थःकृष्णकी सेवा करिवेसों निर्गुण मुक्तिकी प्राप्ति होवे हे ओर कृष्णसुं भिन्न अन्य देवतान्की सेवा करिवेसों सगुण मुक्ति प्राप्त होवे हे.

सायुज्यको स्वरूप श्रुतिमें लिख्यो हे. यजुर्वेद ब्रह्मवल्लीमें ''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता'' इति. अर्थःकृष्णसेवा करिवे वारो जो भक्त हे सो परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ सर्व कामन्को भोग करे हे. बाहिर प्रकट भये जो श्रीकृष्णचन्द्र हें उनहीकी सेवासों सायुज्यफलकी प्राप्ति होय हे. अन्य देवतान्की उपासनासों भी उन देवतान्के साथ सायुज्य मुक्ति होय हे. वो सायुज्य मुक्ति, परन्तु, सगुणमुक्ति हे. क्योंके कालादि सब देवता सगुण हें परि श्रीकृष्णचन्द्र तो निर्गुण हें. श्रीकृष्णचन्द्रको ज्ञान भी निर्गुण हे तथा श्रीकृष्णचन्द्रके भजन करिवे वारो भी निर्गुण हो जावे हे हे बात एकादशस्कन्धमें लिखी हे ''मन्निष्ठं निर्गुण स्मृतम्'' अर्थःभगवन्निष्ठ ज्ञान निर्गुण कह्यो गयो हे. तथा दशमस्कन्धमें ''तं भजन् निर्गुणो भवेत्'' अर्थःश्रीकृष्णको भजन् करिवेसुं भक्त निर्गुण होय जावे हे.

अक्षर-ज्ञानमार्गयोः एकत्वाद् द्वयम् एकेन समाहृतम्.

ज्ञानेऽपि सात्विकी मुक्तिः जीवन्मुक्तिरथापि वा।।

ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिः इति. ज्ञानमार्गः सगुणएव, ''सत्वात् सञ्जायते ज्ञानम्'' (भग.गीता१४।१७) इति वाक्यात्. अतएव ज्ञानिनो भीताः संसाराद् विरक्ता भवन्ति.

एवं ज्ञानमार्गे प्रवृत्तस्य सगुणत्वम् उपपाद्य ज्ञानसम्पत्तियुक्तस्य न सगुणत्वम् इति आशङ्क्य आह जीवन्मुक्तिरथापि वा इति. वा इति अनादरे. मुख्यपक्षे तु ''समासेनैव कौन्तेय'' (भग.गीता१८।५०) इति वाक्यसन्दर्भे ब्रह्मभावानन्तरं भक्तिः भवतीति गुणातीतएव प्रवेशः, ''ते प्राप्नुवन्ति मामेव'' (भग.गीता१२।४) इति वाक्यात्. तदभावे केवलं जीवन्मुक्ता भवन्तीति सनकादितुल्याः सगुणैव. इममेव विशेषं वक्तुं भगवन् आह ''सर्वभूतहिते रताः''

(भग.गीता१२।४) इति. अतएव शुकादीनां भक्तिमार्गोपदेशनद्वारा सर्वभूतहिताचरणम्. यस्तु ज्ञानमार्गे प्रवृत्तः प्राप्तज्ञानः कृष्णसेवार्थं यतते, तन्निष्ठां परित्यज्य, स महान् इति आह ज्ञानी चेद् भजते कृष्णम् इति.

ज्ञानी चेद्भजते कृष्णं तस्मान्नास्त्यधिकः परः।।१४।।

यद्यपि ज्ञानमार्गेऽपि विषयो निर्गुणः तथापि मार्गः सगुणः इति भक्तिमार्गस्य उत्कर्षः. क्रियाशक्तेः इन्द्रियाणाञ्च वैफल्यं ज्ञानमार्गे. तस्माद् भक्तिमार्गानुसारेण कृष्णएव सर्वेषां सेव्यः इति निरूपितम्।।१४।।

अक्षरब्रह्म यद्यपि निर्गुण हे तथापि ज्ञानसों जेसें सात्विकी मुक्ति होय हे एसें अक्षरब्रह्मोपासनासों भी सात्विकी मुक्ति होय हे. क्योंके ''सत्वात् सञ्जायते ज्ञानम्'' या वाक्यमें सतोगुणसों ज्ञान्की उत्पत्ति लिखी हे. तासों ज्ञान सगुण हे. ज्ञानसों सगुण मुक्ति ही होवे हे तामें प्रमाण श्रीभागवतमें ''कैवल्यं सात्विकं ज्ञानम्'' अर्थःसात्विक ज्ञान ही मोक्ष हे. ''त्रैगुण्यविषया वेदाः'' अर्थःवेदोक्तज्ञानभी सगुण हे. तासों वेदके लिखे ज्ञानसों भी सगुणमुक्ति होवे हे. तासों ज्ञानमार्गमें ज्ञानद्वारा जीव कदाचित् जीवन्मुक्त होय तो भी सगुण ही रहे हे, जेसें सनकादिक. यदि ये निर्गुण होते तो जय-विजयकुं शाप नहीं देते. ज्ञानद्वारा ब्रह्मभाव जिनकों सिद्ध भयो होय ता पीछें कृष्णकी जब भक्ति होय तब निर्गुण होय हे, जेसें शुकदेवजी. शुकदेवजी निर्गुण जीवन्मुक्त हें

ताहीसों सब जीवन्के हितकारी हें. गीताजीमें ''ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः'' या श्लोकमें सर्वभूतहितकारी ज्ञानी भक्त मोकुं प्राप्त होय हे ये लिखी हे. तासों पहले ज्ञनमार्गकी रीतिसों ब्रह्मज्ञानी होयके पीछे ज्ञाननिष्ठा छोडके परब्रह्म श्रीकृष्णकी भक्ति करे हे. हस्त-पादादि कर्मेन्द्रियन्कों तथा नेत्र-श्रवणादि ज्ञानेन्द्रियन्कों प्रभुसेवा करिकें जो सफल करे हे वो ज्ञानीभक्त सर्व ज्ञानीन्में श्रेष्ठ हे. तासों ज्ञानमार्गमेंभी ज्ञानीकों भक्तिद्वारा ही निर्गुणकी प्राप्ति होय हे. ज्ञानमार्ग पहले सगुण हे ओर भक्तिमार्ग तो प्रथमहीसों निर्गुण हे तासों भक्तिमार्गको उत्कर्ष जानिके भक्तिमार्गकी रीतिसों कृष्णकी ही सेवा सबन्कुं करनी चहिये।।१४।।

ननु एवं सति कथं न सर्वे सेवन्ते इति आशङ्कायाम् आह बुद्धावतारे इति.

बुद्धावतारे त्वधुना हरौ तद्वशगाः सुराः।।
नानामतानि विप्रेषु भूत्वा कुर्वन्ति मोहनम्।।

'तु'शब्दः शङ्कां वारयति. कलिकालः स्वभावतः सर्वोत्कृष्टः. स्वल्पसाधनेऽपि महाफलप्रदः. अतो दैत्यव्यामोहार्थं भगवान् बुद्धो अवतीर्णः, सर्वप्रमाणमूलभूतं वेदं दूषितवान्. ततः पुराणादिमार्गदूषणार्थं तद्वशगाः सुराअपि तथा अनिषिद्धवेषम् आश्रित्य ब्राह्मणानां बुद्धिनाशार्थं तेष्वेव अवतीर्य मोहनार्थं नानामतानि कुर्वन्ति, काणाद-न्याय-मायावादादिरूपाणि. वाक्पेशलत्वात् मोहनरूपत्वम्।।

शङ्का : जो कृष्णसेवा ही सर्वोत्तम हे तो सब ही मनुष्य कृष्णसेवा क्यों नहीं करे हें? ताको उत्तर ''बुद्धावतारे'' या श्लोकमें लिखे हें.

गीताजीमें दैवजीव तथा आसुरजीव दोय प्रकरके जीव लिखे हें. जब आसुर जीव अर्थात् दैत्यलोग श्रेष्ठमार्गमें प्रवृत्त होयवे लगे तब उनकुं मोह करायवेके अर्थ भगवान्नें बुद्धावतार धारणा कियो तथा धर्मके मूल जो वेद हें तिनकी निन्दा करी एवं देवतान्कुं भी आज्ञा दीनी जो तुम भी पुराणन्की निन्दा करिके दैत्यन्कुं मोह करावो. तब देवतान्नें भी भगवान्की प्रेरणाके आधीन होयकें, ऋषिन्के कुलमें जन्म लेकें, निन्द्यवेष धारण करिकें वैशेषिक, न्याय, मायावाद, चार्वाक, निरीश्वर साङ्खच आदि खोटे शास्त्र बनाये. इन शास्त्रन्में एसी बातें लिखी हें के जिनके सुनिवे-पढिवेसों जीवकी बुद्धि बिगड़ जाय तथा उनके ही मतमें लग जावें.

ननु तेषां शास्त्राणां मुक्तिः फलं तथैव तत्र-तत्र प्रतीयते तत्कथं मोहनफलम्? इति चेत्, तत्र आह यथाकथञ्चिद् इति.

यथाकथञ्चित् कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि।।१५।।

वैदिके मार्गे जागरूके पौराणिके च तेनैव मार्गेण स्वयम् ऋषित्वं देवत्वं च प्राप्ताः किमिति अन्यथा वेदविरोधेन शास्त्रम् अवादिषुः यदि मुक्तिरेव सम्पाद्या स्यात् अतः सिद्धे राजमार्गेऽपि पुनः स्वयम् अतिक्लेशेन यत् शास्त्राणि कृतवन्तः अतो ज्ञायते मोहार्थमेव शास्त्रकरणम्. नापि तथाकरणे भगवतो विसम्मतिः, भगवतैव तथा ज्ञापनात्. ''त्वञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय, अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज, प्रकाशं कुरु चात्मानम् अप्रकाशञ्च मां कुरु'' इति वाराहवचनं ब्रह्माण्डोक्तं तथापरम् ''अमोहाय गुणा विष्णोरापारः चिच्छरीरता, निर्दोषत्वं तारतम्यं मुक्तानामपि चोच्यते, एतद्विरुद्धं यत्सर्वं तन्मोहायेति निश्चयः''. उक्तं पद्मपुराणे च शैवएव शिवेन तु, यदुक्तं हरिणा पश्चाद् उमायै प्राह तद्वरः. ''त्वामाराध्य तथा शम्भो ग्रहीष्यामि वरं सदा, द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु, स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु, माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा'' (पद्मपुरा.६।७२।१०६-१०७). एतदभिसन्धाय आह यथाकथञ्चित् कृष्णस्य इति. ते हि अलौकिकद्रष्टारः ''एवं मायावादाद्यनुसारेण शास्त्रे कृते लोका भगवद्बहिर्मुखा भविष्यन्ति''इति तथा कृतवन्तः इतिअर्थः।।१५।।

शङ्का : न्याय, मायावाद आदि शास्त्र यदि जीवन्कुं धोखा देवेकुं ही बने हें तो उन शास्त्रन्में मोक्ष फलको क्यों वर्णन कियो हे?

समाधान : मोक्षफलके देवे वारे चारों वेद तथा अष्टादश पुराण विद्यमान हें ही फिर उनकुं छोडके अपनी बुद्धिके अनुसार नये-नये मोक्षसाधन उन शास्त्रन्में बताये हें तासों मालूम होय हे के वे शास्त्र अवश्य जीवकुं मोह करायवेवारे हें. प्रथम मोहक शास्त्र बनायवेकी आज्ञा शिवजीके प्रति भगवाननें करी हे. हे बात वाराहपुराणमें रुद्रगीतामें लीखी हे. वहांको श्लोकः''त्वञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय''. अर्थःहे रुद्र तुम मोहक शास्त्र बनावो. तथा पद्मपुराणमें लिख्यो हे ''स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु''. अर्थःभगवान् आज्ञा करे हें हे रुद्र तुम अपने बनाये शास्त्रन्के द्वारा मनुष्यन्कुं मोसों विमुख करो. तब शिवजीनें भगवान्की आज्ञा मानिके मोहक शास्त्र बनाये, तथा अपनी शक्तिसों ऋषिन्की बुद्धि बिगाड़के ऋषिन्के द्वारा भी मोहक शास्त्र बनवाये. ताको प्रमाण पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिख्यो हे. वहांके श्लोकः''मच्छक्त्या वेशितैर्विप्रैः सम्प्रोक्तानि ततः परम्'' इत्यादि श्लोक पुरुषोत्तमजी कृत श्लोक १६ की व्याख्यामें लिखे हें. यासों हे निश्चय भयो के उन् अलौकिक दृष्टा ऋषिलोगन्नें मायावादादिकन्के अनुसरण करिवेवारे भ्रामक शास्त्र बनाय जासुं उन भ्रामक वादन्को अनुसरण करिके लोग भगवद्बहिर्मुख होय जांय तथा श्रीकृष्णकी सेवासों हटि जावें।।१५।।

ननु मुग्धाश्चेत् संसारेऽपि भ्रान्ताइव पशुपुत्रादिषु कथं न मुग्धा जायन्ते? तत्र आह अयमेव महामोह इति.

अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम्।।

यत् कृष्णं न भजेत् प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती।।।।

नहि अल्पार्थे तेषां प्रवृत्तिः. महामोहस्तु अयमेव यत् क्रियाज्ञानशक्तिसद्भावेऽपि कृष्णं न भजेत्. परप्रतारणञ्च एतदेव. यतः तं महान्तं मन्वाना अभजन्तं दृष्ट्वा स्वयमपि न भजन्ते. प्राज्ञः इति ज्ञानशक्तिप्राबल्यम्. शास्त्राभ्यासपरः इति मिथ्याज्ञानाभिनिवेशः, साधनसम्पत्तिः वा. कृती इति क्रियासामर्थ्यम्.

यहां शङ्का होय हे के यदि मोहक शास्त्रन्सुं लोग मोहमें परि गये होंय तो संसारी अन्य लोगन्की भांति पशु-पुत्रादिमें मोहित क्यों नाहिं होत हें? तहां मोहको स्वरूप बताते भये समाधान करत हें.

जो ये ही बड़ो मोह हे तथा ये ही बड़ी ठगाय हे जो ज्ञानवान् होयकें, शास्त्रकुं पढकें, सेवा करिवेकी सामर्थ्य पायकें हु श्रीकृष्णकी सेवा नाहीं करे हें. परप्रतारणा भी ये ही हे क्योंके लोग मोहक शास्त्रकारन्कुं महान् समुझत हें ओर जब देखत हें के ये महान् लोग भगवान्को भजन नाहिं करत हें तब स्वयं भी भगवद्भजनसों विमुख ह्वे जात हें.

एवं शास्त्रकरणाद् बहवो विमुखा जाता इति निरूप्य, तथापि भगवत्सेवकोक्तप्रकारेण प्रवृत्ताइति सत्फलमेव भविष्यति इति आशङ्क्य आह तेषां कर्मवशानां हि इति.

तेषां कर्मवशानां हि भवएव फलिष्यति।।१६।।

न हि शास्त्रकर्तारो बलात् कञ्चन प्रवर्तयन्ति, नापि ''महान्त एते'' इति कश्चित् तत्र प्रवर्तते किन्तु दुरदृष्टवशात् तदुक्ते अर्थे श्रद्धा जायते. अन्यथा सर्वसम्मतं वेदं परित्यज्य तत्र कथं प्रवृत्ताः स्युः? अतः प्रारब्धवाशादेव तत्र प्रवृत्ताः संसारमेव फलम् आभूतसम्प्लवं प्राप्स्यन्ति, ''सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा'' (पद्मपुरा.६।२६३।१०७) इति वाक्यात्. भगवद्विरोधाचरणेतु नरकेऽपि पातः. भवः संसारो दुःखात्मकः फलिष्यति।।१६।।

उपर्युक्त प्रकारसुं मोहक शास्त्रन्की रचना भई तथा उनको अनुसरण करिवेसुं अनेक लोग भगवद्बहिर्मुख भये एसो निरूपण करिकें अब शङ्का करत हें जो मोहकशास्त्र बनायवे वारे भगवान्के सेवक हें. भगवान्के सेवकन्के बताये भये मार्गानुसार प्रवृत्त होयवे वारेन्कुं सत्फलकी प्राप्ति क्यों नहीं होयगी? या शङ्काको समाधान तेषां कर्मवशानाम् श्लोकसुं करत हें.

यद्यपि मोहकशास्त्र बनायवेवारे ऋषिलोग मनुष्यन्कुं जबरदस्तीसों अपने-अपने बनाये शास्त्रन्में प्रवृत्त नहीं करे हें. लोग मोहकशास्त्र बनायवेवारेन्कुं महान् समुझके उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तके पालनमें प्रवृत्त होवे हें एसो भी नहीं हे. वस्तुतः तो अपने अशुभ कर्मन्के फलरूप अदृष्टके कारण लोगन्की मोहकशास्त्रन्के रचयितान्के कथनमें श्रद्धा उत्पन्न होवे हे अन्यथा सर्वसम्मत वेदकुं छोड़िके लोग इन मोहक शास्त्रन्में कैसे प्रवृत्त होते यासुं स्पष्ट हे के मन्दभागी जीव अपुने मनसोंही खोटे शास्त्रमें प्रवृत्त हो जावे हें. वे जीव अपने कर्मानुसार सदा संसारचक्रमें ही भ्रमते रहे हें यदि उनको आचरण भगद्विरोधी न होय. भगद्विरोधी आचरण करिवे पर तो उनको नरकमें हु पात सम्भव हे ही।।१६।।

ननु तानि शास्त्राणि ज्ञानप्रतिपादकानि, क्वचित् कर्मप्रतिपादकानि चित्तशुद्ध्यर्थं, क्वचित् भक्तिप्रतिपादकानि च कथं मोहप्रतिपादकानि? इति आशङ्क्य आह ज्ञाननिष्ठा इति सार्द्धेन.

ज्ञाननिष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत्।।
कर्मनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा चित्तं प्रसीदति।।
भक्तिनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा कृष्णः प्रसीदति।।१७।।

यत् ''तत्वमस्यादिवाक्येनैव अपरोक्षं ज्ञानम् उत्पद्यते'' इति ज्ञानदुर्बलान् व्यामोहयितुम् उक्तवन्तः तत् न ज्ञानम्. तथा सति सर्वज्ञता स्यात्. ''यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितम्'' इति, कर्मणीव ज्ञानेऽपि निदर्शनानाम् उक्तत्वात् यथा कारीर्याम् अश्वमूत्रणादिकम्, यथा वा दीर्घसत्रारम्भे अपूपदाहः तथा ज्ञानेऽपि सर्वज्ञत्वम्. तेजोऽपि निदर्शनम्. तस्मान् न एतज्ज्ञानम् इति ज्ञातव्यमिति एतदर्थम् आह सर्वज्ञो हि यदा भवेद् इति. नापि तदुक्तप्रकारेण कर्माणि फलं प्रयच्छन्ति, 'यज्'धातोः भगवत्पूजार्थस्य स्वरूपज्ञानेन वृथाकरणात्, यज्ञादीनाम् अनित्यत्वभावनाच्च, श्रुत्युक्तप्रकारेण पदार्थज्ञाननिराकरणाच्च. अतो यागादिकमपि ज्ञानशेषतया उपदिशन्ति, ज्ञानपर्यन्तञ्च तत्करणम् इति आहुः. भावनाकल्पितञ्च विषयस्य आहुः. अतो भगवदर्थं भगवान् न सेव्यतइति न कृष्णः तुष्यति. यदि सा भक्तिः भवेत्, कृष्णः तुष्येत्. ''भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति'' इति वाक्यात्. तस्माद् उक्तप्रकारो व्यर्थः इति अर्थः।।१७।।

शङ्का : जिन मायावादादि शास्त्रन्कुं भ्रमकरिवे वारे कहो हो उन शास्त्रन्में कहुं तो ब्रह्मज्ञानको वर्णन हे, कहुं चित्तशुद्धिके अर्थ कर्मको वर्णन हे ओर कहीं भक्तिको वर्णन हे तो वे शास्त्र मोह करायवे वारे हें ये बात केसें बनि सके हे?

श्लोकार्थ : ज्ञाननिष्ठा तब समझनी चहिये जब व्यक्ति सर्वज्ञ होय जावे तथा कर्मनिष्ठा तब समुझनी चहिये जब चित्तमें निर्मलता-प्रसन्नता आय जावे ओर भक्तिनिष्ठा तब समुझनी चहिये जब भगवान् कृष्ण प्रसन्न होय जावें.

उत्तर : उन शास्त्रन्में जहां ज्ञानको वर्णन हे वहां साधन बिना ''तत्वमसि'', गुरुशिष्यकेप्रति उपदेश देत हे, ''हे शिष्य तु ब्रह्म हे'' इत्यादि वाक्यके उपदेश मात्रसों साक्षात् ब्रह्मज्ञान होय जाय हे या रीतिसों कहिके ज्ञान रहित भोले मनुष्यन्कूं धोखा दियो जाय हे जो ''तू ब्रह्म हे''. एसें कहिवेहीसों शिष्यकुं साक्षात् ब्रह्मज्ञान हो जातो होतो तब तो उपदेश होतेही शिष्यकों जगत्के सब पदार्थन्को ज्ञान हो जानो चहिये. अर्थात् यहां बैठो भयोही सब ठिकानेंके भूत-भविष्यत् वृत्तान्त कहि दे सकतो होतो क्योंके सर्वज्ञ हो जानो ब्रह्मज्ञानीकी निसानी हे. ''यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विज्ञातं भवति''. अर्थात्, ब्रह्मज्ञान होयवेंसों सब पदार्थको ज्ञान हो जाय हे ये बात लिखी हे. ऐसेंही जहां कर्मको वर्णन कियो हे वहां वेदमें लिखे अग्निहोत्र आदि कर्मन्कुं अनित्य बताये हें. ओर यज्ञ हे सो तो भगवान्की पूजा हे या बातकु भी नहीं जाने हें. क्योंके 'यज्ञ'शब्द 'यज्' धातुसों बन्यो हे. 'यज्' धातुको देवपूजा अर्थ हे. ओर भगवान्के अङ्गरूप वायु अग्नि आदि देवतान्की वेदमें सांची प्रशंसा जो अर्थवादमें लिखी हे ताकु झूठी समझे हें. ओर भगवानकुं कर्मके फल देवेवारे नहीं माने हें. अपने मनके अपूर्वकुं फलदाता कहे हें. तासों उनकी बताई रीतिसों कर्म करिवेसों लोभ ही बढे हे, चित्त शुद्ध नहीं होय हे. ओर कर्मकी निष्ठा भई तो तबही जाननो जब चित्त शुद्ध होय के प्रसन्न होय।।१७।।

ननु मुख्यफलाभावे तदुक्तप्रकारेण गौणं फलं भविष्यति इति आशङ्क्य आह निष्ठाभावे इति.

निष्ठाभावे फलं तस्मान्नास्त्येवेति विनिश्चयः।।
निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया।।१८।।

न हि महागृहारम्भे सामिकृते ततः किञ्चित् फलम् अस्ति. न वा नदीतरणार्थं प्रवृत्तो हस्तमात्रावशिष्टेऽपि निमग्नः पारगमनं फलं प्राप्नोति. ननु अनेन अग्रे निष्ठैव भविष्यति इति चेत् तत्र आह निष्ठा च साधनैरेव इति. वेदोक्तैरेव नतु प्रतिष्ठार्थं व्याख्यान-मनोरथवार्तया।।१८।।

मायावादादि मोहक शास्त्रन्में प्रतिपादित ज्ञान-कर्म-भक्तिको तत्तदुक्तप्रकारसों अभ्यास करिवेसों मुख्य फल क्वचिद् प्राप्त न होय परि गौण फल तो प्राप्त होय सके के नहीं? या शङ्काको निराकरण करत हें.

निष्ठाके अभावमें ज्ञान, कर्म अथवा भक्ति को फल प्राप्त नहीं होवे हे ये बात सुनिश्चित हे. अपरञ्च निष्ठा भी वेदादिमें कहे भये साधनन्के द्वारा ही होत हे, केवल इच्छामात्रसों अथवा वेदादिमें कहे भये साधनन्के काल्पनिक व्याख्यान्सो नाहीं होत हे.

याही रीति जहां उन मोहक शास्त्रन्में भक्तिको वर्णन हे वहां भगवान्की भक्तिकुं मुख्य फल नहीं बतावे हें. केवल ज्ञान होयवेके अर्थ भक्ति करनी अर्थात् जहां तांई ज्ञान नहीं होय तहां तांई भक्ति करनो ज्ञान भये पाछें भक्तिको कछु काम नहीं एसो प्रतिपादन करत हें. यासुं प्रतीत होवे हे के मायावादादि मोहक शास्त्रन्में बताये प्रकारसुं शुद्ध परब्रह्मकी भक्ति नहीं होय सके हे. भावना कल्पित अर्थात् अपनी बुद्धि कल्पित भगवान्के स्वरूपहीकी भक्ति होय हे. मायावादादि मोहक शास्त्र या रीतिसों माने हें. उनके बताये भक्ति भार्गमें भगवान्की प्रसन्नताके अर्थ भगवान्की सेवा नहीं करी जावे हे किन्तु ज्ञानके अर्थ करी जावे हे. वा भक्तिसों भगवान् नहीं प्रसन्न होवे हें. ओर भक्ति वाहीसों कहनों जासों भगवान् प्रसन्न होंय. क्योंके, ''भक्त्यैव तुष्टि मभ्येति''. अर्थःभगवान् भक्तिसोंही प्रसन्न होय हें. भक्तिनिष्ठा तब ही भई जाननी जब कृष्ण प्रसन्न होंय. मोहक

शास्त्रकी रीतिसों वर्ताव करेसों ज्ञान-भक्ति-कर्म इन तीनों मेंसों कछु भी पूरो सिद्ध नहीं होय हे. ओर पूरो सिद्ध भये बिना फल नहीं होय हे. जेसे बड़े मकानको निर्माण प्रारम्भ कियो जाय ओर यदि वाकु आधो बनायके ही छोड़ दियो जाय तो वेसे आधे-अधूरे मकानसों कछु प्रयोजन सिद्ध नहीं होत हे. जेसे नदी तरवे वारो सब नही तरकें हाथभरकी छेटीसों डूब जाय तो वाको परिश्रम वृथा ही जावे हे. यासों हे निचोड़ भयो जो वेदशास्त्रके अनुसार साधन करेसों ही ज्ञान-भक्ति-कर्म पूरे सिद्ध होवे हें. प्रतिष्ठाके अर्थ वेदशास्त्रन्के मनचाहे अर्थ करिवेसों कछु नहीं होय हे।।१८।।

ननु त्रितयं किञ्चित्-किञ्चिद् अनुष्ठितं फलं साधयिष्यति इति आशङ्क्य आह स्वाधिकारानुसारेण इति.

स्वाधिकारानुसारेण मार्गस् त्रेधा फलाय हि।।

मार्गगताएव ज्ञानादयः फलदाः, यथा गोदोहनादयः कर्मगताएव. तथा तत्तत्साधनादिसहिताएव ते ज्ञानादयः फलदा. अन्यथा प्रकरणभेदेन तन्निरूपणं न स्यात्.

ततः किम्? अत आह अधुना इति.

अधुना ह्यधिकारास्तु सर्वएव गताः कलौ।।
कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय हि।।१९।।

कालवशादेव अधिकाराः निवृत्ताः न साधनैः कर्तुं शक्यन्ते. ननु एवं सति मुख्यभक्तिमार्गेऽपि समः समाधिः इति चेत्, तत्र आह कृष्णश्चेत् सेव्यते इति. अवतीर्णो भगवान् सर्वमुक्त्यर्थमिति प्रमेयबलेनैव फलिष्यतीति स्वाधिकाराभावेऽपि ततः फलं भविष्यति इति अर्थः. चेद् इति सेवायां दुर्लभत्वम् उक्तम्. भक्त्या न तु विहितत्वेन. कलिस्तस्य इति. कालस्तु अनुगुणएव इति अर्थः. ''कलौ तद् हरिकीर्तनाद्'' (भाग.पुरा.१२।३।५२) इति वाक्यात्. अतो अधिकारेण अनधिकारेण वा कृष्णभजनं कर्तव्यम् इति सिद्धम्।।१९।।

शङ्काःवेदादिकन्की रीति छोड़के मनमाने थोड़-थोड़े ज्ञान-कर्म-भक्ति करिवेसों भी कछु फलसिद्धि नहीं होय हे ये आगेके श्लोकसु कहे हें.

जेसे वेदमें ''चमसेनापः प्रणयेद् गोदोहनेन पशुकामस्य'' या श्रुतिमें पशुकी कामनावालो मनुष्य गायकी दोहनीमें जल लावे एसी विधि हे. दोहनीमें जल लायवेकी क्रिया यज्ञके अन्तर्गत करिवेसुं ही वो क्रिया यजमानकों पशुरूप फल देवे हे. अब या बातकुं सुनिके कोई पुरुष वेदविधिकुं छोड़िके केवल गायकी दोहनीसुं जल लायके पशुकी प्राप्ति चाहे तो कभी नहीं होय. किन्तु वेदरीतिके अनुसार यज्ञमें जा ठिकाने जल लायवो लिख्यो हे वा ठिकानें गायकी दोहनीसों जल लावे तब ही पशुकी प्राप्ति होय. एसे ही अपने अधिकारके अनुसार वेदशास्त्रन्में लिखे प्रमाण साङ्गोपाङ्ग करे भये ही ज्ञान-कर्म-भक्तिमार्ग अपने-अपने फलके देवे वारे हें. यदि एसो नहीं होतो तो ज्ञान-कर्म-भक्तिमार्गन्को निरूपण शास्त्रमें पृथक्-पृथक् नहीं कियो होतो।।

अभीके सब ही मनुष्य कालके विपरीतपनेसुं पीढी-दर-पीढीसों सदाचारहीन हो रहे हें तथा निषिद्धाचारमें तत्पर हें. तासों ज्ञान कर्मादिकके अधिकारी नहीं हें. क्योंके ''आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'' अर्थ:आचारहीन मनुष्यकुं वेद भी नहीं पवित्र करे हें. तासों भक्ति करके जो पुरुष कृष्णकी सेवा करे हे वाकुं कलियुग फलदायक हे. ''कलौ तद् हरिकीर्तनात्'' एसे श्रीभागवतमें लिख्यो हे. अर्थ:कलियुगमें कीर्तनादिक भक्तिसों भगवत्प्राप्ति होय हे.

यद्यपि जेसें ज्ञानके तथा कर्मके अधिकारी अभीके जीव नहीं हें तेसें भक्तिके भी अधिकारी अभीके जीव नहीं हें तथापि अनधिकारी जीवनकों भी कृपाकरिकें मुक्त करिवेके अर्थ परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण प्रकट भये हें ओर अपने प्रमेयबलसों अर्थात् अपनी अद्भुत सामर्थ्यसों अनधिकारी जीव व्रजके पशु-पक्षी गोप-गोपी आदिकन्कुं भी मुक्ति दीनी. तासों अधिकारी होय अथवा अनधिकारी होय, कृष्णभक्ति सब जीवन्कुं अवश्य करनी चहिये ये बात सिद्ध भई।।१९।।

‘बुद्धावतारे’ इत्यादि कारिकासुं लेके यहां तक जो कछु कह्यो गयो तासुं जो सिद्ध भयो सो अधुना या कारिकासुं कहत हें.

श्लोकार्थ : कलियुगके कारण सभी अधिकार समाप्त ह्वे गये हें. अतएव यदि भक्ति पूर्वक श्रीकृष्णकी सेवा करिवेमें आवे तो ये कलियुग श्रीकृष्णकी सेवा करिवारे भक्तन्कुं फलदायक होयगो.

अत्र सर्वेषां प्रमाणानाम् एकवाक्यताम् आह सर्वेषम् इति.

सर्वेषां वेदवाक्यानां भगवद्वचसामपि।।
श्रौतोर्थो ह्ययमेव स्याद् अन्यः कल्प्यो मतान्तरैः।।२०।।

श्रौतः अभिधया निरूपितः. अन्यः तत्तन्मतानुसारेण उक्तः. कल्प्यो न वाचनिकः।।२०।।

अब आगेके श्लोकमें उपर्युक्त अर्थके सम्बन्धमें वेद, गीता, व्याससूत्र तथा श्रीमद्भागवत की एकवाक्यताको उपपादन करत हें.

सब वेदवाक्यन्को तथा गीताजीके भगवद्वाक्यन्को अभिधावृत्तिके द्वारा मुख्य ये ही अर्थ होय हे. अन्य प्रकारको जो अर्थ हे सो अपने-अपने मतके आग्रहसों कियो अर्थ हे।।२०।।

ननु अत्र द्वयं निरुक्तं, वेदा भगवद्वाक्यानि च. तत्र एकेनैव शास्त्रार्थनिष्पत्तौ अन्यवैयर्थ्यम् इति आशङ्क्य आह कृष्णवाक्यानुसारेण इति.

कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि।।
ते हि भागवताः प्रोक्ताः शुद्धास्ते ब्रह्मवादिनः।।२१।।

शास्त्रार्थम् वेदार्थम्. भगवद्वाक्यानि वाक्यशेषरूपाणि सन्देहे निर्णायकानि-एवं वक्तारो भागवता भगवत्सम्बन्धिनो विद्वांसः. अनेन भक्ता इति उक्तम्. तएव च शुद्धाः कर्मिणः, यथोक्तकर्मज्ञानात्. तएव च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः, यथोक्तब्रह्मस्वीकारात्।।२१।।

उपर कारिकामें वेद तथा भगवद्वाक्यरूप गीता एसे दो प्रमाणन्को कथन भयो हे. इन दो प्रमाणन्मेंसु कोई एक भी प्रमाणसों शास्त्रको अर्थ सिद्ध होय जायेगो तब दूसरो प्रमाण व्यर्थ बनेगो-एसी आशङ्काकुं दूर करिवेकुं ‘कृष्णवाक्यानुसारेण’ सुं समाधान करत हें.

श्रीभागवत एकादशस्कन्धमें भगवान् आज्ञा करे हें ‘‘इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन’’ अर्थःया वेदवाणीको अभिप्राय में ही जानुं हुं ओर कोई नहीं जाने हे. तासों गीता-भागवतमें लिखे भये भगवान्के वाक्यन्के अनुसार वेदको अर्थ जे पण्डित करे हें वे ही भागवत हें, परम भगवदीय हें. वे ही यथार्थ कर्मके स्वरूपकुं जाने हें जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त कर्म करे हें. तथा वे ही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हें जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त ब्रह्मस्वरूपकुं जाने हें।।२१।।

ननु एतदुभयं पूर्वमेव वर्तते इति किं भगवतो ग्रन्थकरणेन? इति आशङ्क्य आह एतन्मतम् इति.

एतन्मतमविज्ञाय सात्विका अपि वै हरिम्।।
मतान्तरैर्न सेवन्ते तदर्थं ह्येष उद्यमः।।२२।।

मतम् सिद्धान्तः. सात्विका इति स्वरूपयोग्यता, अभजने येषां शास्त्रान्तरमेव प्रयोजकं, न तु स्वभावः, तेषां मतनिराकरणेन प्रवृत्तिः सम्पाद्यते इति अर्थः।।२२।।

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञा करे हें के जब श्रीभागवत तथा श्रीगीता पहलेसोंही विद्यमान हें फिर हमारे ग्रन्थ करिवेकी आवश्यकता नहीं हती तथापि अनेक मतन्के प्रचार होयवेसों सन्देहमें पड़के दैवी जीव हु हरिकी सेवासों बहिर्मुख होय रहे हें तासों उन दैवी जीवन्के सन्देह दूर करिके भगवान्की सेवामें प्रवृत्ति करायवेके अर्थ तथा गीता–भागवतको यथार्थ अभिप्राय समुझायवेके अर्थ या ग्रन्थको प्रारम्भ करें हें.

कारिकामें प्रयुक्त 'सात्विकाः' पदको अभिप्राय ये हे जो जिन् जीवन्में भगवद्भजन करिवेकी योग्यता हे वे यदि भगवद्भजन नाहीं करत हें तो वाको कारण उनको स्वभाव नहीं होयके अन्य मोहक शास्त्र मात्र कारण हें. एसेमें यदि उन मोहक शास्त्रन्के मतन्को निराकरण कर दियो जाय तो भगवद्भजनमें उन जीवन्की प्रवृत्ति स्वतः सम्पादित हो जायगी ।।२२।।

सत्प्रकरण

एवं स्वप्रवृत्तिम् उपपाद्य बाधकशास्त्राणां निवृत्त्यर्थं शास्त्रम् आरभते प्रपञ्च इति.

प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाऽभवत्।।

तच्छक्त्याऽविद्यया त्वस्य जीवसंसार उच्यते।।२३।।

प्रपञ्चमेव मिथ्या इति उक्त्वा शुद्धं भजनं वारयन्ति तथा अन्ये जीवं व्यापकम् उक्त्वा. अतः उभयनिराकरणार्थं जीव–जडयोः स्वरूपमुच्यते.

अयं प्रपञ्चो न प्राकृतः, नापि परमाणुजन्यः, नापि विवर्तात्मा, नापि अदृष्टद्वारा जातः, नापि असतः सत्तारूपः किन्तु भगवत्कार्यः परमकाष्ठापन्नवस्तुकृतिसाध्यः. तादृशोऽपि भगवद्रूपः. अन्यथा असतः सत्ता स्यात्. सा च अग्रे वैनाशिकप्रक्रियानिराकरणे निराकरिष्यते. वैदिकस्तु एतावानेव सिद्धान्तः. वैष्णवानुसारेण किञ्चित् साधनम् अधिकम् आह माययाऽभवद् इति. माया हि भगवतः शक्तिः, सर्वभवनसामर्थ्यरूपा, तत्रैव स्थिता. यथा पुरुषस्य कर्मकरणादौ सामर्थ्यम्. तेन स्वसामर्थ्येन अन्यान् उपजीवनेन स्वात्मरूपं प्रपञ्चं कृतवान् इति फलितम्.

या प्रकारसुं या ग्रन्थकी रचनामें अपनी प्रवृत्तिको औचित्य प्रतिपादित करिकें अब श्रीआचार्यजी बाधक शास्त्रन्के निराकरणके अर्थ प्रस्तुत शास्त्रको आरम्भ करे हें.

श्लोकार्थ:ये जगत्–पप्रञ्च भगवान्को कार्य हे तथा भगवद्रूप हे. ये भगवान्की मायासुं उत्पन्न भयो हे. भगवान्की अविद्याशक्तिके कारण जीवकुं अहन्ता–ममतात्मक संसार प्राप्त होवे हे एसे कह्यो जावेहे.

कितनेक मतवादी जगत्कुं मिथ्या कहिकें भगवद्भक्तिको निवारण करे हें. अर्थात् जेसें स्वप्नके पदार्थन्सों सेवा नहीं कर सके हें एसें ही जगत्के पदार्थ भी स्वप्नके पदार्थन्के समान झूठे हें. इनसों भी भगवत्सेवा नहीं होय सके हे. ये उनको अभिप्राय हे. कितनेक मतवादी जीवकुं व्यापक बतायके भगवत्सेवासों विमुख करे हें. अर्थात् जीव सर्व ठिकानें विद्यमान हे तथा जीव ही ब्रह्म हे तो जीव कौनकी सेवा करे या रीतिसों मोह करावे हें. इन दोनों मतन्कुं दूर करिवेके अर्थ जड तथा जीव के यथार्थ स्वरूपको वर्णन करे हें.

तहां सांख्य, पातञ्जल तथा वैद्य शास्त्रकर्ता जगत्कुं प्रकृतिसों बन्यो माने हें. ओर गौतम, कणाद, जैमिनि ऋषि जगत्कुं परमाणुको बन्यो माने हें. तथा मायावादी जगत्कुं विवर्त्तरूप माने हें, शुक्तिका जेसे रजतको विवर्त हे वेसे. अर्थात् जेसे छीपमें चांदीको भ्रम हो जाय हे तब छीप ही चांदी दीखे हे एसे ही अनादि वासनासों जीवकु शुद्ध ब्रह्ममें जगत्को भ्रम हो रह्यो हे तासों शुद्ध ब्रह्म ही जगत् रूपसों भासमान होवे हे. तथा कणाद, गौतम, जैमिनि या जगत्के प्रति अदृष्टकुं निमित्त माने हें. सांख्यवादी या जगत्के प्रति स्वभावकुं निमित्त माने हें. मायावादी वासनाकुं या जगत्के प्रति निमित्त मानें हे तथा बौद्धमतवारे जेसे बादल पहलेसों नहीं होय हें फिर अकस्मात् हो जाय हें एसें ही जगत् असतः सत्तारूप हे अर्थात्; पहले नहीं हतो–शून्य हतो फिर अकस्मात् जगत् हो गयो एसे माने हें. परन्तु या रीतिको जगत् नहीं हे.

जगत् भगवान्को कार्य हे. ''तदात्मानं स्वयमकुरुत'' इत्यादि श्रुतिन्के अनुसार परब्रह्मको अविकृत परिणाम ये जगत् हे. अर्थात् परब्रह्म पुरुषोत्तम ही अनेक प्रकारसों लीला करिवेके अर्थ प्रपञ्च–जगत्रूप होय रहे हें. आप ही याके करिवेवारे हें. वेदको ये ही सिद्धान्त हे. ओर श्रीमद्भागवत तथा वैष्णवशास्त्र श्रीनारदपञ्चरात्र को भी ये ही सिद्धान्त हे कि भगवान्में सर्वभवनसामर्थ्य हे अर्थात्; पुरुषोत्तममें एसी अद्भुत सामर्थ्य हे के जेसो रूप धारण करनो चाहें वेसे ही हो जावे हें. वा सामर्थ्यसों

आप जगत्‌रूप भये हें, वा ही सामर्थ्यकों माया कहे हें. वाको वर्णन वेदमें ''परास्य शक्तिर् विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च'' या मुण्डकश्रुतिमें हे.

अत्र संसार-प्रपञ्चयो: भेदाज्ञानात् केचिन् मुग्धा भवन्ति. तन्मोहनिराकरणाय भेदं निरूपयति अविद्यया इति. अविद्यापि तच्छक्ति:, मुख्यासु द्वादशशक्तिषु गणनात्, ''श्रिया पुष्ट्या गिरा'' (भाग.पुरा.१०।३९।५५) इति वाक्यात्. एवं सति ''स वै नैव रेमे, तस्माद् एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्, स हैतावानास'' (बृहदा.उप.१।४।३) इति श्रुतौ रमणार्थमेव प्रपञ्चरूपेण आविर्भावोक्ते:, वैचित्र्यं विना तदसम्भवो यत:, तस्माद् हेतो:, अस्य भगवत: शक्त्या अविद्यया जीवस्य संसार: उच्यते न तु जायते, अभिमत्यात्मकत्वात्, असत्त्वेन अस्य गणनात्. अज्ञानं भ्रम:, 'असद्'इत्यादिशब्दा: अहं-ममेतिरूपे संसारएव प्रवर्तन्ते नतु प्रपञ्चे इति अर्थ:, तस्य ब्रह्मात्मकत्वात्.

यहां कितनेक वादी संसार तथा जगत्‌कुं एक समुझिकें जगत्‌कुं भी मिथ्या माने हें ये उनकी भूल हे. क्योंके प्रपञ्च-जगत् तथा जीव इनके नाम हें. ओर जगत्‌के उपादान कारण भगवान् हें. ओर जेसें मनुष्य अपनी सामर्थ्यसों काम करे हें वो मनुष्यकी सामर्थ्य मनुष्यसों जुदा नहीं हे एसें ही भगवान् अपनी सर्वभवन सामर्थ्यसों जगत् बनावे हें वो सामर्थ्य भगवान्‌सों जुदी नहीं हे. वाही सामर्थ्यकुं माया कहे हें. विद्या ओर अविद्या ये दोनों वा मायाकी शक्ति हे ओर संसार अहन्ताममताको नाम हे. संसारको उपादान कारण कोई नहीं हे. अविद्या संसारको कारण हे. संसार अज्ञानरूप हे, मिथ्या हे. प्रपञ्च सत्य हे. अविद्याको कियो भयो जो संसार हे सो जीवके अर्थ ही कियो जाय हे.

श्रीभगवान्‌की अनन्तसामर्थ्य हे, गणना नहीं होय सके हे. परन्तु मुख्य द्वादश सामर्थ्य हें जिनको वर्णन दशमपूर्वार्द्धमें ''श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया।। विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्''. अर्थ:श्री, पुष्टि, गिरा, कान्ति, कीर्ति, तुष्टी, इला, उर्जा, विद्या, अविद्या, माया, ह्लादिनी शक्ति. इन द्वादश सामर्थ्यनकुं ही द्वादश शक्ति कहे हें. इनमें ही अविद्याशक्ति तथा मायाशक्ति को वर्णन हे.

इदम् उक्तं भवति. वस्तुतस्तु ''स वै नैव रेमे'' (बृहदा.उप.१।४।३) इत्यादिश्रुतिभ्यो रमणार्थमेव प्रपञ्चरूपेण आविर्भावात्, तदन्त:पातिपुरुषरूपेण तत्कृतसाधनरूपेण आविर्भूय तत्फलरूपेण च आविर्भवन् क्रीड़ति भगवान्. एवं सति ''अहम् एतत्कर्मकर्ता''-''एतज्जनितं फलञ्च मम''-''अहम् एतस्य भोक्ता'' इत्यादिज्ञानानि स्वस्य, स्वक्रिया:, तत्फलस्य च अब्रह्मत्वेन ज्ञानाद् भ्रमरूपाणि इति मन्तव्यम्. स च अहन्ता-ममतात्मक: अविद्यया क्रियते. तत्वज्ञाने सति, उक्तरूपत्वज्ञानात्, निवर्तते, नतु प्रपञ्च:, ब्रह्मात्मकत्वात्.

ननु प्रपञ्चात्मकस्य घटादे: दण्डमुद्गरात्मकेन तेन तिरोभाववत् तत्वज्ञानात्मकेन तेन तस्य तिरोभाव: इत्यपि सुवचम्. अत: न अविद्याहेतुकत्वम् असत्वं वा संसारस्य वाच्यम्, प्रपञ्चमध्यपातित्वेन ब्रह्मात्मकत्वात्.

न च एवं संसारस्य नित्यत्वापत्त्या मुक्त्युच्छेद: इति वाच्यम्. यत्कालावच्छेदेन यस्मिन् पुरुषे संसाररूपेण आविर्भाव: तदवच्छेदेन संसारित्वं तस्य उच्यते, मुक्तिरूपेण आविर्भावे तु मुक्तत्वम् इति उपपत्ते:. यथा घटादिषु आमदशायां श्यामरूपेण आविर्भावे तथात्वव्यवहार:, पक्वे रक्तत्वव्यवहार:, तद्रूपेण आविर्भावात्, तथा इति.

''वाने रमण नहीं कियो, अतएव एकाकी पुरुष रमण नहीं करे हे, वाने दूसरेकी इच्छा कीनी, वो या प्रकारसुं भयो'' इत्यादि. या श्रुतिमें रमणके अर्थ ही भगवान्‌के प्रपञ्चमें आविर्भूत होयवेकी बात कही हे. वैचित्र्य तथा वैविध्य के अभावमें रमण हो नहीं सके हे अत: रमणार्थ वैचित्र्यकी आवश्यकता हे. याही कारणसों भगवान्‌की अविद्या नामिका शक्तिद्वारा जीवके संसारकी बात कही जावे हे. जीवको अहन्ता-ममतात्मक संसार वस्तुत: उत्पन्न नहीं होवे हे क्योंके वो तो काल्पनिक हे तथा वाकी गणना असद्रूप अथवा मिथ्या पदार्थके रूपमें करी गई हे. तात्पर्य ये हे के अज्ञान, भ्रम तथा असत् आदि शब्दन्‌को शास्त्रमें प्रयोग अहन्ता-ममतात्मक जीवके संसारके अर्थ होवे हे, प्रपञ्चके अर्थ नहीं क्योंके प्रपञ्च तो ब्रह्मात्मक हे.

तात्पर्य ये हे के भगवान्‌के रमणार्थ ही या प्रपञ्चको आविर्भाव भया हे. अतएव या प्रपञ्चमें, प्रपञ्चमें रहे भये पुरुष अथवा जीव के रूपमें, उनके द्वारा करे जाते साधनन्‌के रूपमें तथा उन् साधनन्‌सों प्राप्त होते फलके रूपमें आविर्भूत होयकें भगवान् ही सर्वत्र क्रीड़ा करे हें. या स्थितिमें ''में या कर्मको कर्ता हुं''–''या कर्मसुं उत्पन्न होयवे वारो फल मेरो हे''–''में या फलको भोक्ता हुं'' इत्यादि ज्ञानकुं भ्रमरूप समझनो चहिये क्योंके या ज्ञानमें स्वयंकुं, स्वयंकी क्रियाकुं तथा वासुं उत्पन्न होते फलकुं अब्रह्मरूप समुझ्यो गयो हे. अहन्ता–ममतात्मक संसार अविद्याकी कृति हे तथा तत्वज्ञान होय जावे पर उपर्युक्त संसारकी निवृत्ति हो जावे हे. प्रपञ्च, परन्तु, ब्रह्मात्मक हे अत: तत्वज्ञान होय जावे पर भी प्रपञ्चकी निवृत्ति नहीं होवे हे. या प्रकार संसार तथा प्रपञ्च के बीच भेद समझनो.

प्रपञ्च तथा संसार दोनोन्‌कों ब्रह्मात्मक तथा सत्य मानवेवारे सत्कार्यवादी ब्रह्मवादी एकदेशी शङ्का करे हे जो जा प्रकार दण्ड–मुद्गर आदिसों प्रपञ्चात्मक घटादिको तिरोभाव हो जावे हे वाही प्रकार तत्वज्ञान होयवे पर संसारको तिरोभाव हो जावे हे एसे भी कहि सकत हें. अत: सिद्धान्तीकुं ये नहीं कहेनो चहिये के संसार अविद्यासुं उत्पन्न होवे हे जासुं वो असत् हे. वस्तुत: प्रपञ्चमध्यपाती होयवेसुं संसार भी ब्रह्मात्मक ही हे.

सिद्धान्ती ये भी नहीं कहे सके हे के या प्रकार संसारकों हु प्रपञ्चकी भांति ब्रह्मात्मक, सत्य तथा नित्य मान लेवेसों मुक्तिकी प्राप्तिकी सम्भावना ही समाप्त हो जायगी. क्योंके जा समय जा पुरुषमें भगवान्‌को संसार रूपसों आविर्भाव होवे हे वा समय वो पुरुष 'संसारी' कह्यो जाय हे तथा जा समय जा पुरुषमें भगवान् मुक्ति रूपसों आविर्भूत होत हें तब वो पुरुष 'मुक्त' कह्यो जाय हे. लोकमें, जेसे, जब कच्चे घट आदि श्याम पदार्थमें भगवान् श्यामरूपसों आविर्भूत होय हें तब वे घट आदि श्याम या काले कहे जाय हें तथा पक जायवे पर जब भगवान् उनमें लाल रूपसों आविर्भूत होवे हें तब वे लाल कहे जाय हें. या प्रकार भगवान्‌के मुक्तिरूपसों आविर्भूत होयवे पर व्यक्ति मुक्त कह्यो जायगो ओर मुक्तिके उच्छेदको प्रसङ्ग उपस्थित नहीं होयगो.

न च अविद्यया बन्ध: इति श्रुत्यादिप्रसिद्धे: न एवम् इति वाच्यम्, दण्डघटादिसमानयोगक्षेमत्वात् प्रसिद्धे:.

एवं शुद्धो ब्रह्मवाद: सिद्धो भवति सन्मते।
अन्यस्याणोरपि प्राप्तौ मायापक्षो न किं भवेत्।।

न भवेत्. श्रुतितो हि प्रपञ्चस्य ब्रह्मता उच्यते. तस्य नित्यत्वाद् आविर्भाव–तिरोभावौ उच्येते. तौ च विद्यमानस्यैव वस्तुन: सम्भवतो, न असत:. सतश्च न असत्वम्. तथा च संसारस्य अविद्याहेतुकत्वमेव श्रुति: वदति, न प्रपञ्चवद् ब्रह्मरूपताम्. प्रपञ्चरूपेण आविर्भावम् उक्त्वा यदविद्यया संसारम् आह, विद्यया तद् अभावञ्च आह. अत: प्रपञ्चभिन्नत्वम् अवश्यम् उररीकार्यम्. तथा सति असत्वमेव सम्पद्यते संसारस्य.

यच्च उक्तं दण्ड–मुद्गर–घटादिसमानयोगक्षेमत्वम् अविद्या–विद्याकृतबन्धमोक्षयो: इति तत्रपि उच्यते. स्यादेवम् यदि प्रपञ्चमध्यपातित्वं स्यात् संसारस्य, नच एवम्, कारणभेदात्. नहि यौक्तिकम् इदं शास्त्रे किन्तु श्रौतमिति आस्तिकै: तथैव मन्तव्यम् इति।।२३।।

एकदेशी पुन: शङ्का करे हे : सिद्धान्तीको ये कहेनो भी ठीक नहीं हे के श्रुतिमें बन्धनकुं अविद्याजन्य कह्यो गयो हे अत: बन्धनात्मक संसारकुं मिथ्या ही माननो चहिये, ब्रह्मात्मक, सत्य तथा नित्य नहीं. क्योंके बन्धन रूप संसार तथा दण्ड–घटादिमें समानता प्रसिद्ध हे. फलत: संसारकुं मिथ्या स्विकार करिवे पर दण्ड–घट आदिकुं भी मिथ्या मानवेको अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होयगो. यासुं संसारकुं मिथ्या मानवेको सिद्धान्त ठीक नहीं हे. अत: संसार तथा प्रपञ्च दोनोन्‌कुं सत्य माननो ही उचित हे.

एकदेशी सङ्ग्रहश्लोकसुं अपने मतको उपसंहार करे हे. या प्रकार संसार तथा प्रपञ्च दोनोन्कुं ब्रह्मात्मक एवं सत्य मानवेसुं सत्कार्यवादी हमारे मतमें शुद्ध ब्रह्मवादकी सिद्धि हो जाय हे. सिद्धान्तीके पक्षमें प्रपञ्चकुं सत्य मानते भये भी संसारकु मिथ्या मान लेवेसुं तथा या प्रकार मायिकत्व अथवा मिथ्यात्व को आंशिक स्वीकार कर लेवेसुं शुद्ध ब्रह्मवादकी सिद्धि नहीं हो सके हे. प्रपञ्चमध्यपाति संसारकु मिथ्या तथा मायिक माननो प्रकारान्तरसुं मायावादके पक्षको स्वीकार नहीं कह्यो जायगो?

संसारकु मिथ्या माननो मायावादीके पक्षको स्वीकार नहीं कह्यो जा सके हे.

सिद्धान्तमें प्रपञ्चकी ब्रह्मात्मकताको प्रतिपादन श्रुतिवचनके आधार पर कियो जाय हे. प्रपञ्च नित्य हे तासुं वाके आविर्भाव-तिरोभाव होयवेको प्रतिपादन कियो जाय हे. आविर्भाव-तिरोभाव विद्यमान अर्थात् सत्ताशील पदार्थके ही सम्भव हें, असत् पदार्थके नहीं. सत् पदार्थको विनाश अर्थात् असत् हो जानो भी सम्भव नहीं हे. ओर श्रुतिमें भी संसारकी अविद्या-जन्यता कही गई हे. श्रुतिमें कहुं संसारकु प्रपञ्चकी न्यांई ब्रह्मात्मक अथवा सत्य नहीं बतायो गयो हे. पूर्वादाहृद बृहदारण्यक श्रुतिमें ब्रह्मके प्रपञ्च रूपमें आविर्भूत होयवेको प्रतिपादन करके अविद्यासों संसारकी उत्पत्ति तथा विद्यासों वा मिथ्या संसारके नाशको प्रतिपादन भयो हे. अत: संसारको प्रपञ्चसुं भिन्न होनो श्रुतिसिद्ध हे. फलत: संसारकु प्रपञ्चसों भिन्न तथा विद्याद्वारा विनाश्य मनवे पर वाकु असत् ही माननो पड़ेगो.

ओर एकदेशीने जो ये कही के दण्ड-मुद्गर-घटादि तथा अविद्याकृत बन्ध एवं विद्याकृत मोक्षमें समानता हे वाके विरोधमें हम ये कहनो चाहेंगे के विनकी समानताकी बात तब कही जा सकती हती के जब संसार प्रपञ्चके अन्तर्गत होतो. संसार, परन्तु, प्रपञ्चके अन्तर्गत नहीं हे क्योंके संसार तथा प्रपञ्चके कारण परस्पर भिन्न हें. अत: बन्ध तथा मोक्ष कुं दण्डमुद्गरादिके समान कहेनो भी ठीक नहीं हे. वस्तुत: देख्यो जाय तो संसार तथा प्रपञ्चके कारण, उनको परस्पर भेद आदि विषयन्को निर्णय शास्त्रमें युक्तिके आधार पर नहीं कियो गयो हे. अतएव सिद्धान्ती हु उक्त विषयन्को प्रतिपादन युक्तिन्के आधार पर नहीं आपितु श्रतिके आधार पर कर रह्यो हे. अत: श्रुतिमें आस्था रखिवे वारे आस्तिकन्कुं तो एसे ही माननो चहिये के कारणमें भेद होयवेसुं संसार तथा प्रपञ्च एक दूसेरसुं भिन्न हें।।२३।।

अस्य स्वरूपं ज्ञानपर्यन्तमेव तिष्ठति इति वक्तुम् आह संसारस्य लयो मुक्तौ इति.

संसारस्य लयो मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित्।।

कृष्णस्यात्मरतौ त्वस्य लय: सर्वसुखावह:।।

उत्पत्ति-प्रलयो: भिन्नप्रकारत्वाद् उभयो: भेद:. मुक्त्यर्थं प्रपञ्चविलयाभावे कदापि न विलय: स्याद् इति आशङ्क्य आह कृष्णस्यात्मरतौ इति. यदा स्वरतीच्छा तदा प्रपञ्चस्वरूपं स्वस्मिन् विलाप्य रमते. ननु एवं सति जीव-ब्रह्मणो: मुक्तिप्रकारइव उक्त: इति चेत् तत्र आह सर्वसुखावह: इति. जीवानां तदा सुखार्थे प्रलयं करोति यथा रात्रिम्.

एवं भगवदिच्छां प्रपञ्चजनन-प्रलयकरणत्वेन निरूप्य जीवानाम् उत्पत्तिपूर्वकं मोक्षं निरूपयितुम् आह पञ्चपर्वा इति.

पञ्चपर्वा त्वविद्या हि जीवगा मायया कृता।।२४।।

जीवसंसारहेतुभूता अविद्या पञ्चपर्वा, तेन सर्वांशनिराकृतेन निराकृता भविष्यतीति तदर्थं भगवद्भजनं कर्तव्यम् इति वक्तुं तां प्रथमम् उक्तवान्. जीवमेव गच्छति न तु अंशान्तरम्. तस्या: दुर्बलत्वाय आह मायया कृता इति।।२४।।

संसारकी सत्ता तब तक ही रहे हे जब तक ज्ञान नहीं होय हे, ज्ञान होते ही संसारको नाश हो जाय हे ये समुझायवेके अर्थ ''संसारस्य लयो मुक्तौ'' सुं प्रारम्भ होती अग्रिम कारिका कहत हें.

अहन्ता-ममतारूप जो संसार हे सो जहां तांई ज्ञान नहीं होय हे तहां तांई रहे हे, ज्ञान भयेसों जब जीव जीवन्मुक्त हो जाय हे तब अहन्ता-ममतारूप संसारको विलय होय जाय हे, जगत्को लय नहीं होय हे. जब भगवान्की आत्मरतीच्छा,

अर्थात् सोते भये मनुष्यके समान स्वरूपके भीतर रमण करिवेकी इच्छा होय हे तब अपने बनाये भये जगत्कुं अपने स्वरूपमें लीन करले हें. तब जे जीव मुक्त नहीं भये हें उनके अहन्ता–ममतारूप संसारको सर्वथा अभाव तो नहीं होय हे, परन्तु, अभि–भव हो जाय हे. अर्थात् उनकी अहन्ता–ममता निर्बल हो जाय हे, दब जाय हे. तासों मुक्त–अमुक्त सब जीवन्कों सुख देवेके अर्थ भगवान् प्रलय करे हें।।

या प्रकासुं सिद्धान्तीने प्रपञ्चकी उत्पत्ति तथा प्रलय को कारण भगवदिच्छा हे ये निरूपित करिके अब जीवन्की उत्पत्तिके निरूपण पूर्वक उन जीवन्के मोक्षको निरूपण करिवेके अर्थ अविद्याको स्वरूप आदि दिखाय रहे हें.

जीवके संसारकी कारणभूत अविद्याके पांच पर्व हें. अत: इन पांच पर्वन्को पूर्ण रूपसुं निराकरण करि देवे पर अविद्या भी निरस्त हो जाय हे. अविद्याके निराकरणके अर्थ भगद्भजन करनो चहिये एसो प्रतिपादन करिवेके अर्थ प्रथम वा अविद्याको स्वरूप बतायोहे. अविद्या जीवकुं ही प्रभावित अथवा वशमें करे हे, भगवान्के अन्य अंशन्कुं नहीं।।२४।।

जीवस्वरूपनिरूपणार्थं ब्रह्मण: सकाशाद् विस्फुल्लिङ्गादिवद् उद्भवं वक्तुं कारणभूतब्रह्मस्वरूपम् आह आकाशवद् इति द्वाभ्याम्.

आकाशवद् व्यापकं हि ब्रह्म मायांशवेष्टितम्।।
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।।२५।।

लोकदृष्ट्या दृष्टान्त:. ब्रह्मणो व्यापकत्वं, बृहत्वात्, अन्यथा 'ब्रह्म'पदप्रयोग: न उपपद्यते. आत्मरमणानन्तरं तिरोहितं भवतीति मायया तादृशभाव:, तेन वेष्टितं भवति. तस्य स्वरूपम् आह सर्वत: पाणिपादान्तम् इति. प्रमाणनि–रूपणाय गीतावाक्यम् उच्यते. सर्वत्र प्रदेशे पाणय: पादा: अन्ता यस्य. गति–कृतिलक्षणे क्रिये, सर्वत्र स्वेच्छया परि–च्छेदावभानञ्च उक्तम्. सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् इति ज्ञानप्राधान्यं भोगाश्च सर्वत्र उक्ता:।।२५।।

जीवके स्वरूपको निरूपण करिवेके अर्थ, ब्रह्ममेंसों अग्निविस्फुलिङ्ग आदिकी भांति जीवके व्युच्चरित होयवेको प्रति–पादन करिवेके अभिप्रायसों प्रथम जीवके कारणभूत ब्रह्मको स्वरूप 'आकाशवद्' इत्यादि दो श्लोकन्सुं दिखावे हें.

जगत्को कारण जो ब्रह्म हे ताके स्वरूपको वर्णन करे हें. ब्रह्मको व्यापकत्व श्रुतिन्में ब्रह्मके 'बृहत्' होयवेको प्रति–पादन मिलवेसुं श्रुतिसिद्ध हे. ब्रह्मकु यदि व्यापक नहीं मान्यो जाय तो वाके प्रति 'ब्रह्म' पदको प्रयोग ही उपपन्न नहीं होयगो. अतएव ब्रह्म हे सो आकाशकी तरह सब ठिकाने व्यापक हे. आत्मरमण करे पीछे जब जगत्रूप होयके क्रीडा करिवेकी इच्छा ब्रह्मकुं होय हे तब भगवान् मायारूप धारण करे हे ओर मायारूप करिके अपनी व्यापकताकुं छिपायले हे. वा छिपी भई व्याप–कताकुं ब्रह्मज्ञानी देख सके हें.

जा ब्रह्मसुं जीव नि:सृत होवे हे वाको स्वरूप कहे हें. सब ठिकाने आपके श्रीहस्त तथा चरणारविन्द ओर उनके अन्त (समग्रता) विद्यमान हें. वासों सब ही ठिकाने भगवान् गमन करे हें तथा कार्य करे हें ओर अपनी उच्छासों अपनें स्वरूपकी हद भी दिखावे हें यह बात भी सिद्ध भई. तथा सर्वत्र ब्रह्मके नेत्र, मस्तक तथा मुखारविन्द भी विद्यमान हें. यासों सब पदार्थन्को आपकु ज्ञान हे तथा सर्वत्र भोग करते रहे हें ये बात सिद्ध भई।।२५।।

नामप्रपञ्चार्थम् आह सर्वत: श्रुतिमल्लोके इति.

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

एतादृशस्य परिच्छेदः सम्भविष्यति इति अतः आह सर्वमावृत्य तिष्ठति इति. एते धर्माः प्रपञ्चोत्पत्यनन्तरमेव स्पष्टा भवन्ति तथापि तेषां नित्यत्वख्यापनाय प्रथमतो वचनम्.

सर्वत्र परिच्छेदस्य प्रयोजनम् आह अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म इति.

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तिमत्।।२६।।

'अनन्त'पदस्य इममेव अर्थं ज्ञापयितुं हि शब्दः. तर्हि खण्डशः स्याद् इति आशङ्क्य आह अविभक्तम् इति. अनन्तमूर्तिष्वपि न परस्परं विभेदः, केवलम् इच्छया तावन्मात्रप्रकटनार्थं विभक्तिमत्।।२६।।

नाम प्रपञ्चको निरूपण करिवेके अर्थ ब्रह्मके अन्य धर्म कहत हें.

सब ठिकाने आपके श्रीकर्ण विद्यमान हें, सब ठिकाने सुनते रहे हें. उपर्युक्त श्रीहस्त, चरण, आंख, श्रीकर्ण आदि वारे साकार ब्रह्मकुं परिच्छिन्न कोई समुझ न ले तासों कहत हें जो वो ब्रह्म सभी प्रदेशनकुं आवृत करके स्थित हे. अर्थात् ब्रह्म व्यापक-अपरिच्छिन्न हे. आपके अनन्त धर्म अर्थात् अनेक गुण प्रलयमें भी रहे हें परन्तु जगत् बनाये पीछें ही अच्छी रीतिसों प्रकट होवे हें.

सर्वत्र परिच्छेदको प्रयोजन आगेके श्लोकसुं बता रहे हें.

अनन्तमूर्ति भगवान्ने अनन्त रूपसों प्रकट होयवेके अर्थ अपने व्यापक अपरिमित रूपमें (परिच्छेद) परिमाण प्रगट कियो हे. अनन्तमूर्ति होयवे पर ब्रह्म खण्ड-खण्डमें विभक्त हो जायेगो-या आशङ्काको निराकरण करत हें. भगवान् अनेक रूपसों प्रकट होय हें तथापि उन रूपन्में परस्पर भेद नहीं हे. भगवान् जितनो स्वरूप दिखानो चाहिये हे उतनो बडो ही रूप दिखायवेके अर्थ भगवान् विभागवाले हें।।२६।।

एतत् स्वरूपम् उक्त्वा ततः सृष्टिं वक्तुं तदिच्छां कारणत्वेन आह बहुस्याम् इति.

बहुस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत्सती।।

अनेकत्वम् उच्चनीचत्वञ्च भावयामास. भावना तस्य सती विषयाव्यभिचारिणी. ततो यज्जातं तद् आह तदिच्छामात्रतः इति.

तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।।२७।।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया।।
विस्फुलिङ्गा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।।२८।।

तस्मादेव, ब्रह्मभूताः नतु योगबलेन आविर्भूताः, अंशाः साकाराः सूक्ष्मपरिच्छेदाः, चेतनाः चित्प्रधानाः. सर्वे असङ्ख्याताः. सृष्ट्यादौ प्रथमसृष्टौ. ततः साकारा भगवद्रूपाअपि उच्चनीचभावेच्छया निर्गताइति निराकारा जाताः. निर्गमने दृष्टान्तम् आह विस्फुलिङ्गा इवाग्नेः इति. ''यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति'' (ब्रहदा.उप.२।१।२०) इति श्रुतिः. एवं जीवोद्गमम् उक्त्वा जडोद्गमम् आह सदंशेन इति. सत्प्राधान्येन।।२८।।

ब्रह्मके स्वरूपको निरूपण करिवेके पीछे अब सृष्टिको निरूपण करिवेके अभिप्रायसों ब्रह्मकी इच्छा सृष्टिको निमित्त कारण हे एसो प्रतिपादन करे हें.

भगवान्की बहुत प्रकारसों प्रकट होयवेकी इच्छा भई तब, सृष्टिके प्रारम्भमें, ब्रह्मके सङ्कल्पमात्रसों, भगवान्के स्वरूपसों, ब्रह्मरूप, बहुत छोटे, चेतनरूप-चैतन्यगुणवाले साकार जीव प्रगट भये. तदनन्तर जीव, साकार तथा भगद्रूप होयवे पर भी निराकार-निरानन्द होय गये क्योंके वे ब्रह्मकी उंचे-नीचे भावसों प्रकट होयवेकि इच्छा करिके प्रकट भये हते. जीव

ब्रह्ममेसों कौन प्रकार नि:सृत भये ये दिखायवेकुं दृष्टान्त देत हें–जेसे अग्निसों अग्निके कण निकले हें वा ही प्रकार ब्रह्मके 'चित्' अंशसों जीव निकसें हें, एसे ही ब्रह्मके 'सत्' अंशसों जड निकलें हें।।२८।।

अन्तर्याम्युद्गमम् आह आनन्दांशस्वरूपेण इति.

आनन्दांशस्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः।।

यथा जीवानां नानात्वं तथा अन्तर्यामिणामपि, एकस्मिन् हृदये हंसरूपेण उभयप्रवेशात्. भेदस्तु जीवेऽपि नास्तीति न कापि अनुपपत्ति:.

त्रैविध्ये हेतुम् आह सच्चिदानन्दरूपेषु इति.

सच्चिदानन्दरूपेषु पूर्वयोरन्यलीनता।।२९।।

अतएव निराकारौ पूर्वावानन्दलोपत:।।

सति चिदानन्दधर्मयो: तिरोभाव:. चिति आनन्दस्य

अब सच्चिदानन्द ब्रह्ममेंसुं अन्तर्यामीके उद्गमको प्रतिपादन करतहें. ब्रह्मके आनन्दांशसों अन्तर्यामी निकलें हें. जेसे जीव अनेक हें वेसे ही अन्तर्यामी भी अनेक हें. क्योंके सबके ही हृदयमें एक जीव ओर एक अन्तर्यामी रहे हें. कदाचित् कहोगे ''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'' या गीतावाक्यमें अन्तर्यामीको एकवचनमें प्रयोग हे तासों एक ही अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजे हे यह बात मालुम पडे हे ताको उत्तर ये हे जो या गीतावाक्यमें जो एकवचन हे सो ब्रह्मके अभिप्रायसों हे. अर्थात् अनेक अन्तर्यामीरूप होयकें सबके हृदयमें विराजमान ईश्वर एक ही हे यह जतायवेके अर्थ 'ईश्वरः' यह एकवचन हे. अनेक अन्तर्यामी होंयगे तो अनेक ब्रह्म मानने पडेंगे ओर वेदमें तो एक ही ब्रह्म मान्यो हे तासों विरोध आवेगो–एसी शङ्का भी नहीं करनी क्योंके जेसें अनेक जीवन्के साथ ब्रह्मको अभेद हे याही प्रकार अनेक अन्तर्यामिन्के साथ भी ब्रह्मको अभेद ही हे तासों अनेक ब्रह्म नहीं मानने पडेंगे. एक ही ब्रह्म अनेक अन्तर्यामीरूप तथा अनेक जीवरूप तथा अनेक जडरूप होयके प्रकट हो रह्यो हे ये ही वैदिक सिद्धान्त हे।।२९।।

जड़ जीव तथा अन्तर्यामी के त्रैविध्यको कारण बता रहे हें.

श्लोकार्थ : सच्चिदानन्दरूप जड़, जीव तथा अन्तर्यामीमें पूर्ववर्ती दोउन्में अर्थात् जड़ तथा जीवमें अन्य अर्थात् पश्चाद्वर्ती अंश तिरोहित रहे हें. अर्थात् जड़तत्वमें चित् तथा जीवमें आनन्द अंश तिरोहित रहे हे. अतएव जड़ तथा जीव दोउ आनन्दके तिरो-हित होयवेसुं निराकार–निरानन्दहें.

आनन्दांशतिरोभावस्यापि ज्ञापकम् आह अतएव निराकारौ इति. भगवदाकार: चतुर्भुजत्वादि: 'आकार'शब्देन उच्यते. लोप: तिरोभाव:.

एवं स्वरूपे वैजात्यम् उक्त्वा नामतोऽपि वैजात्यम् आह जड इति.

जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मत:।।३०।।

सर्वस्यापि भगवत्त्वे जडादिपदप्रयोगो व्यवहार:।।३०।।

या प्रकारसुं जड़, जीव तथा अन्तर्यामी को स्वरूपत: एक दूसरेसुं विजातीय अर्थात् भिन्न होयवेको प्रतिपादन करिके अब नामकी दृष्टिसों भी इन तीनोंन्के विजातीय होयवेको प्रतिपादन करत हें.

जेसें तेज दो प्रकारको हे एक तो धर्मिरूप तेज, जेसें दिया. ओर दूसरो धर्मरूप तेज, जेसें दियाको प्रकाश. एसें ही सत्–चित्–आनन्द दो प्रकारके हें एक तो धर्मीरूप सत्–चित्–आनन्द हें ओर दूसरे धर्मरूप सत्–चित्–आनन्द हें. तहां जडमें धर्मी–रूप चित्–आनन्द छिप रहे हें. ओर जीवमें धर्मरूप आनन्द छिप रह्यो हे. अन्तर्यामिमें तो तीनों धर्म प्रकट हें. वास्तवमें तीनों भगवद्रूप हें तथापि उनमें 'जड' 'जीव' 'अन्तर्यामी' इन शब्दन्‌को प्रयोग व्यवहाररूप हे।।३०।।

एवं त्रैविध्यम् उपपाद्य चिदंशानां जीवानां संसारप्रकारम् आह विद्याविद्येइति.

विद्याविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते।।
ते जीवस्य नान्यस्य दु:खित्वं चाप्यनीशता।।३१।।

मोक्षोऽपि एक: सर्गइति विद्यायाअपि निरूपणम्. आत्मन: स्वरूपलाभो विद्यया, देहलाभो अविद्यया इति. उभयो: जीवधर्मत्वं व्यावर्तयति हरे: शक्ती इति. तेन भगवदिच्छयाएव तयो: आविर्भाव–तिरोभावयो: हेतुत्वम् इति उक्तम्. अनयो: मायाधीनत्वम् आह माययैव विनिर्मिते इति. तेन ''मामेव ये प्रपद्यन्ते'' (भग.गीता.७।१४) इति वाक्याद् भक्तौ सत्याम् अविद्यादि निवर्तते, विद्यापि. अन्यथा नित्यमुक्तता न स्यात्. ते उभे जीवरूपस्यैव अंशस्य भवत:, नान्यस्य जडस्य अन्तर्यामिणो वा. जीवस्यैव दु:खित्वम् अनीशत्वञ्च।।३१।।

या प्रकार त्रैविध्यको प्रतिपादन करिके अब चिदंशभूत जीवन्‌कुं संसार होयवेको प्रकार दिखावें हें 'विद्या' इति.

विद्या ओर अविद्या ये दोनों भगवान्‌की शक्ति हें. मायाद्वारा प्रकट भई हें. यासों भगवान्‌नें मायाके ही आधीन करि राखी हे.

भगवान्‌की इच्छाके ही आधीन अविद्याको प्रकट होनो ओर छिप जानो हे. एसे ही विद्याको (आविर्भाव) प्रकट होनो ओर (तिराभाव) छिप जानो भी भगवान्‌की इच्छाहीके आधीन हे. विद्या–अविद्या ये दोउ जीवके धर्म नहीं हें. देहकी प्राप्ति तथा जन्म–मरण अविद्यासों होय हें. विद्यासों जीवको (मोक्ष) स्वरूपलाभ होय हे. अर्थात् ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छे गुण अविद्याके कारण छिपे रहे हें. वे ही विद्यासों पीछे जीवमें प्रकट हो जाय हें तथा भगवान्‌सों प्रकट होते समयमें जेसो इनको स्वरूप हतो वेसो ही स्वरूप हो जाय हे. याहीको नाम मुक्ति हे. ये भी एक प्रकारकी भगवान्‌की सृष्टिलीला हे. जेसे खेलमें राजा कोई छूटे भये पुरुषकुं बांध देवे हे, कोई बंधे पुरुषकुं छोड देवे हे. ये दोनों काम राजाकी क्रीडामें ही समुझे जावे हें. भगवान्‌की इच्छा साधनके द्वारा ही मुक्ति देवेकी हे तासों मुक्तिके साधन वेद–पुराणमें लिखे हें. ''मामेव ये प्रपद्यन्ते माया–मेतान्तरन्ति ते''. भगवान् कहें हें:मेरे शरण आयवेवारे जीव मायाकुं तर जावे हें. भक्ति जब सिद्ध हो जावे हे तब तो जीवकी विद्या ओर अविद्या दोनों निवृत्त अर्थात् दूर होय जाय हें ओर जीव नित्य मुक्त होय जाय हे. क्योंकि भक्तिसों जीव मायाकुं भी तर जावे हे तब मायाके आधीन जो विद्या–अविद्या हें इनके निवृत्त होयवेमें कहा आश्चर्य हे विद्या–अविद्या ये दोनों जीवके ही बन्ध–मोक्ष करिवे वारी हें, जड तथा अन्तर्यामी के उपर इनको असर नहीं हे. तासों जीवकुं अविद्यासों दुःख होय हे तथा (निरंकुशता) दुराचारीपनो होय हे. (विपरित ज्ञान) उलटे ज्ञानको नाम 'अविद्या' हे. वो अविद्या दो प्रकारकी हे एक तो सम–ष्टिरूपा तथा दूसरी व्यष्टिरूपा. बहोतन्‌को एक समझनो समष्टि कहावे हे. जेसे बहुत वृक्षन्‌को समुह सो वन एसो जाननो समष्टि हे. ओर वनकुं बहुतसे वृक्ष हें एसो जाननो व्यष्टि हे. एसें ही सृष्टिके पहिले मायासों उत्पन्न भई जो समूहरूप अविद्या हे वो

समाष्टिरूप अविद्या हे. वो भगवान्‌की शक्ति हे. न्यारे-न्यारे जो पांच पर्व हें सो व्यष्टिरूप अविद्या हे. वो जीवन्‌की अविद्या हे।।३१।।

अविद्याया: पञ्चपर्वाणि आह स्वरूपाज्ञानमेकम् इति.

स्वरूपाज्ञानमेकं हि पर्व देहेन्द्रियासवः।।
अन्तःकरणमेषां हि चतुर्धाध्यास उच्यते।।३२।।
पञ्चपर्वा त्वविद्येयं यद्बद्धो याति संसृतिम्।।

अन्त:करणाध्यास:, प्राणाध्यास:, इन्द्रियाध्यासो, देहाध्यास:, स्वरूपविस्मरणञ्च इति पञ्च पर्वाणि।।३२।। यस्यां सम्पूर्णायां जातायाम् अन्यधर्मैर्बद्धो जन्म-मरणे प्राप्नोति इति अर्थ:.

पांच पर्वको स्वरूप दिखावे हें. जीवकुं पहले महत् तत्व अहङ्काररूप अन्तःकरणको सम्बन्ध भयो तब अविद्यासों जीव अन्तःकरणकुं अपनो स्वरूप मानवे लाग्यो याहीको नाम 'अन्तःकरणाध्यास' हे. ये अविद्याको पहिलो पर्व हे. यासों जीवकुं ''में कर्ता हुं''-''में भोग करुं हुं''-''में जानुं हुं'' इत्यादिक अभिमान होवे हें. ता पीछे अहंतत्वको दूसरो रूप जो प्राण हे वाके साथ जीवको सम्बन्ध भयो. तब अविद्याके कारण जीव प्राणन्‌कुं अपनो स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम 'प्राणाध्यास' हे. ये अविद्याको दूसरो पर्व हे. यासों ''में भूखो हुं'' ''तृप्त हुं'' इत्यादिक प्राणधर्मन्‌कुं अपने मानवे लगे हे. ता पीछें जीवको इन्द्रियन्‌के साथ सम्बन्ध भयो. इन्द्रियन्‌कुं अपने स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम 'इन्द्रियाध्यास' हे. ये अविद्याको तीसरो पर्व हे. या करके जीव ''में सुलोचन हुं''-''में काणो हुं'' इत्यादि इन्द्रियन्‌के धर्मन्‌कुं भी अपने माने हे. ता पीछे या जीवको देहके साथ सम्बन्ध भयो. तब देहकुं अपनो स्वरूप मानवे लग्यो. याको नाम देहाध्यास हे. या करिकें जीव ''में दूबलो हुं''-''में मोटो हुं'' इत्यादि देहके धर्मन्‌कुं अपने माने हे. ये देहाध्यास अविद्याको चोथो पर्व हे. ये चारों पर्व जब पूरे होय जावे हें तब अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय, देह इन्‌कुं जीव हे सो अपनो स्वरूप मानवे लग जावे हे. भगवान्‌को अंश चेतनरूप जो जीवको अपनो स्वरूप हे ताकुं भूल जावे हे. याहीको नाम 'स्वरूपविस्मृति' हे. ये अविद्याको पांचवो पर्व हे. अविद्याके पांच पर्व जब जीवमें आय जावे हें तब यह जीव अन्तःकरण प्राण इन्द्रिय देह इनके गुणन्‌सों बंध्यो भयो जन्म-मरणकुं पावे हे. जा देहकुं जीव ''देह हे सो में ही हुं'' एसो माने हे वो ही जीवको जन्म हे. ये जीव अपने चेतनरूपकुं भूलके देहकुं अपनो स्वरूप माने हे. कोई कारण करिकें देहादिकन्‌कुं भी भूल जावे हे. वाहीकुं मरण कहें हें.

अविद्यां निरूप्य विद्यां निरूपयति विद्यया इति.

विद्ययाऽविद्यानाशेतु जीवो मुक्तो भविष्यति।।३३।।
देहेन्द्रियासवः सर्वे निरध्यस्ता भवन्ति हि।।
तथापि न प्रलीयन्ते जीवन्मुक्तगताः स्फुटम्।।३४।।

निद्रावद् अविद्यापगमे न जीवस्य जन्म-मरणे. तदा तस्मिन् जन्मनि गृहीतानां देहादीनां विलयाभावम् आह देहेन्द्रियासवः इति. अध्यासएव गच्छति, न स्वरूपं, प्रपञ्चमध्यपातात्. अध्यासाभावे स्थिति: न स्याद् इति आशङ्क्य आह तथापि न प्रलीयन्ते इति. स्वबुद्ध्या लीनवत् प्रतिभानेऽपि न सर्वेषां बुद्ध्या तथा प्रतिभानम्।।३४।।

अविद्या तथा वाके कार्य को निरूपण करिके अब विद्याको निरूपण करत हें.

विद्या (ज्ञान) करिके अविद्याको नाश (उपमर्द) होय हे अर्थात् ज्ञानसूं उलटो ज्ञान जो होय रह्यो हे सो दब जाय हे. अविद्याको सर्वथा नाश नहीं होय हे. ये ही ज्ञानिन्को मोक्ष हे. विद्या ज्ञान एक बात हे. जब विद्यासों अविद्या छिप जाय हे तब देहेन्द्रिय-प्राण-अन्तःकरणमें अहङ्कार होय रह्यो हे सो छूट जाय हे अर्थात् ज्ञान भये पीछें देहेन्द्रिय-प्राण-अन्तःकरणकों अपने नहीं माने हें. परन्तु देहादिकको नाश नहीं होय हे. क्योंकि देहादिकन्की तो भगवत्कार्यरूप जगत्में गणना हे. जेसे मनुष्य जागे हे तब गुणरूप मायाके सतोगुणसों प्रकट भई आविद्याकुं दूर कर देवे हे. तब छोटे रूपसों अविद्या अन्त:करणके भीतर रही आवे हे. जेसें जागतें ही नींद बुद्धिमें जाय छिपे हे, बहुत छोटे रूपसों बुद्धिमें रहे हे, तासों फिर भी वाके समयमें नींद आय जावे हे, एसे ही जीवन्मुक्त ज्ञानी मनुष्यन्को देहादिकन्मेंसे अहङ्कार दूर होय गयो हे तासों देहादिक नहीं मालुम पडे हे परन्तु ओर मनुष्यकुं जीवन्मुक्तके देहादिक दीखे हें. सूक्ष्मरीतिसों छिपो भयो अहङ्कार देहादिकमें कदाचित् फिर पाछो आय जाय तो फिर संसारमें बंधके जन्म-मरणकुं प्राप्त हो जाय याके अर्थ देहादिकको लय होयवेको साधन आगेके श्लोकमें बतावें हे।।३४।।

देहादीनां स्थितौ सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन कदाचित् पुन: अध्यासः स्याद् अत: तेषां विलयप्रकारम् आह आसन्यस्य इति.

आसनस्य हरेर्वापि सेवया देवभावत:।।

इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मभावाल्लयो भेवेत्।।३५।।

आसन्यसेवायाम् इन्द्रियाणां देवतात्वम् इति श्रुति:. ''स ... वाचमेव प्रथमाम् ... अत्यमुच्यते'' (बृहदा.उप.१।३।१२) इत्यादि. हरेः सेवया सर्वम् इति भगवच्छास्त्रम्.भगवतो मुखम् अग्निः. स्वस्य वागिन्द्रियम् अग्नि-श्चेद् भगवन्मुखत्वम् आपद्यते. एवं सर्वेषाम् आध्यात्मिकानाम् आधिदैविकत्वं तदा सङ्घातस्य लय: इति अर्थ:. स्वस्य जीवभावे स्थिते कदाचित् सङ्घातान्तरं सम्पादयेदिति जीवस्य ब्रह्मभावम् आह स्वस्य ब्रह्मभावाद् इति।।३५।।

श्लोकार्थ : आसन्य अर्थात् प्राणन्की उपासनासुं अथवा भगवान् हरिकी सेवासुं इन्द्रियें जब देवभावकुं प्राप्त करले हे तब देहादिकन्को लय होय जाय हे. या ही प्रकार स्वयंकुं ब्रह्मभावकी उपलब्धि होय जावे पर हु देहादिको लय होय जाय हे.

देहेन्द्रियादिकके लय हायवेके अर्थ आसन्य-प्राणकी उपासना करनी. वेदमें लिख्यो हे वाके अनुसार उपासना करिवेसों इन्द्रिय हे सो अपने देवतारूप हो जाय हें. अर्थात् वाणि अग्निरूप हो जाय हें. प्राण वायुरूप हो जाय हें. नेत्र सूर्यरूप हो जाय हें. कर्ण दिशारूप हो जाय हें. मन चन्द्रमारूप हो जाय हे. जिव्हा वरुणरूप हो जाय हे. नासिका अश्विनीकुमाररूप हो जाय हे. हस्त इन्द्ररूप हो जाय हें. पांव उपेन्द्ररूप हो जाय हें. या रीतिसों सब इन्द्रिय जब अपने-अपने आधिदैविक देवतारूप होय जाय हें तब मृत्युसों छूट जाय हे. कार्यरूपकुं छोडिके कारणरूप हो जानो ही देहादिकको लय हे.

आसन्यकी उपासनाको प्रकार वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषत्के तृतीय अध्यायके तृतीय ब्राह्मणमें लिख्यो हे. आसन्यकी उपासनाकी वेदमें एसी महिमा लिखी हे ताको कारण ये हे के आसन्य-प्राण हे सो सूत्ररूप हे. सूत्र हे सो महत्तत्वको क्रिया-शक्ति वारो दूसरो रूप हे. महत्तत्व हे सो भगवान्सों प्रकृतिरूपा मायामें उत्पन्न भयो हे. तामें प्रमाण तृतीयस्कंधके २६ अध्यायमें ''दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्, गर्भमाधत्त सासूत महत्तत्वं हिरण्मयम्'' श्लोक हे. तासों महत्तत्व भगवान्को पुत्र हे. वासों ही इन्द्रिय-देहादिकन्की उत्पत्ति होय हे. तासों महत्तत्वरूप आसन्यकी उपासनासों देहादिकको लय हो जाय हे. ओर भक्तके देहादिकन्को लय तो हरिकी सेवासों ही हो जाय हे. क्योंके भगवत्शास्त्र गीता-भागवतादिकको ये ही सिद्धान्त हे. भगवत्सेवासों ही सर्व सिद्ध हो जाय हे तामें प्रमाण भागवत एकादशस्कन्धको श्लोक ''यत्कर्मभिर् यत् तपसा ज्ञान वैराग्य-तश्च यत्, योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिर् इतरैरपि, सर्व मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा, स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदिवा-

च्छति'' (भाग.पुरा.११।२०।३२-३३) उद्धवजीसों भगवान् आज्ञा करे हें:हे उद्धव कर्म तप ज्ञान वैराग्य आदि साधन करिके जो फल सिद्ध होय हे वो फल मेरे भक्तकुं भक्ति करिके ही मिल जाय हें. स्वर्ग, मोक्ष, मेरोलोक ओर जो कछु चाहे सो सर्व पदार्थ भक्ति करिकें ही मेरे भक्तकुं मिल जाय हे. तासों भगवद्भक्तके देह इन्द्रिय आदिकन्‌को लय भगवद्भक्ति करिकें हि होय जाय हे.

तात्पर्य ये हे–अग्नि भगवान्‌को मुख हे. भगवद्भक्तकी वाणी भगवत्सेवासों अग्निरूप हो जाय हे तब भगवान्‌के मुखरूप हो जाय हे. एसें ही भक्ति करिकें प्राण वायुरूप हो जाय हे तब भगवान्‌के श्वासरूप हो जाय हे. मन चन्द्रमारूप हो जाय हे तब भगवान्‌के मनरूप हो जाय हे. याही रीतिसों भक्ति करिके सब इन्द्रिय आधिदैविक देवतारूप हो जाय हे तब देहकुं छोडके भगवान्‌के अङ्गरूप हो जाय हे. तब देहादि सङ्घातको भी पञ्चमहाभूतन्‌में लय हो जाय हे.

आसन्य-प्राणकी उपासनासों यद्यपि देहादि सङ्घातको लय हो जाय हे परन्तु आत्माको जीवभाव नहीं जाय हे. सो फेर कदाचित् जीव हे सो देह-इन्द्रियादिककुं धारण करले ओर फिर उनमें अहङ्कार उत्पन्न हो जाय तो फिर बन्ध हो जाय. ओर हरिसेवासों तो देहादि सङ्घातको भी लय हो जाय हे ओर फिर आत्माको जीवभाव दूर होई ब्रह्मभाव होवे हे तब आत्माको ब्रह्ममें लय हो जाय हे. फेरि वाकुं संसारजनित बन्ध कभी नहीं होय हे।।३५।।

ब्रह्मभावप्रकारम् आह आनन्दांश इति.

आनन्दांशप्रकाशाद्धि ब्रह्मभावो भविष्यति।।
सायुज्यं वाऽन्यथा तस्मिन् उभयं हरिसेवया।।

तिरोहितस्य आविर्भावे ब्रह्मभावः, तथा जडेऽपि. तत्र भगवदिच्छैव केवला प्रयोजिका. अतः तस्या अनियत-त्वात् सायुज्यं वा भवति. अन्यथा सङ्घाते गच्छेत्. सायुज्य-ब्रह्मभावौ हरिसेवयैव भवतो न अन्यसेवया.

जब जीवमें तिरोहित आनन्द प्रकट हो जाय हे तब वो ब्रह्मरूप हो जाय हे. तब वामें ब्रह्मके व्यापकत्वादि धर्म प्रकट हो जाय हें. जेसें अग्निके सम्बन्धसों लोहको गोला भी अग्नि हो जाय हे तेसें व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके सम्बन्धसों देहमें छिपे भयो चैतन्य आनन्द प्रकट हो जाय हे तब जड़ देह भी ब्रह्मरूप हो जाय हे. वा अवस्थामें देह-जीव दोनों ब्रह्मरूप रहे हें. या रीतिको ब्रह्मभाव दुर्लभ हे. जा जीवकुं स्वरूपानन्द देवेके अर्थ ज्ञानीभक्तरूपसों ही सर्वदा स्थित राखनो चाहे हें वा ही जीवकुं एसो ब्रह्मभाव मिले हे. या रीतिको ब्रह्मभाव देवेकी इच्छा नहीं होय ओर सायुज्य मुक्ति देवेकी इच्छा होय तो सायुज्य मुक्ति देवे हे. अर्थात् अलक, कौस्तुभमणि, वनमाला आदिरूप वा भक्तकुं बनायके अपने स्वरूपमें स्थित करले हे. एसी भी इच्छा नहीं होय तो कोई भक्तकुं अक्षरब्रह्मको सायुज्य दे हे. ओर जा जीवकुं इनमेंसों कुछ भी फल देवेकी भगवान्‌की इच्छा नहीं होय तो वा जीवके हृदयमें ''में मुक्त हुं'' एसो अभिमान हो जाय हे तब वो जीव भगवत्सेवाकुं छोड़ देवे हे. तब वाके विषे आनन्द भी प्रकट नहीं होय हे. ओर जेसे बडे परिश्रमसों चढ्यो भयो फिर गिर पडे हे तेसे पाछो संसारमें फस जाय हे.

या श्लोकको तात्पर्य ये हे के सायुज्य-ब्रह्मभाव ये दोनों फल भगवान्‌की इच्छाके ही आधीन हें. ओर हरिसेवासों ही मिले हें, आसन्य-प्राणकी उपासनासों नहीं मिले हें. याको प्रमाण गीताको श्लोक हे ''मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते, स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते'' (१४।२६) अर्थ:हे अर्जुन अनन्यभक्ति करिके जो मेरी सेवा करे हे वो जीव सतोगुण रजोगुण तमोगुण को उल्लङ्घन करिके ब्रह्मभावकुं प्राप्त होवे हे.

एवम् एकप्रकारेण सृष्टिम् उक्त्वा उपसंहरति एवं कदाचिद् इति.

एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोत्यजः।।३६।।

साक्षात् सर्वोत्पत्तिप्रकारोऽयम्.

श्रुतौ नानाविधा सृष्टिप्रकाराः साक्षात्परंपराभेदेन. तत्र सर्वेषां सङ्ग्रहार्थं सृष्ट्यन्तराणि आह कदाचित् पुरुषद्वारा इति.

कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनरन्यथा।।
कदाचित् सर्वमात्मैव भवतीह जनार्दनः।।३७।।

पुराणे पुरुषद्वारा सृष्टिः प्रसिद्धा. पुरुषादीनां द्वारत्वमेव. अन्यथा चतुर्मूर्तिप्रकारेण. स प्रकारः पञ्चरात्रे प्रसिद्धः. एवं श्रुति-पुराण-तन्त्रेषु सृष्टिम् उक्त्वा ''स आत्मानमेवावैदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभवद्'' (बृहदा.उप.१।४।१०) इत्यादिषु साक्षात्प्रपञ्चरूपता निरूपिता. ताम् आह कदाचिद् इति. इह इति सृष्टिभेदेषु. जनार्दनः इति. लीलार्थं जीवानां क्लेशम् असहमानः. अस्मिन् पक्षे न आनन्दांशतिरोभावः।।३७।।

सृष्टि उत्पन्न होयवेको एक प्रकार पहिले कह्यो हे यासों याहि रीतिसों सृष्टि होय हे अन्य रीतिसों नहीं होय हे एसे नहीं जाननों. वेदमें सृष्टि प्रकट करिवेके अनेक प्रकार दिखाये हें. जेसे साक्षात्सृष्टि करिवेके अनेक प्रकार हें तेसे ही परम्परासृष्टि करिवेके भी वेदमें अनेक प्रकार हें।।३६।।

कभी भगवान् अक्षर पुरुषके द्वारा सृष्टि करे हें. वो सृष्टि पुराणप्रसिद्ध हे. भागवतके तृतीयस्कन्धमें वा सृष्टिको प्रकार विस्तारसों लिख्यो हे.

कभी आप अपने स्वरूपसों आकाशकुं प्रकट करे हें. आकाशसों वायु प्रकट करे हें. वायुसों अग्नि, अग्निसों जल, जलसों पृथ्वी, पृथ्वीसों अन्न, अन्नसों रस, रससों पुरुष-या रीतिसों उत्पत्ति तैत्तिरीयमें लिखि हे. कोई समयमें अन्य रीतिसों भी सृष्टि करे हें. वासुदेव भगवान् जगत्के कारण हें. तिनसों 'सङ्कर्षण' नामको जीव प्रकट भयो. वासों 'प्रद्युम्न' नामको मन उत्पन्न भयो. वासों 'अनिरूद्ध'रूप अहङ्कार प्रकट भयो. याको विस्तार नारदपञ्चरात्रमें वर्णन कियो हे.

कभी आप अविद्याकुं दूर करिके स्वयं भगवान् जगत्रूप हो जाय हें. ''जब ब्रह्मने अपने स्वरूपकों जान्यो के ''में ब्रह्म हुं'' तब ब्रह्मसों सब सृष्टि प्रकट हो गई''. ये प्रकार पुरुषविधब्राह्मणमें लिख्यो हे. ये पुष्टिसृष्टि हे. केवल लीलाके अर्थ करी हे. जब परमदयालु श्रीकृष्ण परमात्मा परब्रह्म जीवन्को अनेकवार जन्म-मरणक्लेश नहीं सह सके हें तब जीवन्कुं सृष्टिमें नहीं प्रकट करे हें. स्वयं भगवान्ही जड-जीव-अन्तर्यामी होयकें क्रीडा करे हें. या सृष्टिमें आनन्दको तथा चैतन्यको कोई पदार्थमें तिरोभाव नहीं रहे हे. सब पदार्थन्में सत्-चित्-आनन्द ये तीनों प्रकट रहे हें।।३७।।

स्वप्नादिसृष्टिसङ्ग्रहार्थम् आह महेन्द्रजालवत्सर्वम् इति.

महेन्द्रजालवत्सर्वं कदाचिन् माययासृजत्।।
तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः।।३८।।

मायया केवलया नतु स्वयं तत्र प्रविष्टः. तत्सृष्टौ न कोऽपि पुरुषार्थइति आह तदा ज्ञानादयः इति. सन्ति ज्ञाना-दयः, परं वार्तामात्रं, नतु फलसाधकाः।।३८।।

कभी भगवान् केवल मायासोंही सृष्टि करवावें हें, आप स्वयं वा सृष्टिमें प्रवेश नहीं करें हें. वो मायिक सृष्टि बहुत प्रकारकी हे. सोते भये पुरुषकों ज्यों नींदमें हाथी-घोडा, बडे-बडे नगर आदि अनेक पदार्थ दीखे हें वे मायाकेही बने भये होवे हें. तथा काच आदि पदार्थमें प्रतिबिम्ब दीखे हे अर्थात् काचके सामनें कोइ चीजकुं करी जाय हे तो काचमें वेसीकी वेसी दूसरी चीज बन जाय हे
वा दूसरी चीजकुं मायाकी बनी माननो. एसें ही भगवान्के स्वरूप जो घट-पटादिक सब जगत्के पदार्थ हें उनमें भगवान्सों न्यारोपनो, मिथ्यापनो, निन्दितपनो तथा ग्लानि आदि भासमान होय हे सो भी मायाके बनाये भये हें. जेसें सपेत भी कपड़ा हरे चसमासों हरो दीखे हे एसें ही मायाकी बनाई अन्तरासृष्टि, अर्थात् विषयतारूपा सृष्टि, नेत्र आदि इन्द्रियन्के तथा जगत्के पदार्थन्के बीचमें आय खड़ी होय हे तब मायासृष्टिसों मिले भये पदार्थन्को ही ग्रहण होय हे, शुद्ध भगवद्रूप पदार्थन्को ग्रहण नहीं होवे हे. जेसे हरो चसमा बीचमें होय तब नेत्र शुद्ध सपेत वस्त्रकुं नहीं देख सके हे किन्तु चसमाको हरोपनो वामें दीखे हे याही रीतिसों मायाकी अन्तरासृष्टि बीचमें आय रही हे तासों वा अन्तरासृष्टिको मिथ्यापनो तथा निन्दितपनो भगवद्रूप जगत्में भी भासमान होवे हे. या मायासृष्टिको वर्णन भागवतके एकादशस्कन्धमें ''मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत्'' (भाग.पुरा.११।१९।७) या श्लोकमें तथा ''न तं विदाथ यइमा जनानाऽन्यद्युमाकमन्तरं भवति'' या यजुर्वेदके मन्त्रमें कियो हे. ऐसेंही अन्धकार, प्रतिध्वनि, झाईंकी अवाज, आकाशमें बादलके काले-पीले-लाल रङ्ग, जेबडा आदिमें सांप तथा आभास-प्रतिबिम्ब-विषयता आदि पदार्थन्की प्रतीति इत्यादि अनेकमायासृष्टिके भेद हें. या सृष्टिमें ज्ञानादि वार्तामात्रके हें, फलसाधक नहीं हें. जेसे सपनेके लाडु कहवे मात्रके होय हें, उनसों तृप्ति नहीं होय हे. एसे ही मायिक सृष्टि भी मिथ्या हे. या मिथ्यासृष्टिके वर्णन करिवे वारे वाक्यन्को तात्पर्य नहीं समुझके कितनेक वादी ब्रह्मरूप जगत्कुं हु मायिक तथा मिथ्या बतावें हें।।३८।।

वैदिकीम् अपरामपि सृष्टिम् आह वियदादि इति.

वियदादि जगत् सृष्ट्वा तदाविश्य द्विरूपतः।।
जीवान्तर्यामिभेदेन क्रीडति स्म हरिः क्वचित्।।३९।।

आकाशं सृष्ट्वा तद्द्वारा वायुम् इत्यादि. अस्मिन्नपि पक्षे जडानां पूर्ववदेव व्यवस्था. जीवान्तर्यामिभेदे भिन्नं प्रकारम् आह तदाविश्य इति. पूर्वकल्पेषु जीवान्तर्यामिणोः अप्रवेशः. अस्मिन् कल्पे प्रविष्टस्य जीवान्तर्यामिभावः इति. एवं षड्भेदान् उक्त्वा षड्गुणैः भगवतो लीला इयम् इति आह क्रीडतिस्म इति।।३९।।

एकः कथम् अनेकधा सृष्टिं करोति? इति आशङ्क्य आह अचिन्त्यानन्तशक्तेः इति.

अचिन्त्यानन्तशक्तेस्तद् यदेतद् उपपद्यते।।
अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेरुक्ता ह्यनेकधा।।४०।।

अचिन्त्याः अनन्ताः शक्तयो यस्य इति. यदेतत् सर्वम् उक्तं तद् उपपद्यते. अस्मिन् अर्थे श्रुतेः तात्पर्यम् आह अतएव इति. श्रुतौ नानाप्रकरणेषु सृष्टिभेदाः सहस्रशो निरूपिताः।।४०।।

अनेकधासृष्टिकथनस्य प्रयोजनम् आह यथाकथञ्चिद् इति.

यथाकथञ्चिन्माहात्म्यं तस्य सर्वत्र वर्ण्यते।।

दूसरी वैदिक सृष्टिको निरूपण करत हें

कभी भगवान् साक्षात् अपने स्वरूपसों आकाश उत्पन्न करें हे. आकाशसों वायु उत्पन्न करे हें. पहिले जो क्रम कह्यो हे वाके अनुसार ही सृष्टि उत्पन्न करे हें. वा सृष्टिमें तथा या सृष्टिमें इतनोही तारतम्य हे के वामें भगवान्ने जीव तथा अन्तर्यामीरूप पहिले धारण करिके फिर अपने बनाये जगत्में प्रवेश कियो हे तथा यामें पहिले बिराजमान होयके पीछे जीव-अन्तर्यामीरूप धारण करे हें.

ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये भगवान्के छे गुण हें इन छे गुणन् करिके भगवान् छे प्रकारकी सृष्टिक्रीडा करे हें. तासों मुख्य छे प्रकारकी सृष्टि हे. इनमेंसों, परन्तु, एक-एक सृष्टिके अनेक भेद हें. यासों अनेक भेद सृष्टिके वेदमें वर्णन किये हें।।४०।।

भजनस्यैव सिध्यर्थ तत्वमस्यादिकं तथा।।४१।।

वेदानां भगवन्माहात्म्यप्रतिपादकत्वं ''बन्दिनस्तत्पराक्रमैः'' (भाग.पुरा. १०।८७।१३) इति वाक्यात्. तत् सृष्टिभेदकथनेन भवतीति सृष्टिभेदा निरूप्यन्ते. वस्तुतस्तु सृष्टिकर्तृत्वेपि न भगवतो माहात्म्यं, महाराजाधिराजस्य चलितुं ज्ञानमिव. तथापि लोकप्रतीतौ तन्माहात्म्यं भवतीति यथाकथञ्चिद् वर्ण्यते. माहात्म्यज्ञानस्य उपयोगम् आह भजनस्यैव सिध्यर्थम् इति. भक्तिसिध्यर्थम्. भक्तेः अंशद्वयमिति द्वितीयांशमपि प्रतिपादयतीति तथा लक्ष्यते इति अर्थः. द्वितीयांशम् आह तत्वमस्यादिकं तथा कथयति।।४१।।

वेदमें अनेक प्रकारकी सृष्टिको वर्णन कहा प्रयोजनसुं भयो हे सो कहत हें

भगवान्को माहात्म्य जतायवेके अर्थ सर्व ठिकाणे वेदमें अनेक प्रकारकी सृष्टि लिखी हे. जेसे बन्दीजन पराक्रम वर्णन करिके राजाकी स्तुति करे हें एसे वेद भी नाना प्रकारकी सृष्टिको वर्णन करिके भगवान्को माहात्म्य जतावे हें. वस्तुतस्तु ठीक-ठीक बिचार कियो जाय तो भगवान् अपनो माहात्म्य जतायवेके अर्थ सृष्टि नहीं करे हें क्योंके सृष्टि करनो भगवान्को सहज स्वभाव हे. जेसे राजाधिराज सहज स्वभावसों ही सुन्दर चाल जाने हें, वामें उनको कछु माहात्म्य नहीं हे परन्तु प्रजाके हृदययमें तो राजाकी सुन्दर गति देखिके माहात्म्य स्वतःही बढे हे. एसे ही विना परिश्रम, इच्छामात्रसों, क्षणभरमें क्रोडन ब्रह्माण्डकी सृष्टि भगवान् कर देवे हें परन्तु जीव तो क्रोड जन्ममें भी सृष्टि नहीं कर सके हे. तासों मनुष्यकी अपेक्षा सृष्टि करनो भगवान्को माहात्म्य हे. याहीसों वेदने अपनी सामर्थ्यके अनुसार जैसे-तैसे सृष्टिको वर्णन करिकें जीवन्कुं भगवान्को माहात्म्य जतायो हे.

तात्पर्य ये हे के वेदमें भी भक्तिको ही वर्णन हे. ओर माहात्मय जानके स्नेह करवेसों भक्ति कहे हें. तहां भगवान्को माहात्म्य जतायवेके अर्थ वेदमें सृष्टिको वर्णन हे तथा भगवान्कुं अपनी आत्मा समझके स्नेह करवेके अर्थ वेदके ''तत्वमसि'' इत्यादि वाक्यन्में ''हे जीव तु ब्रह्म हे'' एसो उपदेश कीनो हे. तात्पर्य ये हे के आत्माके उपकार करिवे वारे जानिके स्त्री-पुत्र-देह आदिमें मनुष्य प्रीति करे हे. स्त्री-पुत्रादिमें स्वार्थकी प्रीति हे तासों सोपाधि-सकाम प्रीति हे. तथा अपनी आत्मामें जो प्रीति हे सो निःस्वार्थ प्रीति हे, ये निष्काम-निरुपाधि प्रीति कही जाय हे. भगवान् सब देहधारीन्के आत्मा हें ये बात ''तत्वमसि'' आदि वेदके वाक्यन्सों सिद्ध होय हे. तथा श्रीभागवतमें भी लिख्यो हे ''अहमात्मोद्धवामीषाम्'' (११।१६।९). हे उद्धव में सब दहेधारीन्को आत्मा हुं. तासों भगवान्कुं ही अपने आत्मा समुझके भगवान्में निष्काम दृढ प्रीति करनी ये ही वेदको निचोड़ हे।।४१।।

भक्तिस्वरूपम् आह माहात्म्य इति.

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस् तया मुक्तिर्नचान्यथा।।४२।।

भक्तिस्वरूपम् आह माहात्म्य इति. स्नेहो भक्तिः. ''रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते''. रतिः स्नेहो, देवत्वं माहात्म्यम्. तद् आत्मत्वेन ज्ञाते भवति. तेन भजनार्थमेव आत्मत्वेन तन्निरूपणं माहात्म्यं च उच्यते. अन्यथा वाक्यद्वयं ब्रह्मप्रकरणे व्यर्थं स्यात्, ब्रह्मस्वरूपज्ञानेनैव पुरुषार्थसिद्धेः तच्छाब्दज्ञानम् अप्रयोजकम्, इदानीन्तनेषु व्यभि-

चारदर्शनात्. साक्षात्कारस्तु ब्रह्माधीनः. प्रसन्नं सत् तद् आविर्भवतीति लोकरीत्यावगम्यते. श्रुतिश्च पुरुषार्थपर्यवसानं कथयति. अतः स्वरूपज्ञानं विधाय तस्य पुरुषार्थत्वम् उक्त्वा तदाविर्भावएव फलं सिध्यतीति आविर्भावार्थं प्रेमसेवां निरूपयति. अवज्ञानादिदोषाभावाय माहात्मयं सुदृढस्नेहात्मत्वं च आह. ''तत्वमसि'' इति अत्र शास्त्रपर्यवसानम् अग्रे निराकरिष्यते.

एवं कियतीनां श्रुतीनाम् एकवाक्यताम् उक्त्वा सर्वासाम् एकवाक्यतांवक्तुं

जीवकी मुक्ति भक्ति करवेंसोंही होवे हे. भगवान्‌को माहात्मय जानके सबसों अधिक दृढस्नेह करनो भक्ति कहावे हे. वाहीको नाम भाव हे. ''रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते'' अर्थ:माहात्म्यके द्वारा ये देवता हे एसो जानके जो प्रेम कर्यो जाय वासों भाव कहे हे. केवल या प्रकारके भावसोंही गोपी, गाय, पक्षी, मृग आदिकन्‌को भगवान्‌की प्राप्ति भई हे. निरुपाधिक स्नेह भगवान्‌कुं आत्मा समुझें बिना नहीं होय हे. तासों वेदमें ब्रह्मकुं अर्थात् भगवान्‌कुं आत्मा मानके प्रेम करायवेके अर्थ ''तत्वमसि'' इत्यादि श्रुतिन्‌में ''वो ब्रह्म तूं हे'' या रीतिको उपदेश कियो हे. तहां कितनेक वादी कहे हें के ब्रह्मज्ञान विना मुक्ति नहीं होय हे तासों ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ ''तत्वमसि'' इत्यादि वाक्यन्‌में ''जीव तु ब्रह्म हे'' एसो उपदेश दियो हे. ताको ये उत्तर हे :

केवल उपदेश मात्रसोंही ब्रह्मको ज्ञान हो जातो होतो तो ''तत्वमसि'' अथवा ''जीवो ब्रह्मैव'' अर्थ:जीव हे सो ब्रह्मही हे एसो एकही वाक्य सब उपनिषदन्‌में होनो चहिये याही वाक्यके उपदेशसों ब्रह्मको ज्ञान हो जायगो फेर ब्रह्मसों सृष्टिकी उत्पत्तिको क्यों वर्णन कियो? वादीकी रीतिसों सृष्टिको वर्णन वृथा होय हे. ओर दूसरो वा प्रश्नको ये उत्तर हे के ''तु ब्रह्म हे'' एसें शद्बमात्रके कहिवेसों ब्रह्मके स्वरूपको ज्ञान नहीं होय हे. क्योंके अभीके मनुष्यन्‌में कोइकुं भी उपदेशके सुनते ही ब्रह्मको साक्षात्कार नहीं होय हे तासों ब्रह्मको ज्ञान होनो ब्रह्मके ही आधीन हे. कठवल्लीमें ''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'' अर्थ:जाकु ब्रह्म अपने स्वरूपको ज्ञान करानो चाहे हे वाकु ही ब्रह्मको ज्ञान हावे हे– या श्रुतिमें ये बात लिखी हे. ओर जेसे लोकमें राजा प्रसन्न होय तब दर्शन दे हे एसें ही भगवान् (ब्रह्म) जा जीवपे प्रसन्न होय वाहीके आगें अपने स्वरूपकुं प्रकट करे हे. ''तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान् महिमानमीशम्'' या श्रुतिमें भगवान्‌की प्रसन्नताहीसों भगवानकुं जीव देखे हे ये बात खुलासासों लिखी हे. ओर भगवान् प्रसन्न होंय एसो साधन (प्रेमसेवा) भक्ति ही हे. यासों वेदमें भी भक्तिकोही निरूपण हे. ओर ब्रह्ममें अवज्ञा आदि दोषकुं दूर करिवेके अर्थ माहात्म्य वर्णन कियो हे. तथा सुदृढ स्नेह होयवेके अर्थ आत्म तत्वको वर्णन हे।।४२।।

या प्रकार कितनीक श्रुतिन्‌को भक्तिमें तात्पर्य दिखायकें, उपासनाके योग्य स्वरूपको जिन श्रुतिन्‌में वर्णन हे उन श्रुतिन्‌को भी भक्तिमें

भगवतो रूपाणां सङ्ग्रहश्लोकौ आह पञ्चात्मकः इति.

पञ्चात्मकः स भगवान् द्विषडात्मकोऽभूत्
पञ्चद्वयीशतसहस्रपरामितश्च ।।
एकः समोऽप्यखिलदोषसमुज्झितोऽपि
सर्वत्र पूर्णगुणकोऽपि बहूपमोऽभूत्।।४३।।

अग्निहोत्रादिपञ्चात्मकः, तत्साधनदेशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रात्मकः, त्रिविधमन्त्र–ब्राह्मणोपनिषदात्मकः, पञ्चप्राणभूताद्यात्मकश्च. तेन एतावन् निरूपिकाणां श्रुतीनाम् एकवाक्यता सिध्यति. अग्रेऽपि तथा. देहे च पञ्चात्मकः. ध्यानार्थं प्रादेशमात्रः. आश्रयार्थम् अङ्गुष्ठमात्रः. स्वामित्वार्थम् अक्षिस्थितः. फलार्थं सर्वदेहस्थितः आनन्दमयः. वैश्वानरः शिरसि प्रतिष्ठितः सर्वार्थः इति. तथा पञ्चकोशात्मकश्च उपासनार्थः. तावतापि सर्वासां न एकवाक्यता इति अभिप्रेत्य आह

द्विषडात्मकोभूद् इति. द्वादशसूर्यात्मको, मासात्मकः, पुरुषात्मकः, अहीनात्मकः, अग्न्यात्मकश्चेति. अन्येऽपि द्वादशधा भिन्ना ज्ञातव्याः.

ततोऽपि प्रकारान्तम् आह पञ्चद्वयी इति. दिगात्मको, देवात्मकः, इन्द्रियात्मको, लीलात्मकः, तथा अन्येपि ये दशात्मकाः स्वयम् ऊह्या अवतारादयः.

ततोऽपि अपूर्तिरिति अधिकम् आह शतसहस्रपरामितश्च इति. चत्वारो भेदा उत्तरोत्तरम् अधिकाः अमिताः असङ्ख्याताः विभूतिरूपाः सर्वे ज्ञातव्याः. एवं भगवतः सप्तधा रूपभेदाः उक्ताः. तेषु भगवान् भिन्नः इति आशङ्क्य आह एक इति. सर्वेषु रूपेषु एकएव, योगिवत्. प्रादेशाङ्गुष्ठादिमात्रेषु न्यूनाधिकभावम् आशङ्क्य आह समोऽपि इति. क्वचिद् अन्यथा प्रतीतिम् आशङ्क्य आह अखिलदोषसमुज्झितोऽपि इति. ऐश्वर्यादिगुणाः सर्वेषु रूपेषु पूर्णाः. तथा सति कथं वैलक्षण्यप्रतीतिः? तत्र आह बहूपमोऽभूद् इति. नरवत्, प्रादेशवत्, शान्तवत्, क्रूरवद् इति।।४३।।

तात्पर्य दिखायवेके अर्थ भगवान्के विभूतिरूपन्को वर्णन करे हें.

श्लोकार्थ : एक, सम, अखिल दोषन्सुं रहित तथा सर्वत्र पूर्णगुण वारे होते भये हु भगवान् पञ्चात्मक, द्वादशात्मक, दशात्मक, शतात्मक, सहस्रात्मक तथा परात्मक असङ्ख्य रूप वारे तथा बहूपम होय गये.

अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास, सोमयाग ये पांच भगवान्को स्वरूप हे. तथा यज्ञके साधन : देश, काल, मन्त्र तथा कर्ता ये पांच भगवान्को स्वरूप हें, तथा ऋग्वेदके मन्त्र, यजुर्वेदके मन्त्र, सामवेदके मन्त्र, ब्राह्मणभाग तथा उपनिषद्भाग ये पांच भी भगवान्को स्वरूप हें. तथा प्राण, अपना, समान, उदान, व्यान ये पांच वायु भी भगवान्को स्वरूप हें. तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पांच भूत तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये पांच तन्मात्रा हु भगवान्को ही रूप हे. तथा देहमें भगवान्के पांच स्वरूप विराजे हें. ध्यान करिवेके अर्थ १प्रादेशमात्र–बारहअङ्गुलीको स्वरूप हृदयमें बिराजे हे. या स्वरूपको भागवतके द्वितीयस्कन्धमें वर्णन हे. आश्रयके अर्थ २अङ्गुष्ठमात्र स्वरूपसों बिराजे हें. या स्वरूपको काठकोपनिषद्में वर्णन हे. ३कर्मफलको नियम करवेके अर्थ या जीवको स्वामी होयके नेत्रन्में विराजे हें. या स्वरूपको छान्दोग्य उपनिषद्में वर्णन हे. ओर सुख देवेके अर्थ आखे देहमें ४आनन्दमय भगवान् विराजें हे. मस्तकमें भ्रुकुटि–नासिकाकी सन्धिमें ५वैश्वानर भगवान् बिराजे हें. या स्वरूपको वर्णन छान्दोग्य तथा जाबाल श्रुतिमें हे. या रीतिसों देहमें पञ्चात्मक भगवान् बिराजें हें. तथा द्वादश सूर्यात्मक भगवान् हें. एसे ही बारह महिना भगवान्को ही रूप हें. तथा बारह अग्नि भी भगवान्को स्वरूप हे. दश दिशा तथा दश लीला प्रभुको स्वरूप हे. तथा शतसहस्र अरु पर अमित असङ्ख्यात भगवान्के विभूति स्वरूप हें. इन रूपन्में भगवान् न्यारे–न्यारे नहीं हें किन्तु एकही भगवान् इन अनेक रूपन्में विराजे हें. जेसे एकही योगी अनेक शरीरन्में योगके प्रभावसों धसो रहत हे ऐसें एकही भगवान् अनेक रूपमें न्यारे–न्यारे प्रतीत होय हें. अलौकिक सामर्थ्यसों आप अपने स्वरूपन्में अभेद राखे हें. ओर आपके छोटे अंगूठा जितने स्वरूपमें न्यूनता नहीं समझनी तथा बारह अङ्गुलके स्वरूपमें अधिकता नहीं समझनी. छोटे–बड़े सब रूपमें भगवान् समान ही हें. ओर जितनें आपके रूप हें सब दोष रहित हें. ओर सबही रूपन्में ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छे गुण पूरे विराजमान हें.

आपके रूपमें जो परस्पर विलक्षणता मालुम पडे हे सो आप क्रीडाके अर्थ सबसों जुदे हो जाय हें. आप विलक्षण हो जाय हें ओर अविलक्षण भी रहे आवे हें. अनेक रूप होयकें सामिल भी रहे आवे हें. वेदमें भी लिखे हें ''समो नागेन समो मशकेन'' अर्थ:आप अद्भुत सामर्थ्यसों हाथीके समान भी हें ओर मच्छरके समान भी हें''. तीन लोकके भी समान हें तासों आप बहूपम हें अर्थात् भगवान्में सब उपमा दे सके हें।।४३।।

एवं विभूतिम् उपपाद्य स्वरूपम् उपपादयति निर्दोष इति.

निर्दोषपूर्णगुणविग्रह आत्मतन्त्रो
निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः ।।
आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः
सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ।।४४।।

यादृशं मूलरूपं तादृशमेव सर्वम् इति मन्तव्यं. गुणाः शान्ति–ज्ञानादयः. ते लोके दोषसहिता दृष्टा महतोपि. यथा ज्ञानं क्वचित् तत् न सङ्गवर्जितम्इति. तथा तपः क्रोधसहितम्. तथा धर्मो दयारहितः. तथा न भगवति किन्तु निर्दोषाः पूर्णाः गुणाः विग्रहरूपाः यस्य. 'विग्रह'पदेन परस्परविरुद्धाअपि लोकदृष्ट्या भासन्ते इति ज्ञातव्यम्. गुणाधीनत्वम् आशङ्क्य आह आत्मतन्त्र इति. देहेन्द्रियादीनां कार्यप्रतीतेः लोकवद् देहेन्द्रियाणि भविष्यन्ति इति आशङ्क्य आह निश्चेतनात्मक इति. चकारात् तत्तद्धर्मैरपि हीनः. तर्हि कथम् आकारप्रतीतिः? तत्र आह आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः इति. आनन्दो ब्रह्मवादे आकारसमर्पकः. अतएव पुरुषेष्वपि सर्वान्तर आनन्दमयो निरूपितः. तद्रूपस्तु सर्वात्मकम् इति वदन् आह सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा इति. जीव–जडान्तर्यामिषु सर्वत्रैव तदनुस्यूतं, कारणत्वाद् इति तस्य कारणता च निरूपिता।।४४।।

या प्रकार ब्रह्मकी विभूतिन्को उपपादन करिके अब ब्रह्मके मूलरूपको वर्णन करें हे.

श्लोकार्थ : निर्दोष तथा पूर्ण एसे जो गुण सो भगवान्के विग्रह स्वरूप हें. भगवान् स्वतन्त्र हें तथा जड़ शरीर एवं वाके गुण–धर्मन्सुं रहित हें. आपके श्रीहस्त, चरण, श्रीमुख, उदर आदि अङ्ग आनन्दमय अथवा आनन्दस्वरूप हें. आप सर्वत्र जड़, जीव तथा अन्तर्यामी के त्रिविध भेदन्सों रहित हें तथा उन तीनोंन्के कारणरूपमें उनमें अनुस्यूतहें.

जेसो मूलरूप हे वेसोही ध्यान करनो. लोकमें जितने गुण हें वितने सब दोषन्के भरे हें. जे ज्ञानी हें वे सङ्गरहित नहीं हें. जो तपस्वी हे वो क्रोध वारो हे, जो धर्मात्मा हे वो दया वारो नहीं हे. या रितिसों लोकमें सब गुण–दोषसहित हें. मूलरूप पुरुषोत्तममें शान्ति, ज्ञान, दया, शरणागतरक्षा, भक्तवत्सलता आदि अनेक गुण दोषरहित हें. ओर जितनें गुण हें वे सब पूरे हें. लौकिक दृष्टिसों विन गुणन्में परस्पर विरोध दीखे हे. परन्तु वे सब एकरूप हो रहे हे. आप स्वतन्त्र हें. अपने गुणके आधीन नहीं हें. देह–इन्द्रिय आदिकन्के कार्य आप करते प्रतीत होवे हें परन्तु लौकिक देह–इन्द्रियादिक तथा उनके धर्म आपमें नहीं हे. आनन्दके बने भये आपके श्रीहस्त, श्रीचरणारविंद आदि सब अङ्ग हें.

भेद तीन प्रकारके होवे हें. १.मनुष्य तथा पशुमें परस्पर भेद हे सो विजातीय भेद हे. २.मनुष्यन्में जो परस्पर भेद हे सो सजातीय भेद हे. ३.मनुष्यके अङ्गन्में जो परस्पर भेद हे सो स्वगतभेद हे. ये तीनों भेद भगवान्के स्वरूपमें नहीं हे. आपको आनन्दमयरूप जड़-जीव–अन्तर्यामीमें भर रह्यो हे. याहीसों भगवान् सर्वात्मक हें, सबके कारण हें।।४४।।

एतन् निरूपणस्य प्रयोजनम् आह तस्य ज्ञानद्धि कैवल्यम् इति.

तस्य ज्ञानद्धि कैवल्यम् अविद्याविनिवृत्तितः।।

गुणोपसंहारन्यायेन श्लोकद्वयोक्तधर्मसंयुक्तं ब्रह्म चेद् विजानीयात् तदा ब्रह्मविद्भवति. ततः कैवल्यं सङ्घातात् पृथग्भावं, मोक्षं वा प्राप्नोति. तत्र दृष्टं द्वारम् आह अविद्याविनिवृत्तितः इति. पूर्वोक्तं ज्ञानम् अविद्यां निवर्तयन् मोक्षं साधयति इति अर्थः. तज्ज्ञानम् अपरोक्षरूपम् इति.

विद्यायाः पञ्चपर्वाणि, तत्साधनानि आह वैराग्यम् इति.

वैराग्यं साङ्ख्य-योगौ च तपो भक्तिश्च केशवे।।४५।।
पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्।।

आदौ विषयवैतृष्ण्यम्. ततो नित्यानित्यवस्तुविवेकपूर्वकः सर्वपरित्यागः. ततः एकान्ते अष्टाङ्गो योगः. ततो विचारपूर्वकम् आलोचनं तपः, एकाग्रतया स्थितिः वा. ततो निरन्तरभावनया परमं प्रेम।।४५।।

तात्पर्य ये हे के ब्रह्म निष्कल हे, निरञ्जन हे, इतनेसें जानवेसों पूरो ब्रह्मज्ञानी नहीं होय हे. ब्रह्मके थोड़े स्वरूपकों वो जाने हे इतने जानवेसों वेदोक्तफल नहीं होय हे किन्तु उपरके दोनों श्लोकन्में लिखे भये वेदोक्त सब गुण सहित ब्रह्मकुं जब मनुष्य जान जाय हे तब पूरो ब्रह्मज्ञानी होवे हे. तबही जीवको कैवल्य अर्थात् मोक्ष होवे हे. अर्थात् भगवान् परम स्वतन्त्र हें. इच्छा होय तो देहादिक सङ्घातसों वा जीवको न्यारो कर दे हे, इच्छा होय तो देहादिकसों न्यारो करिके जीवको मोक्ष अर्थात् ब्रह्मभाव करिके लय कर दे हे. या रीतिसों सब गुण सहित ब्रह्मको साक्षात् अनुभव हे सो अविद्याकुं दूर करिके मोक्ष करे हे. परन्तु जहां तांई विद्याके पांच पर्व नहीं सिद्ध होवे हें तहां तांई ब्रह्मको साक्षात् अनुभव नहीं होवे हे. तासों पांच पर्वको वर्णन करे हें. विद्याको पहिलो पर्व वैराग्य हे. इन्द्रियन्के विषयसुखमें तृष्णा नहीं राखनी ये ही वैराग्य हे. नित्य-अनित्यपदार्थको विचार करिके सबन्कुं छोड़ देनो याको नाम साङ्ख्य हे, ये विद्याको दूसरो पर्व हे. अष्टाङ्गयोग विद्याको तीसरो पर्व हे. विद्याको चतुर्थ पर्व तप हे. विचारपूर्वक ज्ञानसों अथवा चित्तको एक ठिकाने लगायकें स्थित रहिवेंकों 'तप' कहे हें. विद्याको पांचवो पर्व भक्ति हे. निरन्तर भावना करिके भगवान्में परम प्रेम करनो ये हि भक्ति हे।।४५।।

एवं साधनसम्पत्तौ पञ्चपर्वा विद्या सम्पद्यते, यया कृत्वा जातसाक्षात्कारः तं प्रविशेद् इति आह यया विद्वान् हरिं विशेद् इति.

अत्र स्वरूपयोग्यतारूपम् अधिकारम् आह सत्व इति.

सत्वसृष्टिप्रवृत्तानां दैवानां मुक्ति योग्यता।।४६।।

ये सात्विकाः दैव्यां सम्पदि जाता विध्युपजीविनः सर्वदा तेषां मुक्तिः भविष्यति न अन्येषाम् इति ज्ञापितम्।।४६।।

या पाञ्चपर्वा विद्या करके भगवान्को साक्षात् अनुभव होवे हे तब भगवान्में प्रवेश होवे हे.

पञ्चपर्वा अविद्यासों प्राप्त होयवे वारी उपयुक्त मुक्ति भी सबन्कुं प्राप्त नहीं होवे हे ये जतायवेकुं तथा अधिकारीको निरूपण करिवे वारी श्रुतिन्की एकवाक्यताको प्रतिपादन करिवेके अर्थ विद्या अथवा वासुं प्राप्य मुक्तिके अधिकारीकी स्वरूपयोग्यताको निरूपण करेहें.

अविद्याके पांच पर्वन्में जो भक्तिको वर्णन हे वो भक्ति स्वतन्त्र निष्काम भक्ति नहीं हे किन्तु सकाम प्रावाहिकी भक्ति हे. मोक्षकी कामनाके अर्थ करी जावे हे, मोक्ष देकें निवृत्त हो जावे हे. विद्याके पांच पर्वन्में भक्तिको वर्णन कियो हे ताको ये प्रयोजन हे के भक्ति सहित ज्ञानही निर्गुणमोक्षकों देवे हे. केवलज्ञानसों तो सगुणमुक्ति ही होवे हे. या रीतिसों साधन करिवेसों भी दैवी सम्पत्में उत्पन्न भये सात्विक जीवन्की ही मुक्ति होवे हे. जे आसुरजीव हें उनकी मुक्ति नहीं हे. जेसें जा जमीनमें बीज नहीं होय वामें जल डारवेसों भी कुछ नहीं होवे हे. दूसरो दृष्टान्त ये हे के जेसे तेलयन्त्र-घाणी हे सो तिलन्मेंसों ही तेल निकास सके हे, वालु-रेतमेंसो तेल निकसवेकी योग्यता नहीं हे. एसेही भगवान् सृष्टिकी आदिमें ही जिन जीवन्में भक्तिको अङ्कुर धर देवे हें वे ही दैवी जीव हें. उनकी ही भक्ति साधन करवेसों बढ जावे हे तब भगवत्प्राप्ति कराय दे हे।।४६।।

अनेनैव प्रकारेण मुक्तिः न अन्यथा इति वक्तुं देशादिषट्के तदङ्गे मुक्तिः भाक्ता इति आह तीर्थादावपि इति द्वाभ्याम्.

तीर्थादावपि या मुक्तिः कदाचित्कस्यचिद्भवेत्।।

कृष्णप्रसादयुक्तस्य नान्यस्येति विनिश्चयः।।४७।।

काश्यादितीर्थेषु मुक्तिः प्रसिद्धा. तत्र अन्ते ''तारकं ब्रह्म व्याचष्टे'' त्यादिवाक्यैः शुद्धानां ब्रह्मोपदेशइति अलौकिकोपदेशसाधकत्वं न व्यभिचरति. तद् आह कदाचित्कस्यचिद्भवेद् इति. सर्वेषामेव उपदेशोऽस्तु इति चेत् न, इति आह कृष्णप्रसादयुक्तस्य इति. प्रसन्नो भगवांस्तद्द्वारा मोचयति, तीर्थादीनां माहात्म्यार्थं, यथा अजामिलो नाम्ना. अतः प्रसादार्थं प्रेमान्तानि कर्तव्यानि. ननु कदाचित् प्रेमरहितोऽपि तीर्थे सम्यक्प्रकारेण मुक्तिसूचकेन म्रियते, इति चेत्, तत्र आह नान्यस्य इति. तस्यापि पूर्वमेव साधनसम्पत्तिः सिद्धा वासनावशात् परं प्राकृतत्वं भगवदिच्छया. तस्मात् न व्यभिचारः इति अर्थः।।४७।।

मुक्तिकी प्राप्तिको प्रकार ये ही हे. अन्य कोई प्रकारसों मुक्ति नहीं मिले हे ये बतायवेके अर्थ भगवान्‌के देशादि छे अङ्गन्‌में होयवे वारी मुक्ति गौण हे ये आगेके दो श्लोकन्‌सुं कहे हें.

श्लोकार्थ : कबहु भगवदिच्छा होयवे पर कोई भगवद्भक्त जीवकों तीर्थादिमें रहिवे-मरिवेसों हु जो मुक्ति प्राप्त होय जाय हे वो वाहीकुं होय हे जाके उपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होवे हें, अन्यकु नहीं, ये बात निश्चित हे.

ज्ञानमार्गमें भी भक्ति करके ही जीवकी निर्गुणमुक्ति होवे हे, केवल ज्ञानसों तो सगुणमुक्ति होवे हे ये दिखायवेके अर्थ ज्ञानमार्गको उपरके श्लोकन्‌में वर्णन कियो हे. एसे ही काशि आदि तीर्थ भी भगवान्‌के अङ्ग हें तासों मुक्ति देवे वारे कहे हें. परन्तु भगवान्‌की भक्ति विना मुक्त नहीं कर सके हें. तीर्थमें रहिवे वारे जीवमात्रकी भक्तिके विना ही यदि मुक्ति हो जाती होय तो तीर्थन्‌में भूत-प्रेत क्यों दीखें हें? तथा यदि काशीजीमें मरिवेसों सबकी मुक्ति होती होय तो काशीमाहात्म्यमें लिख्यो हे ''काशीके पापी जीवन्‌कों मरे पीछें भैरव दण्ड दे हें'' ये बात असत्य होयगी. तथा काशीके जीवन्‌कुं मरे पीछे शिवजी 'तारकब्रह्म'मन्त्रको उपदेश दे हें ये लिख्यो हे. सो वो अलौकिक मन्त्रोपदेश भी शिवजी सबन्‌कुं नहीं दे हें.

कभी तीर्थादिकन्‌सों शुद्ध भये कोई जीवकुं ही वो अलौकिक उपदेश दियो जाय हे. अतएव जाके उपर श्रीकृष्ण भगवान् प्रसन्न होय हें वा ही जीवकी काशी आदि तीर्थन्‌में अलौकिक उपदेशके द्वारा मुक्ति करे हें. जेसें नामको माहात्म्य बढायवेके अर्थ महापापी अजामिलकी 'नारायण' नामसों ही मुक्ति करि दीनी एसे ही तीर्थको माहात्म्य जतायवेके अर्थ, जाके उपर भगवान् प्रसन्न होंय वाकी, तीर्थमें मुक्ति करे हें. तासों भगवान्‌के प्रसन्न होयवेके अर्थ प्रेमभक्ति करिवे वारे साधन करनो ही योग्य हे. कदाचित् प्रेमभक्ति विना कोई जीवकी मुक्ति तीर्थमें हो जाय तो जाननोंकी वो जीवने भक्तिके साधन पूर्वजन्ममें करलीने होंयगे. या जन्ममें, सम्भवतः, वो भगवान्‌कि इच्छासों वासनाके आधीन होयके संसारमें आसक्त हतो।।४७।।

तर्हि तीर्थादेः क्व उपयोगः? इति चेत्, तत्र आह सेवकम् इति.

सेवकं कृपया कृष्णः कदाचिन्मोचयेत्क्वचित्।।

तन्मूलत्वात् स्तुतिस्तस्य क्षेत्रस्य विनिरूप्यते।।४८।।

सेवकमेव पूर्वं तथाभूतं, तत्रापि कृपयैव, तत्रापि कृष्णएव. कर्ता, साधनं व्यापारश्च उक्तः. काल-देशौ आह कदाचित् क्वचिद् इति. अनेन कालस्यापि ततएव प्रशंसा इति ज्ञापितम्. स्तुतानि तीर्थादीनि भगवदङ्गत्वाद् दैत्यकृतविघ्ननाशकानि भवन्तीति लोकप्रवृत्यर्थं मुक्तिसाधकानि इति उच्यन्ते. तत्र स्थित्वा शुद्धे काले साधनानि साधयेद् इति।।४८।।

तब फिर तीर्थादिकन्को कहा उपयोग हे? या प्रश्नको उत्तर देत हें.

भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करिके अपने सेवकको कदाचित् तीर्थादिकमें मुक्ति दे हें. याके फलस्वरूप उन क्षेत्रन्की मुक्तिसाधक कहीके स्तुति करी जाय हे.

तीर्थकी प्रशंसा करायवेके अर्थ तीर्थमें अपने भक्तकी भगवान् मुक्ति करे हें. एसे ही कालकी प्रशंसा करायवेके अर्थ उत्तरायण आदि कालमें कृपा करिके भक्तकी मुक्ति करे हें. जेसें द्रढ भक्त भीष्मपितामहकी मुक्ति करिके उत्तरायण कालको माहात्म्य वढायो. जिन तीर्थन्की पुराणन्में महिमा हे उन तीर्थन्कुं भगवान्के अङ्ग जाननो. वे तीर्थ भगवान्की भक्ति बिगाड़वे वारे दैत्यन्के विघ्नन्कुं दूर करे हें. तासों ही लोकमें तीर्थन्को प्रचार होयवेके अर्थ ''तीर्थ मुक्ति देवे वारे हें'' एसें शास्त्रमें कह्यो हे. यासों तीर्थमें निवास करिके शुद्ध कालमें प्रेम-भक्ति साधनकुं साधनो योग्य हे. कोइ पुरुष ''भक्ति विना केवल तीर्थादिकन्में रहिवेसों ही मेरी मुक्ति होय जायगी'' एसें समुझके भक्ति करनो छोड़ देगो वाकि मुक्ति नहीं होयगी।।४८।।

अतः केवलतीर्थाद्याश्रयं परित्यज्य यथा भगवति स्नेहो भवति तथा यत्नं कुर्याद् इति आह तस्माद् इति.

तस्मात् सर्व परित्यज्य दृढविश्वासतो हरिम्।।
भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विद्यातो विमुच्यते।।४९।।

हरिभजनेऽपि कदाचित् मोक्षो न भवेद् इति आशङ्कां परित्यज्य दृढविश्वासं कृत्वा श्रवणादिभ्यो हेतुभ्यः श्रवणादिभिः भजेत्. ततो विमुच्यतएव इति पुनरुक्तम्।।४९।।

तासों ''केवल तीर्थ आदिको आश्रय करिवेसों हु मेरी मुक्ति होय जायेगी'' एसो विचार छोडीके जा प्रकार भगवान्में स्नेह होय वा प्रकार यत्न करनों. अब मर्यादाभक्तिको वर्णन करें हें.

भक्ति करेसों भी कदाचित् मेरी मुक्ति नहीं होय एसो सन्देह नहीं राखनों. वेदमें लिखे भये श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन ये तीन साधन करिके इनके करिवेसों भगवान् मेरी मुक्ति अवश्य करेंगे एसो द्रढ विश्वास होय जावे हे. फेर गीता-भागवतोक्त नवधा भक्ति निरन्तर करते रहनो. एसें नवधा भक्ति करतें-करतें स्नेह भक्ति जब हो जाय हे तब अविद्यासों भी छूट जाय हे. अर्थात् अविद्यासों छूटिवेके अर्थ तथा विद्याप्राप्तिके अर्थ विद्याके पांच पर्वन्को अभ्यास करनो ये बात पहले कही हे. फेर विद्यासों भी छूटिके ब्रह्ममें प्रवेश होयवेके अर्थ श्रवणादि नवधाभक्तिको अभ्यास निरन्तर करनों. ये बात या श्लोकमें लिखी हे।।४९।।

इदानीं कैमुक्तिकन्यायेन प्रेमभक्तेः फलम् आह ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् इति द्वाभ्याम्.

ब्रह्मानन्दे प्रविष्टानाम् आत्मनैव सुखप्रमा।।
सङ्घातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः।।५०।।
सर्वेन्द्रियैस्तथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि।।
ब्रह्मभावात्तु भक्तानां गृहमेव विशिष्यते।।५१।।

साधनं भक्तिः मोक्षः साध्यः. तथापि साधनदशैव उत्तमा. तत्र हेतुः यो विमुच्यते स सङ्घातं परित्यज्य ब्रह्मणि लीयते, ब्रह्मभावं वा प्राप्नोति. तस्य स्वरूपानन्दः स्वरूपेण वा आनन्दानुभावः. स्वतन्त्रभक्तानां तु गोपिकादितुल्यानां सर्वेन्द्रियैः तथा अन्तःकरणैः स्वरूपेण च आनन्दानुभवः. अतो भक्तानां जीवन्मुक्त्यपेक्षया भगवत्कृपासहितगृहाश्रमएव विशिष्यते।।५१।।

अब ये शङ्का होय हे के या प्रकार मर्यादाभक्तिसों भी मोक्ष हो जाय हे फिर स्वतन्त्र भक्ति अर्थात् प्रेमलक्षणा पुष्टि-भक्तिमें कहा अधिकता हे? याको उत्तर आगेके श्लोकमें लिखे हें.

श्लोकार्थ : ब्रह्मानन्दमें प्रविष्ट जीवन्कुं केवल आत्मा द्वारा ही सुखकी अनुभूति होवे हे क्योंके उनके देहादि सङ्घातको लय हो जावे हे. किन्तु स्वतन्त्रपुष्टिभक्तिसों सम्पन्न भक्तन्के सम्बन्धमें वैशिष्ट्य ये हे के उनकुं सभी बाह्येन्द्रिय, अन्तःकरण तथा आत्मा द्वारा भी विशेष रूपसों आनन्दकी अनुभूति होवे हे. यासों ही ब्रह्मभावकी अपेक्षा भक्तन्कों गृहस्थाश्रम ही श्रेयस्कर लगे हे.

'भक्ति' नाम पुष्टिभक्तिको भी हे तथा मर्यादाभक्तिको भी हे. अतएव पुष्टिभक्तिके साथ मर्यादाभक्तिको इतनो सजातीयपनो हे. मर्यादाभक्ति पुष्टिभक्तिकी सजातीय हे तथापि पुष्टिभक्तिकी साधनदशा हु मर्यादामार्गीय फलदशासों उत्तम हे, तब पुष्टिभक्तिकी फलदशाकी अधिकताको कहा वर्णन करनो "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा" इत्यादि श्रुतिके अनुसार भगवान् भक्तके आधीन होयकें पुष्टिमार्गीय भक्तकुं रसात्मक स्वरूपको पूर्ण अनुभव करावे हें. तथा श्रीभागवतमें साधन प्रकरणमें श्रीकृष्णचन्द्र श्रीयशोदाजीके श्रीहस्त करके उखलसों भी कृपाकरिके बंध गये हें. तब शुकदेवजीनें राजासों आज्ञा करी हे "नेमं विरञ्चो न शिवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया, प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् (भाग.पुरा.१०।९।२०) अर्थ:कर्म-ज्ञान-भक्तिमार्गके शिरोमणि ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदिकन्कुं जो भगवान्की प्रसन्नता नहीं मिली सो यशोदाजीकुं प्राप्त भई. एसें ही व्रजभक्तन्के कहेसों बाल्यावस्थामें पीढा आदि उठाय लावनों, नृत्य करवे लग जानों इत्यादि अनेक चरित्र भक्ताधीन होयकें करे. पुष्टिमार्गीय फलदशामें तो भगवान् भक्तके देहेन्द्रियादिकन्में अपनो आवेश करकें बाहिर प्रकट होयकें सकल देहेन्द्रियन्के द्वारा तथा आत्माके द्वारा भक्तन्कुं रसरूप स्वरूपको पूर्ण अनुभव करायके भी आप उन भक्तन्सों ये ही कहे हें कि "में तुमारी भक्तिको बदला सहस्त्रवर्षकरकें भी नहीं दे सकुं हुं". जेसें गोपीन्के प्रति भगवान्के वाक्य पञ्चाध्यायीमें "न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विविधायुषापिवः (भाग.पुरा.१०।३२।२२) इत्यादिक लिखे हें, परन्तु ऐसी स्वतन्त्र पुष्टिभक्ति दुर्लभ हे, तासों यहां मुख्यफलको वर्णन मूलमें नहीं कियो हे. याको वर्णन विस्तारसुं सेवाफल ग्रन्थके विवरणमें लिख्यो हे.

मर्यादामार्गमें तो मर्यादाभक्ति साधन हे तथा मोक्ष साध्य हे. जो मुक्त होवे हें वे देहादिकन्कुं छोड़के अधिकारानुसार अक्षरब्रह्ममें अथवा पुरुषोत्तममें लीन होय हें अथवा ब्रह्मभावकुं प्राप्त होवे हें. उनकुं केवल आत्मा करिके हि स्वरूपके आनन्दको अनुभव होवे हे।।५०।।

पुष्टिभक्तन्कुं तो सर्व इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा आत्मा इन सब करिकें स्वरूपानन्दानुभव होवे हे. तासों जीवन्मुक्तकी अपेक्षा पुष्टिभक्तन्को भगवत्सेवापरायण होयकें भगवत्कृपा सहित गृहस्थाश्रम ही उत्तम हे. क्योंके भगवान् उन भक्तन्कुं सेव्य-स्वरूप करिकें हि देहेन्द्रियान्तःकरणद्वारा स्वरूपानन्दको अनुभव करावे हें, जेसें पद्मनाभदासजी आदि पुष्टिभक्तन्कुं भयो हे. ताहीसों "प्रतिकूले गृहं त्यजेत्" या वाक्यमें सेवाको विरोधि गृह होय तो वाको त्याग करनों लिख्यो हे.

पुष्टिसेवाके तीन फल लिखे हें १.अलौकिकसामर्थ्य:भगवान्के आवेश करकें रसरूप पुरुषोत्तमके स्वरूपानन्दके अनुभव करिवे योग्य हो जानों. २.सायुज्य:पुरुषोत्तममें लय अथवा आभूषणादिरूप हो जानों. ३.सेवोपयोगी देह:अर्थात् देहेन्द्रियादिरहित

अक्षरब्रह्मरूप देहकी प्राप्ति वैकुण्ठादिकन्में हो जानी. इन तीनों फलन्को देनों भगवान्के आधीन हे. ओर ये तीनों फल उन जीवन्कुं मिले हें जे जीव पुष्टिसृष्टिके होवे हें. उन जीवन्के लक्षण पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थमें लिखे हें. काल-कर्म-स्वभावकुं रोकवे वारे भगवान्के अनुग्रहको नाम 'पुष्टि' कहे हें।।५१।।

ननु एवं सति साधन-फलयो: उत्कृष्टत्वात् कथं सर्वोऽपि न भक्तिमार्गे प्रविशति? इति चेत्, तत्र आह मोहार्थशास्त्रकलिलम् इति.

मोहार्थशास्त्रकलिलं यदा बुद्धेर्विभिद्यते।।
तदा भागवते शास्त्रे विश्वासस्तेन सत्फलम्।।५२।।

शास्त्राणि यानि भगवच्छास्त्रव्यतिरिक्तानि मोहार्थानि तान्येव कलौ मानम् अर्हन्ति. अत: तेषां दर्शनेन बुद्धौ कलिलम् उत्पद्यते. तच्चेद् विभिद्यते भगवत्कृपया तदैव भागवते शास्त्रे विश्वासः. एतदुक्तं सर्वाथा सत्यम् इति. तत: तदनुसारेण प्रवृत्त: सत्यं फलं प्राप्नोति इति अर्थ:।।५२।।

शङ्का : यदि एसी बात हे तो साधन तथा फल दोनोंन्के उत्कृष्ट होवेसों सब लोगन्की प्रवृत्ति स्वतन्त्र भक्तिमार्गमें होनी चहिये, एसो, परन्तु, देखिवेमें तो नहीं आवे हे या शङ्काको उत्तर देत हें.

श्लोकार्थ : जा समय मोहक शास्त्रन्को मेल बुद्धिमेंसुं दूर हो जाय हे ता समय भगवदुक्त तथा भगवत्प्रतिपादक शास्त्रमें विश्वास, तथा भागवतशास्त्रमें विश्वाससों सत्फलकी प्राप्ति होवे हे.

जब पुष्टिमार्गीय स्वतन्त्र प्रेमलक्षणा भक्तिको साधन तथा फल सबमार्गन्के साधन-फलसों अत्यन्त उत्तम हे तो सब ही मनुष्य या भक्तिमार्गमें क्यों नहीं प्रवृत्त होवे हें? ताको ये उत्तर हे कि वेद, भगवत्गीता आदि भगवच्छास्त्र विना अन्य जितने शास्त्र हें वे सब मनुष्यन्कुं मोह करायवेके अर्थ बनाये हें. उन शास्त्रन्कुं कलियुगमें बड़े माने हें. उनके देखिवेसों बुद्धि मलिन हो जावे हे. जब भगवान्की कृपासों बुद्धिको मल दूर होय तब भगवच्छास्त्रमें विश्वास होय अर्थात् भगवच्छास्त्रमें जो कह्यो हे सो सब साचो हे एसी द्रढता होय. फेर वाके अनुसार सदा वर्ताव राखे तब वाकुं साचो फल मिले हे. अर्थात् इन्द्रियन्में तथा अन्तःकरणमें आनन्द प्रकट होवे हे।।५२।।

या प्रकार यहां सत् प्रकरण सम्पूर्ण भयो हे. यामें कितनेक वादी जगत्कुं मिथ्या मानके, जगत्के बीचमें भगवान्की भक्ति भी आ गई तासों वाकुं भी मिथ्या कहे हें उनकी शङ्कान्को समाधान कियो हे.

चित्प्रकरण

एवं सत्प्रकरणम् उक्त्वा चित्प्रकरणम् आह जीवस्तु इति.

जीवस्त्वाराग्रमात्रो हि गन्धवद्व्यतिरेकवान्।।

'तु'शब्दः प्रकरणभेदकः. जीवस्य आदौ परिमाणम् उच्यते आराग्रमात्रइति. ''आराग्रमात्रो ह्यपरोपि द्रष्टः'' (श्वेता.उप.५।८) इति श्रुतेः. व्रीहेः अग्रभागः आरः. ननु एतावांश्चेत् कथं सर्वदेहव्यापिचैतन्योपलम्भः? तत्र आह गन्धवद् व्यतिरेकवान् इति. विशेषेण अतिरिच्यते इति व्यतिरेको द्रव्यापेक्षया अधिकदेशः. यथा गन्धः पुष्पापेक्षया अधिकदेशं व्याप्नोति तथा चैतन्यगुणः सर्वदेहव्यापी इति अर्थः. गन्धवतः कमलादेरिव वा स्थूलगुणयुक्तः. नतु तद-न्यथानुपपत्त्या तावत्परिमाणः.

आगें चित्प्रकरणको प्रारम्भ करे हें. या प्रकरणमें जीव व्यापक हे, सब ठिकानें विद्यमान हे, वो केसे भक्ति करि सके हे? एसें कहिवे वारे वादीकी शङ्का दूर करिवेके अर्थ जीवके धर्म कहे हें.

जीव आराग्रमात्र हे. अर्थात् छिलका सहित चांवलकी आगेकी तीखी नोंकके बराबर जीवको स्वरूप हे. जेसे फूल छोटो होय हे परन्तु वाको सुगन्ध गुण आखे वनमें फैल जावे हे एसे ही जीव तो अणु हे अर्थात् अत्यन्त छोटो हे परन्तु वाको चैतन्यगुण-चेतनपनो जितनों बड़ो देह होवे हे उतने बड़े देहमें सब ठिकानें फैल जावे हे. ये बात ''व्यतिरेको गन्धवत्'' (ब्रह्म-सूत्र२।३।२६) या व्याससूत्रमें लिखी हे.

यहां कितनेंक जैनमतके एकदेशी एसे कहे हें कि आखे शरीरमें सब ठिकानें चैतन्य मालुम पडे हे तासों जितनो बड़ो देह होवे हे उतनों ही बड़ो देहके भीतर जीव रहे हे एसें माननों. ताको ये उत्तर हे कि चैतन्यगुण आखे शरीरमें फैल जावे हे परन्तु जीव तो अणुमात्र होय हे. यदि जीवकु मध्यम परिमाण वारो मानोगे तो देह जितनों ही बडो जीव माननो पडेगो. तो देह जेसें अनित्य हे एसें जीवकु भी अनित्य माननो पडेगो. कदाचित् जीवकु भी अनित्य मान लोगे; अर्थात् देहके साथ ही जीव बन जावे हे, देहके साथ ही जीव मिट जावे हे—एसे कहोगे तो जनमतो बालक भूख मिटायवेके अर्थ स्तन पीवेमें प्रवृत्त होवे हे सो तुम्हारे मतके हिसाबसों नहिं बन सकेगो. क्योंके वाकु कहां याद हे के ''एसें स्तनपान कियो जाय'' तथा ''स्तन पीवेसों मेरी भूख मिट जायगी''. ओर हमारे सिद्धान्तसों तो जीव अनेक देह धारण करतो आयो हे तथा अनेक जन्ममें भूख मिटायवेके अर्थ स्तन पीतो आयो हे, वाकी याद हे तासों वा अभ्याससों बालक या जन्ममें भी स्तन पीवेमें प्रवृत्त हो जावे हे. ओर प्रेत-भूत अपने पहले जन्मकी भी सब बात कहे हें तासों भी मालुम पडे हे के जीवको देहके साथ नाश नहिं होय हे. जीव नित्य हे. ओर देह जितनो बडो ही जीवकु मानोगे तो शरीर अनेक हें, सब ही शरीरन्में कर्मके आधीन होयके जीवकु जानो पडे हे, तब हाथीकी देहके बराबरको हाथीको जीव चिंटीमें केसे माय सकेगो? ओर शरीरके साथ ही जीव छोटो-बडो हो जाय हे एसे कहोगे तो शरीरको जेसे नाश मानो हो तेसे जीवको भी नाश माननो पडेगो. जो कहोगे जीवमें छोटेपनो-बडेपनो आदि सब परिमाण हें तो ये बात लोकविरूद्ध हे. जगतमें एक वस्तुको एक ही परिणाम होवे हे. ओर यदि जीवकु शरीर जितनो ही बड़ो मानोगे तो जीवकु अवयव वारो माननो पडेगो. अवयव वारो पदार्थ अनित्य होय हे एसे जीव भी अनित्य होयगो. एसे अनेक दूषण हें. तासों शरीरके बराबर जीवकु नहिं माननो, जीवकु अणु जितनो ही माननो.

अब जीवकु व्यापक माने हें वाको खण्डन करे हें. वादी कहे हे अनेक पदार्थ जीवके भोगवेके अर्थ अनेक देशन्में उत्पन्न होवे हें. अनेक उत्पन्न होयवेमें जीवको अदृष्ट अर्थात् धर्म-अधर्म ही कारण हे. धर्म-अधर्म जीवात्मामें रहे हें तासों जहां-जहां जीवके भोगवेके अर्थ पदार्थ उत्पन्न होवे हें वहां-वहां धर्माधर्म सहित जीव विद्यमान हे. अर्थात् अदृष्ट धर्माधर्म

सहित जीवको संयोग ही हे. जीवके भोगवे योग्य पदार्थ बनवेमें कारण हे. ओर सब ठिकाने जीवको संयोग रहनो जीवकु व्यापक माने विना नहीं बन सके हे तासों जीवकु व्यापक माननो.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें जीवकु व्यापक मानोगे तो सब ही जीव सब ठिकाने विद्यमान हें. तहां जितने मूर्तिवाले पदार्थ हें उन सबके साथ जीवन्को संयोग हे. ओर सबहीके मन देह इन्द्रियन्के साथ सबही जीवन्को संयोग हे एसो माननो पडेगो. तब तो सब जीवन्कुं अद्रष्ट करिके इकसार ही सुख-दुःख होने चहिये सब ही जीवन्कुं सब ही पदार्थन्को भोग होनो चहिये एसे, परन्तु, होवे तो नहीं हे. जा जीवके जे नियत भोग हें उन भोगन्कुं ही वो जीव भोगे हे. जीवकु व्यापक मानोगे तो ये बात नहीं बन सकेगी.

विवादी कहे हे : व्यापक पदार्थके गुण जहां-जहां असमवायी कारण रहे हे वहां ही रहे हें. अर्थात् जीव व्यापक हे तासों कहा भयो, मन तो अणु जितने हे. जा ठिकाने मन जीवसों लगे हे वाही ठिकाने जीव पदार्थको मनके द्वारा भोग कर सके हे. सब ही पदार्थको भोग नहीं कर सके हे.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : ठीक, जहां-जहां मनको संयोग हो रह्यो हे वहांके भोगन्को तो अनुभव होनो चहिये, जेसे 'देव-दत्त' नामके मनुष्यने आम्रको भक्षण कियो तो वाकु एसो ज्ञान होवे हे कि ''मेने मुखसों आम्रफलको भक्षण कियो''. एसे ही सब ही जीवन्कुं ये अनुभव होनो चहिये जो ''हमने देवदत्तके शरीर करिके आम्रफलको भक्षण कियो''. क्योंके जीवकु व्यापक मानोगे तो देवदत्तके जीवको देवदत्तके मनके साथ संयोग हे वाही प्रकार सब ही जीवको देवदत्तके मनके साथ संयोग हे एसो माननो पडेगो. ओर जेसे एक मनुष्यकु ''पांवमें मेरे सुख हे''-''मस्तकमें मेरे पीडा हे'' ये ज्ञान होवे हे. वेसे ही ''यज्ञदत्तके शरीरमें मोकुं सुख हो रह्यो हे''-''विष्णुमित्रके शरीरमें मोकुं दुःख हो रह्यो हे'' एसो ज्ञान होनो चहिये. याही रिति सब ही जीव सर्वज्ञ हो जाने चहिये.

विवादी : जा आत्माको जो शरीर हे वा शरीरसों ही वो भोग कर सके हे. अन्य शरीरसों भोग नहीं करि सके हे क्योंके वा आत्माको जो धर्मा-धर्मरूप अदृष्ट हे सो वा आत्माको अन्य शरीरमें भोग नहीं करिवे देवे हे.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : जब आत्मा अन्य शरीरमें भोग नहीं कर सके हे तथा अन्य शरीरन्के वृत्तान्तकु भी नहीं जान सके हे तब आत्माको सब ठिकाने व्यापक माननो वृथा ही भयो. किन्तु देह जितनो बडो होय उतनो ही बडो आत्मा माननो पडेगो तब तो मध्यम परिमाण वारो होयवेसों जेसे देह अनित्य हे तेसे आत्माकु भी अनित्य माननो पडेगो. यदि आत्माकु व्यापक तथा नित्य मानो हो तो जेसे अपने शरीरसों अनेक पदार्थ भोग करे हें तेसे अन्य शरीरन्सों भी अनेक पदार्थको भोग माननो पडेगो. या प्रकारसों तुमारे मतमें प्रत्यक्ष विरोध आयो क्योंके लोकमें जीव जितने हें वे सब अपने-अपने शरीरकरिके ही विषयभोग करते दीखे हें. दूसरेके शरीरसों विषयभोग करते नहीं दीखे हे. किञ्च देवदत्तके शरीरसों जो आम्रभक्षणको अनुभव भयो हे वाको यज्ञदत्तकु भी ''मेनें आम्रभक्षण कियो''एसो स्मरण रहनो चहिये.

विवादी : जा ठिकाने अनुभव होय हे वाही ठिकाने स्मरण होय हे तासों देवदत्तके चाखे भये आमको देवदत्तकु ही स्मरण होयगो, यज्ञदत्तकु नहीं होय सके हे.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : जा ठिकाने अनुभव होय वाही ठिकाने स्मरण होय एसो नियम नहीं हे. देखो रूपको अनुभव आंखसों होय हे, स्पर्शको अनुभव हाथसों होय हे. परन्तु ''मेने कदम्ब देख्यो हतो''-''मेने पीताम्बरको स्पर्श कर्यो हतो'' एसो

स्मरण आंखकु तथा हाथकु छोडके हृदयमें जाय होय हे. यामें ''जो वस्तु मेने हाथसों स्पर्शकरी''–''जो वस्तु मेने आंखसों देखी विनको में स्मरण करुं हुं'' या प्रकारको अनुव्यवसाय ही प्रमाण हे.

विवादी : एक देहमें अनुभव अन्य ठिकाने होय तथा स्मरण अन्य ठिकाने होय ये बात तो बन भी सके हे परन्तु अनुभव अन्य देहमें होय तथा स्मरण अन्य देहमें होय ये बात नहीं बन सके हे. क्योंके जा देहमें अनुभव होय वाही देहमें स्मरण होय एसो नियम हे.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : अनुभव–स्मरण एकही देहमें होवे हें ये भी नियम नहीं सम्भभव सके हे क्योंके कितने मनुष्यन्कु पहले जन्मकी देहमें जिन पदार्थन्को अनुभव कियो हे वाको स्मरण या देहमें हो जावे हे. क्योंकी देह दूसरी हे परन्तु आत्मा तो एक ही हे. या ही रीतिसों आत्माकों व्यापक मानोगे तो सब देहन्के विषयभोगको स्मरण देवदत्तकु होनो चहिये. क्योंकी सब देहन्में देवदत्तके आत्माको सम्बन्ध हे. तथा पहिलेकी जीवात्मा अपनी देहमें ही विषयभोग कर सकेहे अन्य देहन्में अद्रष्ट अर्थात् धर्माधर्म जीवात्माकु विषयभोग नहीं करिवे देवे हे ये भी बात तुमारे मतमें नहीं सम्भव सके हे. क्योंके आत्मा सर्वत्र विद्यमान हे, सबहीके आत्माको सबहीके मनके साथ संयोग हे. तब तो आत्म–मन : संयोगसों भयो जो प्रयत्न तथा प्रयत्नसुं भयो जो कर्म, वासों भयो जो धर्माधर्मरूप अद्रष्ट सो भी सब जीवन्को समान भयो. तब तो सबन्कुं समान सुख–दुःख होने चहिये. तथा जेसे देवदत्त यज्ञदत्तकी देहसों विषयभोग नहीं कर सकेगो, क्योंके अद्रष्ट सबके समान होयवेसों, जो अदृष्ट देवद–त्तके भोग करिवेमें प्रतिबन्धक हे वो ही अदृष्ट यज्ञदत्तके भोग करिवेमें प्रतिबन्धक हो जायगो. जीवात्माकों व्यापक मानोगे तो ईश्वरके आधीन भी जीव नहीं रहेगो, क्योंके जेसे भगवान् व्यापक नित्य चैतन्य हें वेसे ही जीव भी व्यापक नित्यचेतन होयवेसों वो ईश्वरके समान आपुन्को मानेगे. तासों वेदादिकन्के अनुसार जीवकु अणुरूप ही माननो. जीवमें चैतन्य गुण हे सो विसर्पी हे. अर्थात् फैलवेकी सामर्थ्य वारो हे. जितनी बडी जीवकु देह मिले हे वितनेमें फैल जावे हे. विसर्पीचैतन्य गुणको निरूपण प्रस्थानरत्नाकरमें स्पष्ट लिख्यो हे.

विवादी : जीवात्माकु अणु मानोगे तो आत्माके ज्ञान, सुखदुःखादिकको प्रत्यक्ष नहीं होय सकेगो क्योंके अणुके गुण अती–न्द्रिय होवे हें.

श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हें : जे ज्ञान–सुखादिक जन्य हें वे आत्माके धर्म नहीं हें, वे सब मनके धर्म हें. तामें श्रुति प्रमाण हे ''कामः सङ्कल्पः श्रद्धा अश्रद्धा हीर्धीर्भीरिति सर्व मन एव'' इति. ओर प्रत्यक्ष होयवेमें योग्यताकी ही कारणता हे.

विवादी : आत्माकुं अणु मानोगे तो अणुको तो प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होवे हे. जेसे ''में हुं'' या प्रकारको आत्माको भी प्रत्यक्ष–ज्ञान नहीं होनो चहिये. तथा योगीन्कु आत्मा प्रत्यक्ष दीख आवे हे सो भी नहीं दीखनो चहिये.

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : ''में हुं'' ये जो प्रत्यक्षज्ञान हे सो देहसम्वलित आत्माको हे, केवल आत्माको प्रत्यक्ष नहीं होवे हे. योगी लोग तो योगजधर्मसों अणुको भी प्रत्यक्ष करले हें वेसे ही आत्माकों भी अलौकिक प्रत्यक्ष विषय करले हें. तासों वेद परमाप्त हे. वेदमें आत्माकु अणुपरिमाण वारो लिख्यो हे उतनो ही माननो.

विवादी : आत्मा तो व्यापक ही होयगो. वेदमें तो अणुकी उपमा मात्र दीनी हे. अर्थात् जेसे अणु बहुत परिश्रमसों जान्यो जाय हे एसे आत्माभी परिश्रमद्वारा चित्त शुद्ध होय तब जान्यो जाय हे.

श्रीआजार्यजी आज्ञा करे हें : वेदमें जूठो वर्णन नहीं होय हे. ओर यदि एसो ही वेदको अभिप्राय होय तो ''वालाग्रशतभागस्य'' (श्वेता.उप.४।९) या श्वेताश्वतरकी श्रुतिमें वालाग्रके शतभागके शतभागको एक हिस्सा जीवको परिमाण लिख्यो हे सो एसे विस्तारसों क्यों वर्णन करते दुर्ज्ञेयता तो अणुमात्रके कथनसों ही सिद्ध होय जाती.

वैदिके शास्त्रे वाचनिक्येव व्यवस्था. नापि अवान्तरपरिमाणेऽपि अनित्यता भवति. यथा भगवतः प्रादेशमात्रस्य अङ्गुष्ठपर्वमात्रस्य हंसाकृतिः तथा आराग्रमात्रएव हंसाकृतिः.

वैदिक शास्त्रमें वेदके वचन करिके ही व्यवस्था करनी, लौकिक युक्तिसों वेदोक्त प्रमेय नहीं जान्यो जावे हे ये ही ''श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्'' (ब्रह्मसूत्र२।१।२७) या व्याससूत्रमें वेदव्यासजीको सिद्धान्त हे. वैदिक रीतिसों आराग्रमात्र जीवकु मानोगे तो अवान्तर परिमाण होयवेसों अनित्य होयगो इत्यादि दूषण भी हमारे मतमें नहीं हे क्योंके या मतमें वेदवाक्यन्सों व्यवस्था हे, वेदविरुद्ध युक्ति अप्रमाण हे. जेसे वेदमें भगवान्को स्वरूप कहीं अङ्गुष्ठमात्र, कहीं प्रादेशमात्र, कहीं हंसाकार, कहीं हंसरूप होयके पुरमें अर्थात् शरीरमें प्रवेश वर्णन कियो हे वहां चिंटी आदि शरीरमें प्रादेशमात्र परमात्मा केसे रहेतो होयगो? तथा परमात्मा नानापरिमाण वारो केसे हो जावेहे? इत्यादि तर्कना नहीं होवे हे. एसे ही भगवदंश जीवात्मा आराग्रमात्र होयके भी नित्य हे या विषयमें भी तर्क नहीं चलावनो.

ननु ''नित्यः सर्वगतः स्थाणुः''(भग.गीता२।२४) इति वाक्याद् व्यापको भविष्यति इति आशङ्क्य आह व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य इति.

व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्वेन युज्यते।।५३।।

भगवदावेशे भगवद्धर्माः व्यापकत्वादयः तत्र श्रूयन्ते नतु जीवो व्यापकः।।५३।।

ओर गीताजीमें ''नित्यः सर्वगतः स्थाणुः'' (भग.गीता२।२४) या श्लोकमें जीवकु व्यापक लिख्यो हे सो तो जब भगवान्को आवेश या जीवमें आवे हे तब भगवान्के व्यापकत्वादिक धर्म भी जीवमें आय जावे हें. वे धर्म भगवान्के ही हें, जीवके नहीं हें. जेसे लोहके गोलामें अग्नि घुस जावे हे तब लोहेको गोला भी जलायवे लग जावे हे परन्तु जलावनो लोहेके गोलाको गुण नहीं हे, अग्निको ही गुण हे. याही रिति जीव जब ब्रह्मज्ञानी होवे हे तब ब्रह्मके आवेश होयवेसों ब्रह्मरूप हो जावे हे. तब व्यापकत्वादि धर्म भी प्रकट हो जावे हें।।५३।।

ननु वेदे ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' (मुण्ड.उप.३।२।९) इति वाक्याद् आराग्रमात्रत्वं न वास्तवम्, इति चेत्, तत्र आह आनन्दांशाभिव्यक्तौइति.

आनन्दांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः।।

प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्।।५४।।

ब्रह्मत्वेपि न अधिकपरिमाणता वक्तव्या. अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति. यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति तथा जीवस्यापि आनन्दांशः चेद् अभिव्यक्तः तदा तस्मिन् ब्रह्माण्डकोटयो भवन्ति. अतएव परिच्छेदेऽपि व्यापकत्वसिद्धेः न तदनुरोधेन अधिकपरिमाणत्वम् अङ्गीकर्तव्यमिति आह परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तद् इति. अलौकिकेषु धर्मेषु प्रमाणमेव अनुसर्तव्यं, न लौकिकी युक्तिः. अतो व्यापकत्वेऽपि न आराग्रमात्रत्वं दोषाय।।५४।।

जब जीवको आनन्दांश प्रकट होवे हे तब जीवमें क्रोडन ब्रह्माण्ड प्रतीत होयवे लगे हें. परन्तु व्यापक होवे हे वा समयमें भी अणु जितनो ही जीवको परिमाण रहे हे. वहां अणु जीवमें क्रोडन ब्रह्माण्ड केसे प्रतीत होते होंयगे? यों आश्चर्य नहीं करनो. श्रीभागवान् कृष्णचन्द्र छोटो रूप धारण करिके यशोदाजीकी गोदमें बिराजे हते वा समय छोटे रूपमें भी जगत् दिखायो

हे एसे ही जीवमें भगवान्‌को आवेश आवे हे तब भगवान्‌को आनन्दांश प्रकट होवे हे तथा आनन्दांशको धर्म जो विरुद्धधर्माश्रयता हे वो भी प्रकट होवे हे. तब अणुमात्र जीवमें भी क्रोड ब्रह्माण्ड प्रतीत होवे हें. विरूद्धधर्माश्रय तो लोकमें कोई पदवी नहीं दीखे हे, ब्रह्मकु विरुद्धधर्माश्रय केसे मानें? एसी शङ्का नहीं करनी. लोकमें तो कोई सर्वज्ञ-सर्वकर्ता भी नहीं दीखे हे तथापि वेदके कहेसों ब्रह्मकु सर्वज्ञ-सर्वकर्ता माने हें. एसे ही ''तदेजति तन्नैजति'' (ईशावा.उप.५) या यजुर्वेदकी श्रुतिके अनुसार ब्रह्मकु विरुद्धधर्माश्रय भी माननो. अलौकिकधर्म लौकिकेन्द्रियादि प्रमाणन्सों नहीं जाने जावे हें तथा लौकिकयुक्तिकी भी वहां सामथर्य नहीं चले हे. आगेके श्लोकमें जीवके प्रकाशक धर्मको निरूपण करेंगे।।५४।।

धर्मान्तम् आह प्रकाशकम् तच्चैतन्यम् इति.

प्रकाशकं तच्चैतन्यं तेजोवत्तेन भासते।।

प्रकाशकं तत्तद्रूपं, तस्य चैतन्यगुणो वा, तेन तेजोवद्भासते. ततो ज्योतिः प्रयोगो ''वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्त-मात्मज्योतिः'' (भाग.पुरा.६।१२।३५) इति, यथा ''चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिः'' (भाग.पुरा.१०।७४।४५) इति. नैतावता तेजः प्रकृतित्वम्. तेजसोऽपि ब्रह्मप्रकृतित्वादेव तथात्वम्. अतएव न रूपवत्वादिकम् आशङ्कनीयम्.

लोकप्रमाणागोचरत्वं धर्मम् आह न प्राकृतेन्द्रियैर्ग्राह्यम् इति.

न प्राकृतेन्द्रियैर्ग्राह्यं न प्रकाश्यं च केनचित्।।

रूपाद्यभावात् सत्सन्निकर्षाभावाच्च, ''यन्न स्पृशन्ति न विदुः'' इति वाक्यात्. नापि केनचित् प्रकाश्यम्. यथा सूर्येण प्रकाशितो घटः चक्षुषाऽपि गृह्यते न तथा इन्द्रियग्रहणार्थं किञ्चित्प्रकाशकम् अस्ति इति अर्थः.

जीव अथवा जीवको चैतन्यगुण प्रकाशक हे, अर्थात् प्रकाश वारो हे, तासों तेज जेसो मालुम पडे हे. ताहीसों वेदपुराणन्में ज्योतिरूपसों वर्णन हे. भागवत्में भी वृत्रासुरकी देहसों तथा शिशुपालकी देहसों निकसतो भयो जीव ज्योतिरूप ही सबलोगन्कुं भासमान भयो. परन्तु जीवकुं दीपकके समान पञ्चमहाभूतान्तर्गत तेजस् तत्वसु बन्यो भयो ज्योतिरूप नहीं मान लेनो. ब्रह्मधर्मरूप प्रकाश वारो हे तासों ज्योति जेसो प्रतीत होवे हे. जीव तो लौकिक इन्द्रियादिकन् करिके ग्रहण करिवेमें नहीं आवे हे. जेसे अन्धकारमें धरी वस्तु दिया-सूर्यादिद्वारा दीखवेमें आवे हे एसे जीवको स्वरूप दीया, सूर्य आदिद्वारा भी नहीं दीख सके हे.

ननु तर्हि ''पश्यतां सर्वलोकानाम्'' (भाग.पुरा.१०।१२।३५) इत्यादि कथम् उपपद्यते? इति चेत् तत्र आह योगेन इति.

योगेन भगवद्दृष्टया दिव्यया वा प्रकाशते।।५५-५६।।

त्रेधा तद्दर्शनम्. योगेन साधितं मनः पश्यति, दिव्यास्तु या भगवन्तं पश्यति, दिव्या ज्ञानदृष्टिश्च या तया. नान्यथा तद्दर्शनम् इति अर्थः।।५५-५६।।

तब ये शङ्का भई के शिशुपाल-वृत्रासुरके जीव निकसते समयमें सबन्कुं केसे दीख गये? ताको उत्तर आगेंके श्लोकमें लिखे हें.

तीन रीतिसों जीवको स्वरूप दीखे हे. १.एकतो योग करिके साधित अर्थात् सधे भये मनद्वारा जीवकु देखे हें. २.अथवा जिन नेत्रन्सों भगवान्‌के दर्शन करे हें उन नेत्रन्सों जीवकु देख सके हें, जेसे शिशुपालको जीव उनकी दृष्टिसों दीख्यो जिनकी दृष्टि भगवान्कुं देख रही हती. अथवा ३.दिव्यदृष्टिसों जीव दीखे हे जेसे वृत्रासुरको जीव दिव्यदृष्टि वाले देवतान्कुं दीखवेमें आयो।।५५-५६।।

एवं स्वमते जीवस्वरूपम् उक्त्वा ''एकधा दशधा चैव दृश्यते जलन्द्रवत्'' (ब्रह्मबि.उप.१२, त्रिपुरता.उप.५।१२) इति वाक्याद् ब्रह्मप्रतिबिम्बो ब्रह्माभासो वा जीवः इति कश्चिन् मन्यते, तन्मतनिराकरणाय आह आभासप्रतिबिम्बत्वम् इति.

आभासप्रतिबिम्बत्वम् एवं तस्य न चान्यथा।।

यद्यपि तद्वाक्यं ब्रह्मवाक्यं, तेन एकं ब्रह्मैव नानारूपं चन्द्रदृष्टान्तेन उच्यते. एकस्य नानात्वमेव द्रष्टान्तार्थो न प्रतिबिम्बत्वम्. ''प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः'' (भाग.पुरा.७।९।११) इत्यत्रापि तथा.

रूपस्पर्शादियुक्तस्य द्रव्यस्य रूपमात्रोपलम्भः प्रतिबिम्बः. क्रियाश्च. नतु धर्मस्पर्शो वा, तथा सति वलेन्दुः तं प्रक्षिप्य तं स्पृशेत्. तत्र स्वाधारस्वभावानुविधायित्वे सति सम्मुखस्थितार्थानुविधायित्वेन प्रतीतियोग्यो हि प्रतिबिम्बः. स च इतरविलक्षणः. अतः प्रतिबिम्बरूपम् एकं भगवतः स्वतन्त्रम् इति मन्तव्यम्. तत्रापि मानाद्यभावात् तदर्थं प्रयत्नाकरणात्. अतएव ''समो मशकेन समो नागेन'' (बृहदा.उप.१।३।२२) इति श्रुतेः सर्वानुविधायकत्वमपि सङ्गच्छते. अतो ''मूलसेकः शाखायामपि गच्छति'' इतिवत् प्रतिबिम्बेऽपि तथा भानम् अस्तीति एतावन्मात्रम् अभिप्रेत्य उच्यते. आभासत्वं प्रतिबिम्बत्वं, नतु मुख्याभासवत् तस्य अलीकं स्वरूपम् इति अर्थः. ''यदस्ति यन्नास्ति'' (विष्णुपुराण२।१२।३८) इति वाक्याद् भगवतः सर्वं रूपम् उपपद्यते, नतु अन्यस्य इति भावः. यथा महाराजस्य सर्वरूपं सर्वा च कृतिः न दोषाय.

आभासप्रतिबिम्बत्वे प्रयोजकं रूपम् आह आनन्दांशतिरोधानाद् इति.

आनन्दांशतिरोधानात् तत्तद्रूत्तेन भासते।।५७।।

जीवरूपं तत्. एतत्तिरोधानाद् जीवत्वं भासते. तेन आनन्दांशेन आविर्भूतेन युक्तं यत् तद्वद् ब्रह्मवद् अवभासते इति अर्थः. अंशद्वयस्य विद्यमानत्वात् सदंशस्फूर्तौ आभासत्वम्, उभयोः स्फूर्तौ प्रतिबिम्बत्वं, त्रितयस्फूर्तौ ब्रह्मत्वम् इति निर्णयः, नतु लौकिकाभासत्वं, तथा सति अलीकता स्याद्. अतो मायावादव्यतिरिक्ताः तं तथा मन्यन्ते इति।।५७।।

मायावादीके मतमें ब्रह्मको प्रतिबिम्बरूप अथवा ब्रह्मको आभासरूप जीवकुं माने हें ताको खण्डन करे हें ''आभासप्रतिबिम्बत्वम्'' इति.

जीव हे सो ब्रह्मको आभासरूप तथा ब्रह्मको प्रतिबिम्बरूप नहीं होय सके हे. ओर ब्रह्मबिन्दूपनिषद्में ''एकधा दशधा चैव द्रश्यते जलचन्द्रवत्'' (ब्रह्मबि.उप.१२) या वाक्यमें भी एक ब्रह्म नानारूप हो जावे हे जेसे एक चन्द्रमा जलके घडान्में अनेक प्रकार वारो दीखे हे ये ही बात लिखी हे. अर्थात् एक ब्रह्मके अनेक रूप होयवेमें ही चन्द्रमाको द्रष्टान्त दियो हे. या वाक्यसों जीव ब्रह्मको प्रतिबिम्ब हे ये बात नहीं सिद्ध होय सके हे. यदि श्रुतिको एसो अभिप्राय होय तो मुखको ही द्रष्टान्त श्रुतिमें लिखते. यद्यपि ये वाक्य जीवप्रकरणमें हे तथापि अंश-अंशीकी अभेद भावना करायवेके अर्थ ब्रह्मको निरूपण या वाक्यमें कियो हे. ''एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः, एकधा बहुधा चैव द्रश्यते जलचन्द्रवत्'' (तत्रैव) अर्थ:एक परमेश्वर अंशरूप करिके सब शरीरन्में अनेक रूपसों स्थित हे जेसे चन्द्रमा अंशरूप किरणन् करिके जलमें स्थित होय हे. किरणरूप जो चन्द्रमाके अनेक अंशरूप हें वे अपने अंशी चन्द्रमासों जेसे अलग नहीं हें एसे जीवरूप अंश भी अपने अंशी ब्रह्मसों अलग नहीं हे. या ही प्रकार श्रीभागवतमें भी ''प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः'' (भाग.पुरा.७।९।११) या श्लोकमें मुखकी आभूषणादिकन्सों शोभा करी जाय तो वा मुखके प्रतिबिम्बकी विना ही कियें शोभा होय जावे हे एसे ही परमेश्वरकुं भक्ति करिके सन्तुष्ट कियो जाय तो वाके अंशरूप जीवात्मा स्वतः सन्तुष्ट हो जावे हें, जेसे वृक्षके मूलमें जल डारिवेसों शाखा स्वतः तृप्त होय जावे हें. अर्थात् जेसे प्रतिबिम्बित मुखकी शोभामें मुखकी शोभा प्रयोजक-कारण हे एसे ही परमात्माको प्रसन्न होनो जीवन्के प्रसन्न होयवेको कारण हे. ये ही बात ''प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः'' (तत्रैव) या श्लोकसों सिद्ध होवे हे. जीव परमात्माको प्रतिबिम्ब हे ये बात सर्वथा नहीं सिद्ध होवे हे.

प्रतिबिम्ब पदार्थको यथार्थ स्वरूप लिखे हें:जो पदार्थ दर्पण जलादिरूप जो आधार वाके जो स्वच्छता तथा मलिनता आदि धर्म उनके समानधर्म वारो होय ओर सम्मुखस्थित जो मुख चन्द्रमा आदि पदार्थ उनके भी समानधर्म वारो होय ओर प्रतीत होतो होय वाकों 'प्रतिबिम्ब' कहनो

ये प्रतिबिम्ब पदार्थ घटादिरूप सत्य सृष्टिसों तथा आभासादिरूप मिथ्या सृष्टिसों विलक्षण हे. भगवान्के जो अनन्तरूप हें उन रूपन्में प्रतिबिम्ब भी भगवान्को एक स्वतन्त्र रूप हे. जेसे भगवान्के अन्य रूपन्की सङ्ख्या तथा परिमाण नहीं हें तेसें प्रतिबिम्बमें भी सङ्ख्या तथा परिमाण नहीं हें. एक मुखके हजारन् प्रतिबिम्ब होय सके हें तासों सङ्ख्याको नियम नहीं हे. याही प्रकार परिमाणको भी नियम नहीं हे. क्योंके एक हाथके काचमें हाथीको प्रतिबिम्ब एक हाथमात्रको होय जावे हे तथा चार हाथके काचमें चार हाथको हाथीको प्रतिबिम्ब होय जावे हे. तथा ''समो नागेन समो मशकेन'' (बृहदा.उप.१।३।२२) इत्यादि श्रुतिन्के अनुसार भगवान् हाथी, मच्छर तथा तीनलोकके सब पदार्थन्के समान धर्म वारे हें ये बात भी प्रतिबिम्बमें सङ्गत होवे हे. क्योंके प्रतिबिम्ब हे सो हाथीके सम्मुख हाथी तथा मच्छरके सम्मुख मच्छर जेसो होय जाय हे. या रीतिसों सब पदार्थके समान होय सके हे.

शङ्का : प्रतिबिम्बकुं तो मायिक पदार्थ माने हें तब भगवान्को रूपान्तर केसे होय सके हे? उत्तर:''यदस्ति यन्नास्ति च विप्र–वर्य'' (विष्णुपुरा.२।१२।३८) इत्यादि विष्णुपुराणादिकन्के वाक्यन्सों चतुर्दश भुवन, सत्पदार्थ तथा असत्पदार्थ सर्व भगद्रूप ही हें ये सिद्धान्त सिद्ध होवे हे. भगवान् विना, क्योंके, अन्य पदार्थ सर्वरूप नहीं होय सके हे तासों मायिक प्रतिबिम्बादिक भी आपके ही रूपान्तर हें. मायिकरूप धारण करिवेमें आपकी कछु भी हानि नहीं हे. लोकमें भी चक्रवर्तीराजाके सब प्रकारके रूप तथा सब प्रकारके कार्य जब प्रशंसायोग्य ही समुझे जांय हें, उनमें दोषबुद्धि कोईकी भी नहीं होय हे, तब सकल जगत्के नियन्ता भगवान्के सदसद्रूप धारणकरिवेमें दोषसम्भावना केसे होय सके हे?

जब आपके मनमें मायिक–अमायिक सब ही पदार्थ भगवान्के रूप हें तब मायिक प्रतिबिम्ब अथवा मायिक आभा–सरूप जीवकु मान लेवेमें आपकी कहा हानि हे?

उत्तर : जीवकुं यदि मायिक प्रतिबिम्बादि रूप मिथ्या ही मानोगे तो मोक्षके साधन बतायवे वारे सब शास्त्र व्यर्थ ही हो जायेंगे. किञ्च, वेदमें ''योन्यथा सन्तमात्मानम्'' या श्रुतिमें आत्माके अन्यथा ज्ञानीकु अर्थात् मनःकल्पित विपरीत स्वरूप मानिवे वारेकु महापापी कह्यो हे तासों जीवको जेसो स्वरूप होय तेसो ही माननो उचित हे.

व्याससूत्रादिकन्में जो आभासादिरूपता जीवकु लिखी हे ताको कारण ये हे:अनन्दांशको तिरोधान होय हे तब जीवत्व भासमान होय हे. मनुष्य जब देहकु अपनो स्वरूप माने हे तब ''में स्थूल हुं''–''में कृश हुं''–''में गोरो हुं'' इत्यादि आधि–भौतिक ज्ञान वाकु होय हे. तब या अवस्थामें सन्देशमात्रकी स्फूर्ति रहे हे, तब ब्रह्माभास या जीवकु कह्यो हे. जेसे कोई मनु–ष्यमें ब्राह्मणके सब धर्म–गुण नहीं होंय, केवल जातिब्राह्मण होय, वासों जेसे ब्राह्मणाभास कहे हें. जब ये मनुष्य देहसों अलग अपने स्वरूपकु माने हे तब ''में चेतन हुं'' या प्रकारको आध्यात्मिक ज्ञान वाकु होवे हे. या अवस्थामें सत्ता तथा चैतन्य इन दोनो अंशन्की स्फूर्ति होवे हे तब या जीवकुं ब्रह्मको प्रतिबिम्ब शास्त्रमें कहे हें, जेसे जातिब्राह्मणमें ब्राह्मणके कितनेक धर्म आय जावें तब वाकु ब्राह्मणसदृश कहे हें. बिम्बके सदृशको नाम 'प्रतिबिम्ब' हे. जब भक्ति आदि साधन करिके आनन्दांश प्रकट होवे हे तब ''सच्चिदानन्दरूप मैं हुं'' एसी प्रतीति होवे हे. या अवस्थामें आधिदैविक ज्ञान याकु होवे हे तब या जीवकुं ब्रह्मरूप कहे हें. या रीतिसों आभास–प्रतिबिम्ब ब्रह्मरूपत्वादिबोधक वाक्य जीवमेंचरितार्थ होवे हें. लोकमें जेसे मायिक आभास–प्रतिबिम्ब होवे हे वेसो जीव नहीं हे. जीवकु यदि वेसो मानोगे तो जीवकु मिथ्या माननो पड़ेगो. मायावादी विना अन्य कोईको भी एसो मन्तव्य नहीं हे. ये मिथ्यावाद युक्तिविरूद्ध हे.

मिथ्यावादं युक्तिबाधितमेव दूषयति मायाजवनिकाच्छन्नम् इति.

मायाजवनिकाच्छन्नं नान्यथा प्रतिबिम्बते।।

अवश्यं प्रतिबिम्बसिद्ध्यर्थं व्यवधानं कल्पनीयम्. तन् मायादिकमेव भवतीति मायाजवनिकाच्छन्नं न प्रतिबिम्बते, यथा तिरस्करिण्यां विद्यमानायां पुरुषो न प्रतिबिम्बते.

'मायाजवनिका' या अंशको व्याख्यान कियो जाय हे. प्रतिबिम्ब सिद्ध होयवेके अर्थ कछु व्यवधान अर्थात् आकाशादिकन् करिके कछुक अन्तराय अवश्य माननो चहिये. जेसे मुख तथा दर्पणके बीचमें आकाशको व्यवधान अवश्य राखनो पडे हे एसे सृष्टिके पहिले आकाश नहीं प्रकट भयो तब कायको व्यवधान हतो? यदि मायाको ही व्यवधान मानोगे तो प्रतिबिम्ब पड़नो ही असम्भव होयगो. क्योंके माया तो ब्रह्मके स्वरूपकी छिपायवे वारी तिरस्करिणी-टेराके समान हे. जेसे मुख ओर काचके बीचमें टेरा आय जावे तो मुखको प्रतिबिम्ब नहीं पडे हे एसे ही मायाको व्यवधान होयवेसों ब्रह्मको प्रतिबिम्ब नहीं होय सकेगो.

दूषणान्तरम् आह तत्र वृत्तेः इती.

तत्र वत्तेर् द्वासुपर्णा श्रुतेरपि विरुद्ध्यते।।

गुहां प्रविष्टावित्युक्तेर् भगवद्वचनादपि।।५८।।

यो यत्र वर्तते स तत्र न प्रतिबिम्बते. उपरिस्थितएव भ्रान्त्या प्रतीतः आकाशः प्रतिबिम्बते. वस्तुतस्तु प्रभामण्डलस्यैव रूपवतः प्रतिबिम्बः. तथा भ्रान्त्या प्रतीतनीलरूपस्यापि गन्धर्वनगरवद् वस्तुसामर्थ्यात् तथा प्रतीतिः. सर्वथा दर्पणरेखावत् तत्र विधामानं न प्रतिबिम्बते.

दूषणान्तरम् आह ''द्वा सुपर्णा श्रुतेः इति. ''तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति (मुण्ड.उप.३।१।१) इति वाक्यात् प्रतिबिम्बस्य क्रिया, बिम्बस्य च तूष्णीम्भावो विरुद्ध्यते, प्रतिबिम्बक्रियायाः बिम्बाधीनत्वात्, एकत्रास्थितेश्च. श्रुत्या च तथा बोध्यतइति प्रतिबिम्बकल्पना श्रुतिविरुद्धा.

न्यायविरोधम् आह गुहां प्रविष्टौ इति. ''गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'' (ब्रह्मसूत्र१।२।११). स्मृतिविरोधम् आह भगवद्वचनादपि इति. ''ममैवांशो जीवलोके'' (भग.गीता१५।७) इति. ''उत्क्रामन्तं स्थितं वापि'' (भग.गीता१५।१०) इति च।।५८।।

द्वितीय दूषण ये हे के जो पदार्थ जा पदार्थमें सदा रहेतो होय वा पदार्थको प्रतिबिम्ब नहीं होय हे, जेसे काचकी खुदी रेखाको वाही काचमें प्रतिबिम्ब नहीं पड़े हे. ब्रह्म तो व्यापक हे, सब ही पदार्थन्में सदा ही रहे हे. तासों वाको कोई पदार्थमें भी प्रतिबिम्ब नहीं पड सके हे. यदि कहोगे के आकाश भी व्यापक हे तोहु वाको प्रतिबिम्ब जलादिकन्में केसे पड़े हे? ताको ये उत्तर हे:आकाशको प्रतिबिम्ब नहीं पडे हे किन्तु रूपवान् प्रभामण्डलको ही जलादिकन्में प्रतिबिम्ब पडे हे क्योंके आकाशमें रूप नहीं हे. प्रतिबिम्बमें जो नीलरूप दीखे हे वामें आकाशके प्रतिबिम्बकी प्रतीतिकु तो भ्रमरूप ही जाननो. वस्तुस्वभाव करिके नीलरूप प्रतिबिम्बित हे एसी प्रतीति हो जावे हे. तुमारे मतमें ब्रह्म रूपादि रहित हे तासों ब्रह्मको प्रतिबिम्ब नहीं होय सके हे. यदि रूप रहित वस्तुको भी प्रतिबिम्ब होतो होय तो वायुको भी प्रतिबिम्ब होनो चहिये

सारांश ये भयो के चक्षु करिके देखिवे योग्य होय ओर अव्याप्यवृत्ति होय वा पदार्थको ही प्रतिबिम्ब होय हे. अर्थात् जो वस्तु चक्षुद्वारा नहीं देखिवे योग्य हे ओर व्याप्यवृत्ति हे अर्थात् व्याप्य-पदार्थमें रहे हे वाको उन व्याप्य-पदार्थन्में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सके हे. यद्यपि भगवान्के नेत्र देखि सके हें परन्तु आपुन्को अपनो स्वरूप दिखायवेकी भगवान्की इच्छा होय तबहि देखि सके हे, नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कु नहीं देखि सके हें. तासों भगवान् चक्षुर्योग्य नहीं हें. तुम तो ब्रह्मकु निर्धर्मक मानो हो, निर्धर्मक पदार्थको प्रतिबिम्ब नहीं हो सके हे तासों ब्रह्मको प्रतिबिम्ब पडनो सर्वथा असम्भव ही हे.

अन्य दूषण कहे हें ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ'' (मुण्ड.उप.३।१।१) या श्रुतिमें जीव-परमात्मा दोउ एक वृक्षपे बेठे हें. जीव वा वृक्षके फलको भोग करे हे, परमात्मा नहीं करे हे ये बात लिखी हे. जीव यदि परमात्माको प्रतिबिम्ब ही होय तो परमात्माके फलभोग करे विना जीवात्मा केसे फलभोग कर सके, क्योंकी प्रतिबिम्बकी क्रिया बिम्बके आधीन रहे हे. लोकमें भी देवदत्तके भोजन्करे विना देवदत्तके प्रतिबिम्बमें भोजन करिवेकी चेष्टा नहीं प्रतीत होवे हे. ओर बिम्ब-प्रतिबिम्ब दोनों एक देशमें भी नहीं रहि सके हें, क्योंके प्रतिबिम्ब काचमें रहे हे, वहां मुख नहीं रहे हे. जीव यदि प्रतिबिम्बरूप होय तो परमात्माको एक वृक्षपें जीवके साथ रहनो श्रुति नहीं वर्णन करती. एक शरीररूप वृक्षमें भी एकही देशमें जीव ओर अन्तर्यामी रहे हें. ''गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'' (ब्रह्मसूत्र१।२।११) या व्याससूत्रमें एक ही हृदयरूप गुफामें जीव-ब्रह्मकी स्थिति लिखी हे. एवञ्च, मुख्य स्मृति गीताजीमें ''ममैवांशो जीवलोके'' (भग.गीता.१५।७) या श्लोकमें जीव मेरो सनातन अंश हे ये लिख्यो हे. तथा ''उत्क्रामन्तं स्थितं वापि'' (भग.गीता.१५।१०) या श्लोकमें निकसते भये जीवकु ज्ञानद्रष्टि वारे देखे हें ये लिख्यो हे. जीवकु लौकिक प्रतिबिम्बरूप मानोगे तो अंशत्व तथा उत्क्रमणक्रिया-निकसनो नहीं बन सकेगो तासों प्रतिबिम्बपक्ष श्रुति-स्मृति-न्यायसों विरुद्ध हे।।५८।।

एवं प्रमाणै: बाधित्वा युक्तिभि: बाध्यते जीवहानि: इति द्वाभ्याम्.

या प्रकारसों वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता तथा भागवत रूप शब्दप्रमाण द्वारा जीवकुं प्रतिबिम्बरूप मानवेके मायावादाभिमत सिद्धान्तको बाध होवे हे ये दिखायके अब ये दिखाय रहे हें के युक्तिन्सों भी जीवकु प्रतिबिम्ब मानवेको सिद्धान्त बाधित हे.

जीवहानिस्तदा मुक्तिर् जीवन्मुक्तिर् विरुद्ध्यते।।
लिङ्गस्य विद्यमानत्वाद् अविद्यायां ततोऽपि हि।।५९।।

प्रतिबिम्बपक्षे जीवहानि: मुक्तिः स्यात्. आत्महानम् अपुरुषार्थइति मोक्षस्य अपुरुषार्थत्वम् आपद्यते, अलीकता वा असुरब्रह्मविद्यायां स्थापिता. दूषणान्तरम् आह जीवन्मुक्तिर्विरुद्ध्यते इति. तत्र हेतु: ''लिङ्गस्य विद्यमानत्वाद्'' इति. क्व प्रतिबिम्बते इति वक्तव्यम्, अन्त:करणे अविद्यायां वा? उभयो: अशुद्धत्वात् प्रतिबिम्बएव न उपपद्यते. अस्तु वा तथापि लिङ्गपक्षे उपाधे: विद्यमानत्वात् संसारएव, तदभावे परममुक्तिरेव, नतु कथञ्चित् जीवन्मुक्ति: इति अर्थ:. ततोऽपि अविद्यायां प्रतिबिम्बो विरुद्ध्यते इति आह अविद्यायाम् इति।।५९।।

या श्लोकमें प्रतिबिम्बादिपक्षन्को युक्तिसों खण्डन करे हें. जीवकुं प्रतिबिम्बरूप मानोगे तब तो जीवात्माको सर्वथा नाश हो जानों ही तुमारे मतमें मुक्ति भई. आत्माहानि अपुरुषार्थ हे. मोक्षकुं पुरुषार्थता नहीं भई. आसुर ब्रह्मविद्यामें अर्थात् नास्तिक चार्वाकादिकन्के मतमें आत्माकुं मिथ्या माने हे तेसो ही तुमारो पक्ष भयो. दूसरो दूषण ये हे के तुमारे पक्षमें जीवन्मुक्ति कछु पदार्थ नहीं भइ. क्योंके तुमारे मतमें अन्त:करणमें अथवा अविधामें ईश्वरप्रतिबिम्बको नाम 'जीव' भयो. जहां तांई अविद्या वा अन्त:करणमें विधमान रहेगी तहां तांई संसार ही हे. जब अविधाको वा अन्त:करणमेंसों सर्वथा नाश होयगो तब जीव परममुक्त ही हो जायगो, जीवन्मुक्त कोई भी जीवात्मा नहीं होयगो. तब तो वामदेव आदिकन्कुं वेदमें, शुकदेव आदिकन्कुं पुराणमें जीवन्मुक्त कहे हें सो सब मिथ्या ही होयगो.

हमारे भगवत्सिद्धान्तमें तो जीवकुं भगवान्को अंश माने हें. तासों जहां तक जीव अविद्याके आधीन रहे हे तहां तक संसारी कहावे हे. जब जीव अविधाके आधीन नहीं रहे तथा जेसें दिनमें निद्रा अपने कारणमें लीन रहे हे या प्रकार वा जीवकी अविधा अपने कारणमें लीन रही आवे तब वो जीवन्मुक्त कहावे हे।।५९।।

अथ जीवन्मुक्तो मुक्तएव इति चेत् तत्र आह अधिष्ठातुर्विनष्टत्वाद्इति.
अधिष्ठातुर् विनष्टत्वात् न देहः स्पन्दितुं क्षमः।।

देह: सपन्दितुं चलितुं न समर्थ:स्यात्.

''दैवादुपेतमुत दैववशादपेतम्'' (भाग.पुरा.११।१३।३६) इति न्यायेन चलति, इति चेत्, तत्र आह प्रारब्धमात्रशेषत्व इति.

प्रारब्धमात्रशेषत्वे सुषुप्तस्येव न व्रजेत्।।६०।।

तत्र अधिष्ठाता वर्ततएव परं न अनुसन्धत्ते. प्रारब्धं देहविद्यमानतामेव सम्पादयति न अधिकं भोजानादिकार्यं, सुषुप्तौ तथोपलम्भात्. तस्मात् जीवो न आभासो, न वा प्रतिबिम्ब:।।६०।।

यदि जीवन्मुक्त हे सो मुक्त ही हे, जीवन्मुक्ति कोई अलग पदार्थ नहीं हे एसें कहोगे तो मुक्त दशामें जा प्रकार अधिष्ठाता जीवको नाश मानो हो तेसें जीवन्मुक्तके जीवात्माको भी नाश माननो पडेगो. तब तो जीवन्मुक्तको देह चलवेकुं समर्थ नहीं होनो चहिये. शास्त्रमें शुकादिकन्की देहको चलनो प्रसिद्ध हे. कदाचित् कहोगे के अधिष्ठाता जीवात्मा नहीं रहे तासों कहा भयो, प्रारब्ध कर्मन्के द्वारा जीवन्मुक्तकी देह चले हे, ताको ये उत्तर हे कि प्रारब्धकर्म देहकुं विद्यमान तो राख सके हे परन्तु देहकुं चलाय देनों अथवा भोजनादि कार्य करवाय देनें ये प्रारब्धकी सामर्थ्य नहीं हे. प्रारब्धकी यदि ये साम्थर्य होय तो सुषुप्त अवस्थामें सोते भये मनुष्यकुं प्रारब्ध क्यों नहीं चलाय सके हे? तासों जीवन्मुक्तकी देहमें अधिष्ठाता आत्मा अवश्य रहे हे. देहादिकन्में, परन्तु, अध्यास नहीं रहे हे यासुं वाकुं अनुसन्धान नहीं रहे हे. इतने विस्तार करिके जीव आभासरूप वा प्रतिबिम्बरूप नहीं हे ये बात सिद्ध भई।।६०।।

ननु जीवब्रह्मणो: ऐक्यान्यथानुपपत्त्या ''तत्त्वमसि'' (छान्दो.उप.६।८।७) इत्यादिवाक्यानुरोधेन बिम्ब-प्रतिबिम्बयो: ऐक्यं युक्तमिति तथात्वं कल्प्यते इति आशङ्कां तिरस्कुर्वन् ''तत्वमसि'' इति वाक्यं न महावाक्यम् इति आह तत्वमसि इति.

तत्वमस्यादिवाक्यस्य शोधितस्यापि युक्तित:।।
न विद्याजनने शक्ति: अन्यार्थं तच्च कीर्तितम्।।६१।।

इदं वाक्यं श्वेतकेतूपाख्याने वर्तते. तत्र उपक्रमे ''अपि वा तमादेशमप्राक्षो, येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' (छान्दो.उप.६।१।२-३) इत्यादिना एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातम्. तदेकमेव चेत् सर्वं सुवर्णखण्डा: सुवर्णकार्यञ्च सर्वं सुवर्णमिति सुवर्णज्ञाने तज्ज्ञानं भवति. तदर्थं ''सदेव सौम्य'' (तत्रैव६।२।१) इत्यारभ्य निरूपितम्. ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्'' (तत्रैव६।८।७) इति जडस्य सर्वस्यापि तदात्मकत्वम् उक्तम्. जडगतदोषाश्च तत्र परिहृता: ''तत् सत्यम्'' (तत्रैव) इति. पूर्वात्तरयो: जड-जीवयो: सदात्मकत्वे, मध्ये हेतुम् आह ''स आत्मा'' (तत्रैव) इति. एवं जडस्य तदात्मकत्वम् उक्त्वा जीवस्यापि आह ''तत्त्वमसि'' (तत्रैव) इति. उपदेशश्च अयम्, ''आवृत्तिरसकृदुपदेशात्'' (ब्रह्मसूत्र४।१।१) इति ब्रह्मसूत्रात्. अत: सम्पूर्णं महावाक्यम् उपदेश:. तत्र यथा ''ऐतदात्म्यम्'' (तत्रैव) इत्यत्र न भागत्यागलक्षणा सदंशे तथा उत्तरत्रापि चिदंशे अवगन्तव्यम्. नापि श्वेतकेतु: अवतार:, पूर्वं स्तब्धत्वादिदोषकीर्त्तनाद् विरोधाच्च. अतो ब्रह्मवाक्यत्वात् तदेकदेश: ''तत्वमसि'' इति जीव-ब्रह्मणो: ऐक्यं न बोधयति, वाक्यभेदप्रसङ्गाद् उपक्रमविरोधाच्च. केचिद् अष्टपदानि महावाक्यम् इति आहु:, तदपि तथा. ''अतत्वमसि'' इति छेदस्तु न वैदिकानां सम्मत:. अतो न अस्य विद्याजनने शक्ति:, अन्यार्थकीर्तनात्।।६१।।

कितनेक वादी ''तत्वमसि'' महावाक्यके अनुसार ब्रह्म-जीवकी एकता करिवेके अर्थ बिम्ब-प्रतिबिम्बकुं एक मानके, या दृष्टान्तसों ब्रह्मकुं बिम्ब तथा जीवकुं प्रतिबिम्बरूप मानके जीव-ब्रह्म इन दोनोन्कुं एक माने हें. उनके मतको निराकण करे हें.

''तत्वमसि'' इतनोंसो वाक्य महावाक्य नहीं हे. क्योंके ये वाक्य श्वेतकेतूपाख्यानको हे जाके उपक्रममें एक पदार्थके ज्ञान होयवेंसो सब पदार्थको ज्ञान होवे हे एसी प्रतिज्ञा हे. ये बात तब बन सके जब एक पदार्थ सबरूप हो रह्यो होवे. जेसे

सुवर्णपिण्ड कण्ठा, कुण्डल, मुद्रिका आदि अनेक रूप हो जावे हे तो सुवर्णके ज्ञानमात्रसों सुवर्णनिर्मित सब आभूषण–पात्रादिकन्को अपने आप ही ज्ञान होय जाय हे. या तरेहसुं सब जगतको ज्ञान करायवेके अर्थ ''सदेव सोम्य'' इत्यादी निरूपण कियो. ताके आगे ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्'' या वाक्यसों मात्र जड़ पदार्थन्के साथ ब्रह्मको तादात्म्यसम्बन्ध बतायो. अर्थात् जड़ पदार्थ ब्रह्मात्मक हे ये बात सिद्ध करी. तहां ये शङ्का भई जो जड़ पदार्थ ब्रह्मात्मक केसे होय सके हे, जड़ पदार्थ तो विनाश वारे होयवसों असत्य मालुम पडे हे. या शङ्काके दुर करिवेके अर्थ ''तत् सत्यम्'' ये पद कहे हें. या करिके कार्यको सत्यत्व कहिके, सर्वदा कार्यकी सत्ता जताई. तथा विनाशादिक प्रतीत होवे हें वे सब पदार्थके स्वरूपान्तर ही हें. या प्रकार छे भावविकारन्को परिहार कियो. तथापि जगत् ब्रह्मात्मक नहीं भयो क्योंके जड–जीव इन दोउ पदार्थन्को नाम 'जगत्' हे. तासों जडकुं ब्रह्मात्मकता सिद्ध करिकें जीवकी भी ब्रह्मात्मकता सिद्ध करिवेके अर्थ ''तत्वमसि'' ये वाक्य कह्यो हे. भावार्थ: या वाक्यसों जीवके साथ तादात्म्य सम्बन्ध ब्रह्मको बतायो हे. हे श्वेतकेतु तु 'तत्' ब्रह्मको भावरूप हे, अर्थात् ब्रह्मात्मक हे. अर्थात् जड़ पदार्थ ब्रह्मको कार्य हे तासों ब्रह्मात्मक हे एसे ही जीव ब्रह्मको अंश हे तासों ब्रह्मात्मक हे. कार्य जेसे कारणसु जुदो नहीं होय हे एसें अंश अपने अंशीसों जुदो नहीं होय हे.

अब ये शङ्का भई के जड़–जीव दोनों न्यारे–न्यारे स्वभाव वारे पदार्थ हें. ये दोउ एक–एक ब्रह्मात्मक केसें होय सके हे? या शङ्काकुं दूर करिवेके अर्थ पूर्वोत्तर जड़–जीवकी ब्रह्मात्मकता सिद्ध करिवे वारो मध्यमें हेतु कहे हें ''स आत्मा'' अर्थ:वो परमेश्वर सबको आत्मा अर्थात् सबको स्वरूप हे. जेसे सोनाके बने भये दण्ड–कुण्डल–कण्ठा आदि पदार्थन्में कण्ठासों कुण्डल न्यारे मालुम पडे हें, दण्डसों कडा न्यारे मालुम पडे हें परन्तु सोनासों दण्ड–कुण्डल–कडा आदि पदार्थ न्यारे नहीं होय सके हें, क्योंके उन पदार्थन्मेंसों सोना ले लियो जाय तो उन पदार्थन्को स्वरूप भी नहीं रहि सके हे क्योंके सुवर्ण ही उन पदार्थन्को आत्मा अर्थात् स्वरूपभूत हे. याही प्रकार जड़ तथा जीव अलग–अलग दीखे हें तथापि ब्रह्म सबको आत्मा हे, बह्मसों न्यारे जड़–जीव कबहु होय नहीं सके हे. या रीतसों या महावाक्यमें जड़–जीवात्मक सब पदार्थन्की ब्रह्मरूपता सिद्ध करिकें एक ब्रह्मके ज्ञान होयवेसों सबके ज्ञान होयवेकी प्रतिज्ञा सिद्ध करी तासों केवल ''तत्वमसि'' इतनो मात्र महावाक्य नहीं हे किन्तु सोलह पदको समुदाय महावाक्यहे.

तत्–त्वम्–असि ये तीन पद मानिवेमें भी सिद्धान्तमें कछू हानि नहीं हे. या पक्षमें भी अंश–अंशीको अभेदही पूर्वोक्त रीतीसों सिद्ध होवे हे.

कितनेक मत वारे ''तत्वमसि'' यहां भागत्याग लक्षणा करे हें, सो भी पक्ष ठीक नहीं हे. जेसे सदंश जडके ब्रह्मात्मबोधक ''ऐतदात्म्यम्'' या वाक्यमें भागत्यागलक्षणा नहीं हे वा प्रकार चिदंश जीवके ब्रह्मात्मबोधक ''तत्वमसि'' या वाक्यमें भी भागत्याग लक्षणा नहीं माननी.

कितनेक माध्वमतानुयायी कहे हें कि श्वेतकेतु अवतार हतो तासों वेदमें वाके प्रति गुरुने ''तु ब्रह्म हे'' एसें ''तत्वमसि'' या वाक्यमें उपदेश कियो हे ये भी अर्थ ठीक नहीं हे. श्वेतकेतु यदि अवतार होतो तो श्रुतिमें पूर्वमें वाकी स्तब्धता, वेद पढवेको अभिमान तथा अज्ञानादि दोषन्कों श्वेतकेतुमें वर्णन नहीं होतो.

शाङ्करभाष्यमें अष्टपदको महावाक्य माने हें. वा पक्षमें भी पूर्वोक्त दूषण आवे हें.

माध्वमतके एकदेशी 'अतत्वम्' एसो पद निकासके ''हे श्वेतकेतु तुं ब्रह्म नहीं हे''एसो अर्थ करे हेंसो कोई वैदिकन्के सम्मत नहीं हे.

इतने विस्तारसों ये बात सिद्ध भई के ''तत्वमसि'' इत्यादि वाक्यकी ब्रह्माभेदको ज्ञान करिवेकी सामर्थ्य नहीं हे किन्तु ब्रह्मकी सर्वरूपता जतायवेके अर्थ वेदमें ''तत्वमसि'' इत्यादि वाक्य लिखे हें।।६१।।

तदेव आह ब्रह्मण: सर्वरूपत्वम् इति.

ब्रह्मणः सर्वरूपत्वम् अवयुज्य निरूपितम्।।

अवयुज्य जड-जीवौ पृथक्कृत्य. ''सर्वं ब्रह्म'' इति वक्तुं जीवस्य ब्रह्मता निरूपिता. ननु अस्तु वाक्यभेदः, तथा सति एतावन्मात्रं जीवस्य ब्रह्मतां बोधयति. तच्च साक्षाद् अनुपपन्नं सद् भागत्यागलक्षणया अखण्डमेव वाक्यार्थं बोधयति, इति चेत्, साधु बुद्धिमतां बकबन्धप्रयासो वृत्तः. उपदेशफलम् आयुष्मतां किं वृत्तम् इति अनुसन्धेयम्, ब्रह्मभावेन अधिकधर्माभावात्.

जड़-जीव दोउ पदार्थ परस्पर विलक्षण हें ये जतायवेके अर्थ वेदमें जड़-जीवकुं अलग-अलग दिखाये परन्तु परस्पर जड़-जीव भिन्न हें तथापि ब्रह्मसों भिन्न नहीं हे ये जतायवेके अर्थ जीवकी ब्रह्मात्मकता दिखाई हे. सम्पूर्ण वाक्य तो ब्रह्मकी सर्वरूपता सिद्ध करिवेके अर्थ वेदमें निरूपण कियो हे.

कितनेक आग्रही मायावादी वाक्यभेदकुं मान करिकें भागत्याग लक्षणाकुं भी अङ्गीकार करकें, तथा शब्दकु साक्षात् ज्ञान करायवे वारो मान करके ''तत्वमसि'' इतनेंसे वाक्यकुं साक्षात् ब्रह्मको अनुभव करायवे वारो माने हें. तहां उन वादिन्सों पूछनो चहिये के एसो मानिवेसों वादिन्को कहा लाभ भयो? क्योंके ''तत्वमसि'' या उपदेशसों कोइकु भी साक्षात् ब्रह्मज्ञान नहीं होतो दीखे हे. उपदेश भये पीछे भी वा जीवमें सर्वज्ञता आदि अधिक ब्रह्मधर्म कुछ मालुम नहीं पड़े हे, तासों याकु महावाक्य मानवेको प्रयास व्यर्थ ही हे.

कदाचित् कहोगे के जा जीवकु एसो उपदेश हो जायगो वो जीव आपुन्को संसारसों तो जुदो मानेगो. तो संसार ही दोषरूप हे. वासों निवृत्त हो जानो ये ही लाभ होयगो. याको ये उत्तर हे के संसारसों निवृत्ति तो सांख्यशास्त्रद्वारा भी होय सके हे. क्योंके सांख्यमें भी सब देहादि पदार्थन्सों आत्माकों अलग मान्यो हे. तासों प्रकरणभेद मानके याकुं महावाक्य मानवेको तुमारो श्रम वृथा ही हे.

देहादिभेदबोधनेनापि दोषनिराकरणसम्भवाच्च. ततो व्यर्थः प्रकरणभेदमपि अङ्गीकृत्य महावाक्यत्वेन उपदेशप्रयासः.

तर्हि श्रुतिः कथम् उपदिशति? इति चेत्, तत्र आह अलौकिकं तत्प्रमेयम् इति.

अलौकिकं तत्प्रमेयं न युक्त्या प्रतिपद्यते।।६२।।

लौकिकं हि लोकयुक्त्या अवगम्यते, ब्रह्म तु वैदिकम्. वेदप्रतिपादितार्थबोधो न शब्दसाधारणविद्यया भवति किन्तु अन्यत् साधनम् अस्ति इति आह तपसा इति.

कदाचित् कहोगे के तब श्रुति अभेदको उपदेश क्यों कर रही हे? ताको ये उत्तर हे. जेसें ''तत्वमति''श्रुति अभेदको उपदेश कर रही हे तेसें ''तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व''(तैत्ति.उप.३।२) ''धातुः प्रसादान् महिमानमीशम्'' (महाना.उप.१०।१) इत्यादि श्रुति तपश्चर्या तथा भगवत्कृपा आदिसों ब्रह्म जान्यो जाय हे ये भी तो कह रही हे. तासों सब श्रुतिन्की एकवाक्यता करिवेसों ये बात सिद्ध होय हे के ब्रह्मको स्वरूप लौकिक युक्तिन्सों नहीं जान्यो जाय हे, क्योंके ब्रह्म तो वेदसोंही जान्यो जाय हे. ओर वेदके अर्थको बोध लौकिक युक्ति अथवा केवल व्याकरणादिकन् करिपे नहीं होय सके हे. वेदार्थ जानिवेके उपाय अन्य हु हें, उनको निरूपण आगेके श्लोकमें करेंगे।।६२।।

तपसा वेदयुक्त्या च प्रसादात् परमात्मनः।।

विद्यां प्राप्नोत्युरुक्लेशः क्वचित् सत्ययुगे पुमान्।।६३।।

तपः पूर्वाङ्गं, वेदयुक्तिः सहकारिणी, भगवत्प्रसादो मुख्यं कारणम्. क्वचिद् देशविशेषे. सत्ययुगे काले. पञ्चाङ्गसम्पत्तौ वाक्यार्थबोधो भवति, अन्यथा ''कं ब्रह्म, खं ब्रह्म'' (छान्दो.उप.४।१०।५) इति उपाख्याने कथम् उपदेशमात्रेणैव बोधः, कथम् इदानीन्तनानां न बोधः।।६३।।

वेदार्थज्ञान पांच साधन होंय तब ही ठीक तरेहसुं होवे हे, तप हे सो प्रथम साधन हे. द्वितीय साधन वेदमें ब्रह्मज्ञान करायवेके अर्थ युक्तियें लिखी हे उन युक्तिन्को ज्ञान होनो चाहिये. तीसरो साधन भगवत्कृपा होनी चाहिये, ये मुख्य कारण हे. चतुर्थसाधन देश अच्छो होनो चहिये. पांचवो साधन काल अच्छो होनो चहिये, जेसें सत्ययुग. या प्रकार पांच अङ्ग जब मिल जावें तब वेदवाक्यन्को अर्थ जान्यो जाय हे. तदुपरान्त वेदमें इन्द्र-प्रजापतिके संवादमें सो वर्ष ब्रह्मचर्य राखनो लिख्यो हे. या प्रकार बहुत श्रमसों वेदार्थज्ञान होवे हे. विना साधन यदि वेदके वाक्यन्को अर्थज्ञान हो जातो होय तो ''कं ब्रह्मेत्युपासीत खं ब्रह्मेत्युपासीत'' (छान्दो.उप.४।१०।५) अर्थ:कं ब्रह्म हे एसे उपासना करनी, खं ब्रह्म हे एसे उपासना करनी इत्यादि श्रुतिन्के उपदेश करिकें हि साधन हीन अभीके मनुष्यन्कुं ज्ञानसिद्धि क्यों नहीं होय जावे हे? तथा सत्ययुगादिकन्में जिनके सब साधन सिद्ध हते उनकुं उपदेशमात्र करिकेहीं कैसे ज्ञान हो जातो हतो?।।६३।।

इदानीन्तनानामपि बोध:, इति चेत्, तत्र आह सर्वज्ञत्वञ्च इति.

सर्वज्ञत्वं च तस्येष्टं लिङ्गं तेजोऽप्यलौकिकम्।।

तत्प्राप्तावपि नो मुक्तिर् जाग्रत्स्वप्नवदुद्भवः।।

अविद्याविद्ययोस्तस्माद् भजनं सर्वथा मतम्।।६४।।

स्वार्थं सर्वज्ञत्वं लिङ्गं, परार्थम् अलौकिकं तेज: इति. ननु तथापि वाक्यार्थज्ञानएव ईश्वरप्रसादादे: भक्तेश्च उपयोग: उक्त: इति चेत्, तत्र आह तत्प्राप्तावपि नो मुक्ति: इति. उपनिषद्भि: महावाक्यार्थविद्याप्राप्तावपि ब्रह्मभावः सायुज्यं वा न तस्य द्रष्टान्तेन तथाभावस्य कालपरिच्छेदात्. यथा जागरण-स्वप्नौ परस्परोपमर्दनेन आविर्भवत: तिरोभवतश्च, तथैव विद्याऽविद्ये. अतो विद्योपमर्दनेन अविद्या पुन: आविर्भविष्यतीति व्यर्थः प्रयासः. तस्मात् स्वतन्त्रभक्त्यर्थं सायुज्यार्थञ्च सर्वथा भजनं मतम्।।६४।।

कदाचित् कहोगे के अभीके मनुष्यन्कुं ज्ञान नहीं होवे हे ये बात केसे मालुम पडी? ताको ये उत्तर हे. सर्वज्ञ हो जानो तथा अलौकिक तेज हो जानो ज्ञान होयवेको लक्षण हे. अभी वेद पढवे वारेन्में सर्वज्ञता तथा अलौकिक तेज कछु भी नहीं होय हे. तासों अभीके मनुष्यन्कुं वेदार्थको बोध नहीं होय हे ये निश्चय भयो.

आशङ्का : वेदार्थके ज्ञान होयवेमें भगवत्कृपा कारण हे ओर भगवत्कृपा भक्ति होय तब होय. या रीतिसों ब्रह्मके साथ अभेदको ज्ञान होयवेमें भक्तिको उपयोग भयो. अर्थात् भगवदनुग्रह तथा भक्ति को उपयोग भी वैदिक वाक्यन्के अर्थके ज्ञानमें ही हे या प्रकारकी शङ्का होती होय तो वाके समाधानमें कहे हें:

उत्तर : भगवत्कृपासों उपनिषदन् करिके महावाक्यार्थ विद्याकी प्राप्ति भये पीछे भी अर्थात् वेदोक्त ज्ञान भये पीछे भी अधिकारके अनुसार सायुज्यमुक्ति अथवा ब्रह्मभाव प्राप्त होयवेके अर्थ भक्ति अवश्य करनी चहिये, क्योंके ज्ञानको तिरोभाव होयके अज्ञान प्रकट हो जाय तो ज्ञानके अर्थ कियो भयो परिश्रम व्यर्थ होय जाय. जेसे सतोगुणके उदय होते ही मनुष्य जाग जाय हें, तमोगुणके उदय होते ही सो जाय हें, तेसें ही सतोगुणके उदयसों ज्ञान हो जाय हे, तमोगुणके उदयसों अज्ञान हो जाय हे. भक्तिसों तो ज्ञान-अज्ञान (विद्याअविद्या) के कारणभूत मायाकी भी निवृत्ति हो जाय हे ''मायामेतां तरन्ति ते'' (भग.गीता७।१४) एसे या वाक्यमें स्पष्ट लिख्यो हे. तासों ज्ञानीकुं तथा अज्ञानीकुं स्वतन्त्रभक्ति सिद्ध होयवेके अर्थ तथा

सायुज्य–ब्रह्मभावके अर्थ अवश्य भगवद्भक्ति करनी चाहिये. या प्रकार जीव प्रकरणकुं समाप्त करिकें परब्रह्मको निरूपण करे हें।।६४।।

ब्रह्मप्रकरण

एवं जीवप्रकरणं समाप्य ब्रह्मप्रकरणम् आह सच्चिदानन्दरूपम्इति.

सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम्।।
सर्वशक्तिस्वतन्त्रं च सर्वज्ञं गुणवर्जितम्।।६५।।

'ब्रह्म' इति धर्मिनिर्देश: परब्रह्मवाचक:. ब्रह्मपदार्थम् आह व्यापकम् इति. गुणोपसंहारन्यायेन. ''अविनाशी वा रे अयमात्माऽनुच्छित्ति धर्मा'' (बृहदा.उप.४।५।१४) इति श्रुते: तद् अव्ययम्. ''य: सर्वज्ञ: सर्वशक्ति:'' (मुण्ड.उप.१।१।९) इति श्रुते: सर्वशक्ति. निर्धर्मकत्वे सर्वेषम् अनुपास्यो अप्राप्यो अफलश्च स्यात्. अतएव स्वतन्त्र:. यो हि निरवधिज्ञान-क्रियाशक्तियुक्त: स स्वतन्त्रो भवति. 'च'कारत् ''सर्वस्य वशी सर्वस्येशान:'' (बृहदा.उप.४।४।२२) इति श्रुते: सर्वं वशे समानयति. गुणवर्जितं प्राकृतगुणरहितम्. एवं षड् धर्मा: निरूपिता:।।६५।।

ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप हे, व्यापक हे, यासों अखण्ड ऐश्वर्य वारो हे ये बात जताई. श्रुतिन्में ब्रह्मके परस्पर विरुद्ध अनेक धर्म लिखे हें. ब्रह्म जेसें छोटेसो छोटो हे तथा बडेसों भी बडो हे इत्यादिक. परन्तु उन धर्मन्के अर्थ न्यारे-न्यारे माने जांय तो ब्रह्म अनेक हो जाय हे तासों उन सब गुणन्को एक ब्रह्ममें ही उपसंहार माननो पडे हे. ''ब्रह्म अविनाशी हे'' यों कहिके ब्रह्म वीर्य वारो हे ये बात जताई. तथा ''सर्वशक्ति हे'' अर्थात् सब प्रकारकी सामर्थय वारो हे यों कहिके यश वारो हे ये बात जताई. ''स्वतन्त्र हे'' अर्थात् जाकी ज्ञान-क्रियाकी अवधि नहीं होय हे वो ही स्वतन्त्र कहावे हे यों कहिके ब्रह्म श्री वारो हे ये बात सिद्ध भई. ''सर्वज्ञ हे'' सब पदार्थन्कुं जाने हे यों कहिके ब्रह्म ज्ञान वारो हे ये बात जताई. ''प्राकृत गुणन् करिके रहित हे'', अर्थात् प्रकृतिके गुणन्में आपकी आसक्ति नहीं हे यों कहिके पूर्ण वैराग्य जतायो. या प्रकार परब्रह्मके छे धर्म दिखाये.

ब्रह्मकुं यदि निर्धर्मक-निराकार मानोगे तो कोई भी मनुष्य ब्रह्मकी उपासना नहीं कर सकेगो. तथा उपासना प्रकरणके वेदभागमें ''एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर् विश्वरूपः'' इत्यादिक वाक्यन्में जो वैश्वानरको मूर्द्धा सुतेजा हे, चक्षु विश्वरूप हे इत्यादि धर्म दिखायके उपासना करनो कह्यो हे सो सब व्यर्थ जायगो. निराकार होयवेके कारण कोई ब्रह्मकी उपासना नहीं कर सकेगो तो जीवकुं ब्रह्मकी प्राप्ति भी नहीं होय सकेगी, तथा जीवन्कुं परब्रह्म कुछ फल भी नहीं दे सकेगो. धर्म-रहित-निराकार ईश्वरकुं मानोगे तो ''सर्वस्येशानः'' (बृहदा.उप.४।४।२२) या श्रुतिमें ईश्वर सबको स्वामी हे ये बात लिखी हे सो भी नहीं बन सकेगी. तासों श्रुतिके कहे भये सब धर्म ब्रह्ममें हें तथा जिन धर्मन्की श्रुतिमें नाईं करि राखी हे विन धर्मन्कुं लौकिकधर्म जानने. वेद परम आप्त हे, अपने कहे भये धर्मन्कों अपने ही वाक्यन्सों निषेध कभी नहीं करे हे, क्योंके एक वार कहिके फेरि नट जानो मिथ्यावादीको काम हे।।६५।।

तत्र व्यापकत्वं नाम देशाद्यपरिच्छिन्नत्वम्, तद् वस्तुपरिच्छेदेन उपपद्यतइति त्रितयपरिच्छेदाभावाय आह सजातीय इति.

सजातीय-विजातीय-स्वगतद्वैतवर्जितम्।।

सजातीया: जीवा:, विजातिया: जडा:, स्वगता: अन्तर्यामिण:. त्रिष्वपि भगवान् अनुस्यूत:. त्रिरूपश्च भवतीति तै: निरूपितं द्वैतं भेद: तद् वर्जितम्. अत्र बुद्धि: अवतारेष्विव कर्तव्या.

एवं भगवत्त्वम् उपपाद्य तन्त्रोक्तान् गुणान् आह सत्यादिगुणसाहस्रै: इति.

सत्यादिगुणसाहस्रैर् युक्तमौत्पत्तिकैः सदा।।६६।।

''सत्यं शौचं दया क्षान्तिः'' (भाग.पुरा.१।१६।२६) इत्यादिश्लोके सत्यादयो गुणाः निरूपिताः. ते च औत्पत्तिकाः. सदा सृष्टिप्रलयादावपि।।६६।।

ब्रह्म हे सो व्यापक हे, अर्थात् देश-काल-वस्तु करिकें जाको नाप-तोल नहीं होय सके वा पदार्थको 'व्यापक' कहे हे. जहां तांई नाप-तोल करिवे वारो पदार्थ अलग होय तहां तांई व्यापकता नहीं होय सके. ब्रह्मसों भिन्न तो कोई भी पदार्थ नहीं हे, क्योंके जगतमें जड़-जीव-अन्तर्यामी ये तीन पदार्थ हें. भगवान्नें इच्छा करिकें चैतन्य-आनन्द छिपाय लीनों तब विजातीय जड़पदार्थ प्रकट भये. जब आनन्द छिपाय लीनो तब सजातीय जीव प्रकट भये. जब आपने सत्-चित्-आनन्द तीनों अंशन्कों प्रकट राखिके परिछिन्न रूपसों अर्थात् परिमाणवाले रूपसों नियतकार्य करिवेके अर्थ इच्छा करी तब स्वगत अन्तर्यामी प्रकट भये. इन तीनों ही पदार्थन्में भगवान् अनुस्यूत हें, अर्थात् जडमें सद्रूप करिकें विराजे हें, चिद्रूप करिकें जीवमें विराजे हें, तथा प्रकट आनन्दरूप करिके अन्तर्यामीमें विराजे हें. जड-जीव-अन्तर्यामीरूप आपही होय रहे हें तासों इन तीनों पदार्थन्को भेद आपमें नहीं हे. अर्थात् ये तीनों पदार्थ भगवान्सों न्यारे हें एसी बुद्धि नहीं राखनी. जेसें भगवान्के अवतारन्कों भगवान्सों अलग नहीं माने हें तेसे जड-जीव-अन्तर्यामीकुं भी भगवान्सों न्यारे नहीं मानने. क्योंके वेदमें ''उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति'' (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादि श्रुतिन्में भगवान्सों अलग कोई पदार्थकुं माने हे वाकुं भय होय हे ये बात लिखी हे.

सत्य, दया आदि हजारन् गुण आपमें सदा ही रहे हें. अर्थात् सृष्टिकालमें, प्रलयकालमें तथा अवतारदशामें ये गुण जेसे-के-तेसे रहे आवे हें. तिनमेंसो कितनेक गुण श्रीभागवतमें वर्णन किये हें उनके नाम वर्णन करे हें: सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, दान, सन्तोष, सरलता, शम, दम, समता, तप, (तितिक्षा) अपराध सह लेनो, उपराम, (श्रुत) शास्त्रकुं विचारनो, स्वरूपज्ञान, वैराग्य, ईश्वरता, शूरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, क्रियाकुशलता, कान्ति, धीरता, कोमलता, बुद्धिवैभव, विनय, सुस्वभाव, इन्द्रिय-मन-शरीरकी सुन्दरता, भोगकी योग्यता, गम्भीरता, स्थिरता, श्रद्धा, पूज्यता, निरहङ्कारता इत्यादि (भाग.पुरा.१।१६।२६-२९) अनन्तगुण अवतारमें भी आपके सङ्ग ही प्रकट होवे हें।।६६।।

पुनः श्रुत्युक्तान् गुणान् उपसंहरति पूर्वोक्तानां वैदिकत्वाय सर्वाधारम् इति.

सर्वाधारं वश्यमायम् आनन्दाकारमुत्तमम्।।
प्रापञ्चिकपदार्थानां सर्वेषां तद्विलक्षणम्।।६७।।

''सेतुर्विधरणम्'' (बृहदा.उप.४।४।२२) इति श्रुतेः. गीतायां मायासम्बन्धस्य उक्तत्वात्, मायाधीनो भवेद् इति आशङ्क्य आह वश्यमायम् इति. साकारताम् आह आनन्दाकारम् इति. उत्तमम् अक्षरादपि. यद्यपि कारणधर्माएव कार्ये भवन्ति तथापि कार्यगतत्वेन अन्यथाप्रतीतिः. तद् व्यावृत्त्यर्थम् आह प्रापञ्चिकपदार्थानाम् इति।।६७।।

आप अनन्तगुणके आधार हे, यामें कहा आश्चर्य हे, किन्तु वेदमें ''स सेतुर्विधरणः'' इत्यादि श्रुतिन्में सर्वपदार्थके आप आधार हें ये बात लिखी हे. सबके आधार होनो ब्रह्मधर्म हे ये बात ''धृतेश्च महिम्ना'' (ब्रह्मसूत्र१।३।१६) इत्यादि सूत्रन्में स्पष्ट लिखी हे.

शङ्का : जब आपको एसो स्वरूप हे तो सब जीवन्कुं एसे स्वरूपको क्यों नहीं अनुभव होय हे? या शङ्काको समाधान गीताजीमें लिख्यो हे. ''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः'' (भग.गीता७।१४). अर्थ:सब जीवन्कुं मेरे स्वरूपको अनुभव नहीं होवे हे क्योंके में योगमाया करिके ढंक्यो भयोहुं.

तहां ये शङ्का होय हे:माया करिके ढके भये आप हें, तब तो मायाके आधीन भगवान् होंयगे? एसो सन्देह होवे हे ताके दूर करिवेके अर्थ श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञाकरे हें ''वश्यमायम्''. अर्थ:वश हे माया जिनके. भगवान् मायाके आधीन नहीं हें, माया भगवान्के आधीन हे. जेसे पाश वारे पुरुषकी पाश ओरन्कुं बांधे हे पाश वारेकुं नहीं बांध सके हे. जेसें सूर्य मेघन्सों

कभी ढक जावे हे तासों मेघन्के आधीन सूर्य नहीं होवे हे, क्योंके सूर्यकी किरणद्वारा मेघ बने हें तासों मेघ सूर्यसों जुदे नहीं होय सके हे. ''याभिरादित्य: तपति रश्मिभि: ताभि: पर्जन्यो वर्षति'' (महाना.उप.१७।१३) या श्रुति वचनसों मेघके सूर्यसों अभिन्न होयवेकी सिद्धि होवे हे. याही प्रकार माया भी भगवान्को एक रूप हे. ये बात एकादशस्कन्धमें ''तन्मायाफलरूपेण'' (भाग.पुरा.११।२४।३) या श्लोकमें स्पष्ट हे.

अब ये शङ्का होवे हे के वेदमें ''विश्वतश्चक्षुः''(श्वेता.उप.३।३) ''सहस्रशीर्षा पुरुषः'' इत्यादि वाक्यन्में जो ब्रह्मके आकारको वर्णन हे सो आकार भी मायाको ही बनायो होयगो–या शङ्काके दूर करिवेके अर्थ कहे हें ''आनन्दाकरम्''.

मुण्डकश्रुतिमें ''आनन्दरूपममृतं यद्विभाति'' (मुण्डक.उप.२।२।७), नृसिंहोत्तरतापिनीमें ''आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः'' (नृसिंहोत्त.उप.) इत्यादिकन्में भगवान्को आकार आनन्दरूप हे, आनन्दके ही आपके सब अङ्ग हें ये लिख्यो हे. पञ्चभूतन्को रच्यो आपको अङ्ग नहीं हे, ताहीसों ''विजरो विशोको विमृत्युः'' (छान्दो.उप.८।१।५) या छान्दोग्य उपनिषद्की श्रुतिमें प्रभु-स्वरूपमें जरा-मृत्यु-चिन्ता आदि लौकिक देहके धर्म नहीं हें ये बात स्पष्ट लिखी हे. तासों ये सिद्ध भयो के जिन श्रुतिन्में अङ्गन्को वर्णन हे विन अङ्गन्कुं आनन्दके रचे भये ही जाननें. जिन श्रुतिन्में अङ्गन्को निषेध हे वहां पञ्चभूतन्के बने अङ्गन्को निषेध करे हें एसे समुझनो. क्योंके ''क्षरः सर्वाणि भूतानि'' (भग.गीता५।१७) या गीतावाक्यके अनुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पञ्चभूत क्षरब्रह्ममें गिनेजावे हें. क्षरब्रह्मसों उत्तम अक्षर ब्रह्म हे, अक्षरब्रह्मसों उत्तम परब्रह्म पुरुषोत्तम हे. पुरु-षोत्तमको आकार पञ्च भूतन्को रच्यो भयो सर्वथा नहीं होय सके हे. ताहीसों ''अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्'' (भग.गीता९।११) या गीतावाक्यमें भगवान्के श्रीअङ्गकुं मनुष्यदेहके समान रुधिर-मांसादिकन्को बन्यो भयो मानवे वारेन्कुं मूर्ख बताये हें.

अब ये शङ्का भई के जगत्कुं भगवान्को कार्य मानो हो तथा भगवान्सों अलग नहीं मानो हो तब तो जगत्में जो जडपदार्थ हें वे भी भगवान्को ही रूप भये तब तो तुमारे मतमें परब्रह्म भी जडरूप ही भयो. ताको ये उत्तर हे के यद्यपि कार-णकेही धर्म कार्यमें होवे हे तथापि कार्यगत होयवेसों वे धर्म अन्यथा प्रतीत होवे हें. तात्पर्य ये हे–''तदेजति तन्नैजति'' (ईशा.उप.३।५) इत्यादि श्रुतिन्में ब्रह्मके जो ''अनेजत्वादिधर्म'' () चेष्टारहितता आदि धर्म हें वे ही क्रीडाकी इच्छा करिके आनन्द-चैतन्यके छिपाय लिये पाछें कार्यमें जडत्वादि रूपसों प्रतीत होवे हें. क्रीडाकर्ता जो प्रकट सच्चिदानन्द पूर्णपुरुषोत्तम हें सो जगत्के जितने पदार्थ हें उन सबन्सों विलक्षण हें।।६७।।

एवं स्वधर्मरूपधर्मान् उक्त्वा कार्यम् आह जगतः समवायि स्याद्इति.

जगतः समवायि स्यात् तदेव च निमित्तकम्।।
कदाचिद्रमते स्वस्मिन् प्रपञ्चेऽपि क्वचित्सुखम्।।६८।।

सर्वस्यापि जगतः कार्यरूपस्य च ब्रह्मैव समवायिकारणम्. एतस्मिन्नेव ओतप्रोतं गार्गीब्राह्मणे प्रसिद्धम्. तदेव निमित्तकारणम्. 'च'कारात् कर्तृच. तस्य प्रपञ्चनिर्माणे हेतुम् आह कदाचिद्रमते इति. यदा स्वस्मिन् रमते तदा प्रपञ्चम् उपसंहरति; यदा प्रपञ्चे रमते तदा प्रपञ्चं विस्तारयति. प्रपञ्चभावो भगवत्येव लीनः प्रकटीभवति इति अर्थः।।६८।।

सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्म ही समवायिकारण हे. समवायिकारण वासों कहे हें जामें कार्य ओतप्रोत होय, अर्थात् पुररह्यो होय के जासों कभी अलग नहीं होय सके. जेसे कपडा तागेन्में पुर रह्यो हे तागेन्सों कपडा अलग नहीं होय सके हे एसे ही जगत् भी ब्रह्मसों अलग नहीं होय सके हे. ये समावायिकारणपनो गार्गीब्राह्मणमें वेदमें स्पष्टलिख्यो हे. वहां गार्गीने प्रश्न कियो हे:''सब जगत् कोन पदार्थमें (ओतप्रोत) पुररह्यो हे?'' वहां उत्तर दियो हे:''सब जगत्में ब्रह्मही ओतप्रोत होय रह्यो हे''. ब्रह्म ही या जगत्को निमित्तकारण हे. तामें ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' (तैत्ति.उप.२।१) ये श्रुति प्रमाण हे. ब्रह्म ही

या जगतको कर्ता हे तामें ‘‘विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः’’ (श्वेता.उप.६।१६) तथा ‘‘तदात्मानं स्वयमकुरुत’’ (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिश्रुति प्रमाण हें.

शङ्का:भगवान्ने अपने स्वरूपसों जगत् बनायो हे सो जीवन्के अर्थ बनायो हे अथवा अपने अर्थ बनायो हे? यदि जीवन्के अर्थ भगवान्ने जगत् बनायो हे एसे कहोगे तो जेसे स्वामीके अर्थ अनेक पदार्थ सेवक सिद्ध करे हे या प्रकार भगवान्कुं जीवन्के आधीन मानने पडेंगे, तो पराधीन होयवेसों ईश्वरताकी हानि होवेगी. यदि कहोगे के स्वार्थ ही जगत् बनायो हे तो भगवान्को पूर्णकामपनो मिटे हे. या आक्षेपको समाधान करे हें. ‘‘देवस्यैष स्वभावोयम् आप्तकामस्य का स्पृहा’’ (गोडपादका.२।९). इत्यादि कहिके गौडपादने जा स्वभावकों सृष्टिके हेतु होयवको प्रतिपादन कियो हे वा स्वभावको स्वरूप भी ब्रह्मको क्रीडा करिवेको स्वभाव ही समझनो चहिये क्योंके अन्यथा ‘‘स द्वितीयमैच्छत्’’ ‘‘क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते’’ इत्यादि श्रुति-स्मृतिन्को विरोध होयगो. यद्यपि भगवान्कुं कोइ प्रकारकी इच्छा नहीं हे, तथापि भगवान्को क्रीडा करिवेको स्वभाव हे; जेसे जलको शीतलता करिवेको स्वभाव हे, अग्निको जलायवेको स्वभाव हे. जब आप अपने एक रूपमें रमण करिवेकी इच्छा करे हें तब जगत्को उपसंहार, अर्थात् अपने स्वरूपमें तिरोधान करे हें. जब भगवान् आप इकल्ले रमण नहीं करें हें, दूसरे पदार्थकी इच्छा करिके प्रपञ्चमें रमण करे हें तब जगत्को विस्तार करे हें, अर्थात् अनेक रूप-नामके भेद करिकें क्रीडाकी इच्छा होय हे तब भगवान्के स्वरूपमें छिप्यो भयो प्रपञ्च-जगत् प्रकट हो जाय हे।।६८।।

कार्यादिभावः कश्चिद् अन्यः इति आशङ्क्य ब्रह्मवादस्वरूपम् आह यत्र येन इति.

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।।६९।।

सर्वविभक्तीनां प्रकारस्य च भगवानेव अर्थः. प्रकृति-पुरुषौ कालश्च स एव।।६९।।

शङ्का : कार्यकुं सत्य मानोगे तो भगवान् तथा जगत दो पदार्थ भये, तो द्वैत भयो, शुद्धाद्वैत नहीं सिद्ध भयो, क्योंके शुद्धाद्वैत-ज्ञान वाको नाम हे जा ज्ञानसुं भगवान्सों न्यारो कोई पदार्थ प्रतीत नहीं होय.

उत्तर : जगत्कुं सत्य माने हें परन्तु भगवान्सों भिन्न नहीं मानेहें.

श्लोकार्थ : जा ठिकाने, जा समय, जासुं, जा रूपमें, जो कछु भी होय हे अथवा रहे हे वो सब आप ही हो. प्रकृतिके रूपमें भोग्य, पुरुषके रूपमें भोक्ता तथा इन दोनोंन्के नियामक ईश्वर हु साक्षाद् भगवान् आप ही हो. अर्थात् श्रीभागवत स्कन्ध१० अध्याय८२ के ‘‘यत्र येन यतो यस्य’’ इत्यादि श्लोकके अनुसार सब विभक्तिन्को भगवान् ही अर्थ हें।।६९।।

एवं पूर्वस्थितिम् उक्त्वा पश्चात्स्थितिम् आह यः सर्वत्रैवे इति.

यः सर्वत्रैव सन्तिष्ठन् अन्तरः संस्पृशेन्न तत्।।
शरीरं तन्न वेदेत्थं योऽनुविश्य प्रकाशते।।

सर्वेष्वेव पदार्थेषु कार्येषु स्वयं तिष्ठन् तानि अन्तरयति स्वमध्ये स्थापयति इति अर्थः. तथा स्वयम् आधाराधेयभावं प्राप्नुवन्नपि तन् न स्पृशति. तर्हि अज्ञानेन तथा भवति? इति चेत्, न, इति आह शरीरम् इति. तत् सर्वमेव शरीरत्वेन मन्यते. तस्य च ज्ञापकं भवति सर्वं, तथापि न स्पृशति. तर्हि शरीरमेव भगवन्तम् आनन्दनिधित्वात् स्पृशेद्, इति चेत्, तत्र आहुः शरीरं कर्तृ ब्रह्म न वेद इति. इत्थम् अमुना प्रकारेण; योऽअनुविश्य प्रकाशते, ‘‘यः पृथिव्यां तिष्ठन्’’ (बृहदा.उप.३।७।३) इत्यादिश्रुतेः.

या प्रकार सृष्टिके पर्वूकी स्थितिको वर्णन करिके अब सृष्टिकालीन स्थितिको निरूपण करत हें.

श्लोकार्थ:वो सभी पदार्थके भीतर रहते भये भी उन पदार्थन्को स्पर्श नहीं करे हे. वो सभी पदार्थन्कुं अपनो शरीर मानिकें सब पदार्थन्में प्रविष्ट होयकें प्रकाशित होवे हे, किन्तु शरीर वाकुं या रूपमें नहीं जाने पावे हे.

शङ्का : अन्तर्यामी जड-जीवको स्पर्श नहीं करे हे तब तो अन्र्यामीको तथा जड-जीवको परस्पर भेद भयो, यामें शुद्धाद्वैतको सिद्धान्त कहां रह्यो?

उत्तर : सृष्टिदशामें लोकव्यवहार चलवेके अर्थ इच्छा करिके चैतन्य-आनन्दके तिरोभाव होयवेसों जड-जीव-अन्तर्यामीमें परस्पर भेद प्रतीत होवे हे. परन्तु ईश्वरके साथ कोई पदार्थको भेद नहीं हे, तासों भगवान्सों जड-जीव-अन्तर्यामी अलग नहि हें. जेसें वृक्षकी शाखा परस्पर एकसों एक न्यारी प्रतीत होंय हें परन्तु वृक्षसों कोई शाखा वस्तुत: न्यारी नहीं हें, तासों शुद्धाद्वैतमें कोई प्रकारको विरोध नहीं हे.

ननु श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वाद्, अन्योन्यविरोधात्, न किञ्चित्प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यति इति आशङ्क्य आह सर्ववादानवसरम्इति.

सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्।।७०।।

वस्तुतः श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्यता निरूपिता, सर्वभवनसामर्थ्येनविरुद्धधर्माश्रयत्वात्. न एवंवादिनां वाक्यानि तत्तदंशवाक्यपराणि भवितुम् अर्हन्ति, तेषां तथा हृदयाभावात्. अतः सर्वे वादाः स्वभ्रान्तिपरिकल्पितत्वेन वस्तुस्पर्शाभावाद् अनवसरपराहताएव. अस्तु वादिनां हृदयं यथा तथा, वाक्यानां सरस्वतीरूपत्वात् कथं न एकवाक्यता? इति आशङ्क्य आह नानावादानुरोधि तद् इति. एकैको वादो ब्रह्मण: एकैकधर्मप्रतिपादकैकैकवाक्यशेषइति भगवांस्तान् सर्वानेव अनुसरति।।७०।।

शङ्का-श्रुत्यादिमें ब्रह्मको विभिन्न प्रकारसों प्रतिपादन भयो हे. उनमें भी कहुं एक ग्रन्थको वाक्य दूसरे ग्रन्थके वाक्यसों विरुद्धार्थ प्रकट करतो दीसे हे. जेसे ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' या श्रुतिमें ब्रह्म सद्रूप हे ये बात लिखी हे ''असदेवेदमग्र आसीत्'' या श्रुतिमें ब्रह्म असद्रूप हे ये बात लिखी हे. या प्रकार अनेक श्रुतिन्में परस्पर विरोध हे. तासों वेदकों प्रमाण नहीं माननों.

उत्तर : कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने परब्रह्मरूप वस्तुको स्वभाव जानिकें श्रुतिन्को विरोध दूर करिके एकवाक्यता करी हे. तात्पर्य ये हे के वेदको दोष नहीं माननो, वेदने तो जेसो ब्रह्मको स्वरूप हे तेसो ही निरूपण कियो हे. ब्रह्ममें सब रूप धारण करिवेकी सामर्थ्य जानिके वेदनें ब्रह्मके अनेक रूप वर्णन किये हें. तथा लोकमें जिन धर्मन्को परस्पर विरोध दीखे हे वेसे अनेक धर्मन्को ब्रह्मकुं आश्रय जानिकें लोकमें एक पदार्थमें नहीं सम्भव सके ऐसें अनेक धर्मन्को वेदने ब्रह्ममें निरूपण कियो हे. जेसें लोकमें एकही पदार्थ हाथीके समान तथा मच्छरके समान नहीं होय सके हे तथापि वेदने एक ही ब्रह्मकों हाथीके समान तथा मच्छरके समान बतायो हे. अन्य भी अनेक श्रुतिन्में ब्रह्मकी विरुद्धधर्माश्रयताको निरूपण कियो हे. परन्तु विवाद करिवे वारेन्के हृदय शुद्ध नहीं रहे हें तासों भ्रममें पडकें अनेक प्रकारके वाद बनाय ले हें. उनके मनके बनाये भये वाद ब्रह्मके स्वरूपको स्पर्श भी नहीं कर सके हें. ताहीसों श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हें 'सर्ववादानवसरम्' अर्थ:मनके बनाये सब वादको जामें अवसर नहीं हे एसो ब्रह्मको स्वरूप हे.

शङ्का : वादी लोगन्के हृदय मलिन होवो अथवा शुद्ध होवो परन्तु वाक्य तो जितने हें वे सब सरस्वती स्वरूप हें, उनकी तो एकवाक्यता होनी चहिये

समाधान करे हें ''नानावादानुरोधि तत्''. अर्थ:एक-एक वाद हे सो ब्रह्मके एक-एक धर्मको प्रतिपादन करिवे वारो जो एक-एक वाक्य उनके शेष-अङ्गभूत हे. भगवान् सब धर्मन्को अनुसरण करे हें. जेसे कितनेक नास्तिकादिक ईश्वरकुं नहीं माने हें. तथा कितनेक शून्य माने हें. कितनेक तुच्छ माने हें. कितनें ईश्वरको अभाव माने हें. कितनेक वादी नाश्य माने हें. कितनेक अद्रश्य अर्थात् ज्ञानमें तथा द्रष्टिमें नहीं आय सके एसो माने हें. परमेश्वरमें, परन्तु, ये सब बातें घट जावे हें. ताहीसों महोपनिषद्में ''एष ह्येव शून्य, एष ह्येवाव्यक्तोऽद्रश्योऽचिन्त्यो निर्गुणश्च'' एसे कह्यो हे. अर्थ:ये ईश्वर ही शून्य हे, ये ईश्वर ही अभाव हे, ये ईश्वर ही तुच्छ हे, ये ईश्वर ही अद्रश्य हे. याही रीतिके शब्द नास्तिकादिकन्के मुखसों निकसें हें, परन्तु इन शब्दन्के उनके विचारे भये उलटे अर्थ तो परमात्माको स्पर्श भी नहीं कर सके हें. तथा वाणीरूपा सरस्वती तो ईश्वरमें सुलटी रीतिसों घट जावे हे. जेसे उपरके लिखे भये मन्त्रको अर्थ कूर्म पुराणमें लिख्यो हे. ''शमूनं कुरुते विष्णुर् अद्रश्यः सन् परं स्वयम्, तस्माच्छून्यामिति प्रोक्तः तोदनात्तुच्छमुच्यते, नैष भावयितुं शक्यः केनचित् पुरुषोत्तमः, अतोऽभावं वदन्त्येनं नश्यत्वान्नाश इत्यपि'' अर्थ:ईश्वरके सुखके आगें लोकको सुख बहुत ही कम हे तासों ईश्वरकों शून्य कहे हें. सबन्के हृदयमें गुप्त होयकें प्रेरणा करे हें तासों तुच्छ कहे हें. भगवान्कुं कोई उत्पन्न नहीं कर सके हे तासों अभाव कहे हें. काल-मृत्यु आपको भक्षण नहीं कर सके हे तासों नाश्य कहे हें. एसें ही दोष वारे पुरुष भगवान्कुं अद्रश्य अथवा शून्यरूप माने हें. उनके मतको भगवान् अद्रश्य शून्य अभावरूप होयके अनुसरण करे हें. अर्थात् उनकुं भगवान् अपने स्वरूपको ज्ञान नहीं करावे हें. तसों उनके अर्थ अद्रश्य शून्य अभाव रूपही रहे हें. जे पुरुष भगवान्कुं पूर्णज्ञानक्रियावान् सर्वेश्वर सच्चिदानन्दरूप माने हें उनकुं ''रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'' इत्यादि श्रुत्यनुसार रसरूप स्वरूपको अनुभव करायकें अनन्त आनन्द दे हें. या प्रकार नानावादके अनुरोधि हें अर्थात् अनेक प्रकारके वादी-विवादीके वाक्य भगवान्में घट जावे हें।।७०।।

तत्र ब्रह्मणि विरुद्धधर्माः सन्ति इति ज्ञापनार्थम् आह अनन्तमूर्तिइति.

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म कूटस्थं चलमेव च।।
विरुद्धसर्वधर्माणाम् आश्रयं युक्त्यगोचरम्।।७१।।

अनन्ता मूर्तयो यस्य. ब्रह्म एकं व्यापकञ्च, तेन अनेकत्वम् एकत्वञ्च निरूपितम्. एवं गुणविरोधम् उक्त्वा क्रियाविरोधम् आह कूटस्थं चलमेव च इति. 'एव'कारः सगुणादिभेदविज्ञापनार्थः. 'च'कारो अनुक्तधर्मसङ्ग्रहार्थः. वाक्येष्विव अत्रापि स्वरूपे विरोधम् आशङ्क्य समाधानार्थं स्पष्टम् आह विरुद्ध सर्वधर्माणाम् इति. ब्रह्मैव हि सर्वाधारम्, यथा भूमिः सहजविरुद्धानामपि मूषकादिजीवानाम्. कारणगतएव धर्मः पृथिव्यां भासते. विशेषेण लौकिकयुक्तिः अत्र नास्ति, तदगम्यत्वाद् इति आह युक्त्यगोचरम् इति।।७१।।

शङ्का : भगवान् यदि विद्यमान हें तो आपको अभाव अथवा शून्यरूप केसे हो सके हे? सर्वदा विद्यमान वस्तुको अभाव तो नहीं होय सके हे

समाधान : भगवान्में लोकसों विरुद्ध धर्म हें. लोकमें भावरूप घटादिक अभावरूप नहीं होय सके हें. भगवान् तो ''यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य'' इत्यादि वाक्यन्के अनुसार अस्ति-भावरूप भी हें तथा नास्ति-अभावरूप भी हें. ''यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम्'' अर्थ:ब्रह्म एक हे, व्यापक हे, अनन्तमूर्ति वारो हे. लोकमें जो एक होय सो अनेक नहीं होय हे. भगवान् एक हें तथा अनेक भी हें या प्रकार लोकविरुद्ध गुण दिखायकें लोकविरुद्ध क्रिया दिखावें हें. ''तदेजति तन्नेजति'' या श्रुतिके अनुसार भगवान् कूटस्थ हें, अर्थात् अचल हें तथा चल भी हें. याही प्रकारसों गुणादिभेद भी भगवान्में सम्भव हो सके हें. एसे अन्य भी वेदोक्त अनेक विरुद्धधर्म भगवान्मे हें यहां, परन्तु, विस्तारभयसों वर्णन नहीं करे हें.

परस्पर विरुद्ध धर्म एक पदार्थमें केसे रह सके हें? एसी शङ्का नहीं करनी. क्योंके ब्रह्म ही सब पदार्थन्को आधार हे. जेसे भूमि सहज विरोध राखिवे वारे सांप-मूषा, नाहर-बकरी आदि अनेक जीवन्को आधार हे. ओर जेसे बुद्धि परस्पर विरुद्ध जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था आदि वृत्तिको आधार हे वेसें ही ब्रह्म सर्व पदार्थन्को आधार हे. तथा पृथ्वी आदि पदार्थन्में भी

भगवान्‌की ही विरुद्धधर्माश्रयता भासमान होवे हे. विशेष करिके ब्रह्ममें लौकिक युक्तिकी पहोंच नहीं हे. जेसें वेदमें हजारन् मस्तक-कर-चरणारविन्द वारे भगवान्‌कुं बताये हें ये बात लौकिक युक्ति करिके गम्य नहीं हे. परन्तु वेदोक्त हे तासों अवश्य मानी जावे हे. एसेंही वेदोक्त विरुद्ध धर्माश्रयता भी मानी जावे हे।।७१।।

ननु अवतारेषु भगवत्त्वश्रुतेः लौकिकप्रमाणविषयत्ववत् लौकिकविषयत्वमपि कुतो न? इति आशङ्क्य आह आविर्भावतिरोभावैः इति.

आविर्भावतिरोभावैर् मोहनं बहुरूपतः।।

इन्द्रियाणान्तु सामर्थ्याद् अदृश्यं स्वेच्छयातु तत्।।७२।।

आविर्भावः अवतारो, मत्स्यादिरूपेण प्राकट्यम्. तिरोभावः अवतारसमाप्तिः. ते च बहुप्रकाराः स्थावरेभ्यो जङ्गमेभ्यः स्वतोऽपि भवन्ति. ते सर्वे प्रकारा मोहकाएव, नटवद् बहुरूपत्वात्. अन्यथा लौकिकयुक्तेः लङ्घनं न स्यात्. न हि मत्स्यो अह्ना योजनशतं वर्धते, नापि क्षणेन पर्वताकारो भवति वराहः. अतो लौकिकबुद्धिविषयत्वं नटइव ध्वान्तम्. स्वतो न लौकिकयुक्तिगोचरत्वम् इति अर्थः. तथापि कृष्णादयः सर्वैः दृष्टाअपि तेषु कथं लौकिकप्रमाणाविषयत्वम्? तत्र आह इन्द्रियाणां तु सामर्थ्याद् इति. चक्षुः न स्वसामर्थ्येन भगवन्तं विषयीकरोति, किन्तु भगवदिच्छयैव ''मां सर्वे पश्यन्तु'' इति एतद्रूपया तद् दृश्यम्।।७२।।

शङ्का : अवतारन्‌में भगवान् मनुष्यन्‌की लौकिक बुध्येन्द्रियादिन्‌सों अनुभूत होय हें एसेही लौकिक युक्तिन्‌सों भी भगवान् जानिवेमें आने चहियें.

उत्तर : लौकिक बुद्धि तथा लौकिक इन्द्रियन् करिके भगवान् ग्रहण करिवेमें आ जाय हें ये भ्रममात्र हे. जेसे नट अनेक रूप दिखावे हे तथा देखवे वारेन्‌कुं नाहर, हाथी, राजा के होयवेको भ्रम होय जावे हे एसे ही राम-कृष्णादि अवतारन्‌कुं भी साधारण मनुष्य समुझवेको भ्रम हो जाय हे. तथा मत्स्यावतार, वराहावतार आदिमें साधारण मच्छ तथा साधारण सूवर हे एसो मोह हो जावे हे. ओर जितने प्रकट होयवेके तथा अवतारकुं तिरोहित करिवेके प्रकार हें उनमें लौकिक युक्ति नहीं चल सके हे. जेसें थम्भासों प्रकट हो जानों, तथा हंसावतारमें स्वतः प्रकट हो जानों, मत्स्यावतारमें शीघ्र ही सरोवरके समान हो जानों, वाराहावतारमें क्षणमात्रमें पर्वताकार हो जानों आदि. तासों लौकिक प्रमाण तथा लौकिक युक्तिन्‌सों भगवान् नहीं जाने जांय हें.

यद्यपि लौकिक नेत्रादिकन्‌सों राम-कृष्णादि अवतारके दर्शन होवे हें तथापि लौकिक प्रमाण करिके गम्य भगवान् नहीं हें, क्योंकि नेत्र आदि इन्द्रियन्‌की भगवान्‌कुं देखिवेकी सामर्थ्य नहीं हे. भगवान्‌की जब सब जीवन्‌कुं अपनो स्वरूप दिखायवेकी इच्छा होवे हे तब ही नेत्र आदि इन्द्रियद्वारा आप दीखवेमें आवे हें, नेत्र आदि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्यसों देवतान्‌कों भी नहीं देख सके हें तब अवतारन्‌को केसे देख सकेंगी।।७२।।

ननु ''रूपवद् द्रव्यं चाक्षुषम्'' इति महत्त्वाद् उद्भूतरूपत्वाच्च कुतो न चाक्षुषत्वम्? तत्र आह आनन्दरूपे इति.

आनन्दरूपे शुद्धस्य सत्वस्य फलनं यदा।।

तदा मरकतश्यामम् आविर्भावे प्रकाशते।।७३।।

आनन्दरूपे आनन्दएव ब्रह्मणि रूपस्थानीयः. तत्र शुद्धस्य सत्वस्य देवतारूपस्य भगवदिच्छया श्रीभगवदासनत्वेन स्फुरितस्य श्यामत्वात् तस्य प्रतिफलनेन् आनन्दो नीलमेघवद् भासते इति अर्थः, यथा स्फटिको जपाकुसुमेन. श्वेतपाषाणेषु प्रविष्टोऽपि स्फटिको जपाकुसुमलौहित्यं गृह्णन् पाषाणेभ्यो वैशिष्ट्यम् आत्मनः प्रतिपादयति, तथा ब्रह्मापि जगति पुराणेषु प्रकटीभवत् तच्छ्यामत्वादि गृह्णद् ब्रह्मत्वमपि ख्यापयति इति भावः. प्रतिफलनेन् आनन्दो नीलमेघवद् भासते इति अर्थः, यथा स्फटिको जपाकुसुमेन. श्वेतपाषाणेषु प्रविष्टोऽपि स्फटिको जपाकुसुमलौहित्यं गृह्णन् पाषाणेभ्यो

वैशिष्ट्यम् आत्मनः प्रतिपादयति, तथा ब्रह्मापि जगति पुराणेषु प्रकटीभवत् तच्छ्यामत्वादि गृह्णद् ब्रह्मत्वमपि ख्यापयति इति भावः. सत्वरजस्तमसां नील–रक्त–श्वेतरूपतेति गुणावतारवाक्यैः निर्णीयते।।७३।।

शङ्का : जो प्रकट रूप वारो पदार्थ होवे हे वाकुं नेत्र देख सके हे ये नियम हे. भगवान् यदि प्रकटरूप वारे हें तो नेत्रकरिकें अवश्य दीखने चहियें

उत्तर : जो लौकिक प्रकटरूप वालो पदार्थ होवे हे वाकुं नेत्र देख सके हे ये नियम हे. ब्रह्ममें तो लौकिक रूप नहीं हे तासों नेत्र नहीं देख सके हे. याहीसों कहीं–कहीं अरूप ब्रह्मको नाम हे, अर्थात् मायारचित रूप ब्रह्ममें नहीं हे. ब्रह्मके विषें तो आनन्द हे सोही रूपके स्थानमें समझनो. इच्छा करिकें आनन्दही रूपात्मक भासमान होवे हे. लौकिक रूप भगवान्में नहीं हे ताहीसों नेत्र आदि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हें. तासों आसुर सब जीवन्कुं नेत्रन्की सामर्थ्य करिके अवतारादिकन्के जो दर्शन भये सो औपाधिक मायिक रूपके ही भये, आनन्दमय रूपके नहीं भये. आनन्दमय रूपके दर्शन उनही जीवन्कुं भये जिनकुं अनुग्रह पूर्वक इच्छा करिके करवाये. तहां साधारण जीवन्कुं जो दर्शन भये तामें द्रष्टान्त दे हें, जेसें श्वेत पाषाणके मध्यमें (जपाकुसम) लाल फूलके उपर स्वच्छ स्फटिकमणि धरी होवे हे तब देखवे वारेकुं स्फटिकमणिको स्वाभाविक रङ्ग तो नहीं दीखे हे, लाल रङ्गही मणिको दीखे हे, तथापि समीपके अन्य श्वेत पाषाणन्की अपेक्षा मणिमें चिलक अधिक दीखे हे, एसें ही साधारण जीवन्कुं अवतारको आनन्दमयरूप तो नहीं दीखे हे परि इच्छा करिकें भगवान्ने सत्वगुणके देवताकों आसन रूपसों ग्रहण करि राख्यो हे वाकी जो आनन्दमें झांई पडे हे तासों वो आनन्द नीलमेघके समान भासमान होवे हे. जेसें लाल फूल करिके स्फटिकमणि लाल मालुम पडवे लाग जावे हे तथापि अन्य पत्थरन् बीच चिलक अधिक रहे हे एसेंही भगवान् ब्रह्मा–विष्णु–शिवादि गुणावतारन्में मायाके सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण करिके श्याम–लाल–श्वेत रूपसों भासमान होवे हें, तथापि अन्य जीवन्की अपेक्षा उन रूपन्में ब्रह्मत्व प्रकट राखे हें. क्योंकि भगवान् जा पदार्थमें स्थित रहे हें वा पदार्थकु अपने भीतर स्थित करले हें. जेसें लोहके गोलामें स्थित होयके अग्नि लोहके गोलाकुं अपने भीतर स्थित करिके आपुन बाहिर प्रकट होय जावे हे. ये बात अन्तर्यामी ब्राह्मणमें लिखी हे. या प्रकार (मायिक) औपाधिक रूपमात्र नेत्रन्की सामर्थ्यसों दीख सके हे. भगवान्के दर्शन तो इच्छा आनन्द करिके ही हो सके हे. लौकिक नेत्रादि इन्द्रियन्की सामर्थ्यसों भगवान्को दर्शन नहीं होय सके हे. इतने विस्तार करिके ये बात सिद्ध भई के भगवान् इन्द्रियके गोचर नहीं हें. या प्रकार ही पृथ्वीमें नीलरूपतासों आपको अविर्भाव हे, जलमें प्राणमें श्वेतरूपतासों, तेजमें रक्तरूपतासों तथा वायुमें पीतरूपतासों आपको प्राकट्य समुझनो. युगावतारन्में भी याही रीतसों वर्णविभाग आगेके श्लोकमें दिखावे हें।।७३।।

उपपत्त्यन्तरम् आह चतुयुर्गेषु च तथा इति.

चतुर्युगेषु च तथा नानारूपवदेव तत्।।
उपाधिकालरूपं हि तादृशं प्रतिबिम्बते।।७४।।

''कृते शुक्लश्चतुर्बाहुः'' (भाग.पुरा.११।५।२१) इति वाक्याद्, अन्यथा नियतं रूपं न स्यात्. तत्रापि हेतुम् आह उपाधि इति. उपाधिकालः सत्यादिदेवतारूपः, तस्य रूपं ब्रह्मणि प्रतिबिम्बते. कालविशेषे रूपविशेषः तदाधारत्वेन ब्रह्मणि स्फुरितो ब्रह्मत्वं सम्पादयति इति अर्थः।।७४।।

सत्ययुगको अभिमानी देवता कालको जब भगवान्के आधार रूपसों स्फुरण होवे हे तब वाकी श्वेत झांईसों भगवान्को श्वेतरूप सत्ययुगमें भासमान होवे हे. याही प्रकार त्रेता–द्वापर–कलियुगके रक्त–पीत–श्याम देवतान्की झांई करिकें उन–उन युगन्में भगवान् रक्त–पीत–श्यामरूपसों भासमान होवे हें. ओर पहिले कहे अग्नि गोलाके द्रष्टान्तानुसार अपने आधारभूत कालाभिमानी देवतान्कुं आप अपने भीतर स्थित करिकें उनकुं भी अवतीर्ण ब्रह्मत्व सम्पादन करे हें. या रीतिसों प्रतिफलन करिके ब्रह्मत्व सिद्ध कियो. तथा नेत्रन्की सामर्थ्यसों जो भगवान्को रूप दीखवेमें आवे हे वाकी प्राकृतता सिद्ध करी.

अब भगवान्के आनन्दाकारमें मायिकपनेकी शङ्का दूर करिवेके अर्थ मुख्य सिद्धान्तके अनुसार ''आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'' ''शबलात् श्यामं प्रपद्ये'' (छान्दो.उप.८।१३।१) इत्यादि श्रुतिन्में लिख्यो भयो जो कृष्णको अप्राकृत अलौकिक रूप हे ताको वर्णन करे हें।।७४।।

एवं प्रतिफलत्वेन ब्रह्मत्वं प्राकृतरूपवत्वञ्च साधयित्वा प्रकारान्तरेण रूपवत्त्वं साधयति अथवा इति.

अथवा शून्यवद्गाढं व्योमवद् ब्रह्म तादृशम्।।
प्रकाशते लोकदृष्ट्या नान्यथा दृक् स्पृशेत्परम्।।७५।।

यथा मेघादिरहिते देशे आकाशे नीलिमा प्रतीयते. चक्षू रूपवद् द्रव्यं गृह्णत् तदभावे दूरं गतं सन् नीलमिव पश्यति, तथा अन्धकारम्. नैतावता आकाशे अन्धकारे वा रूपम् अस्ति. तथा ब्रह्माऽपि अतिगाढं गम्भीरतया नीलमिव भाति इति अर्थः. अनेन अचाक्षुषत्वं ज्ञापितं भवति. पूर्वापेक्षया अयं पक्षो महान् इति ज्ञापयितुम् आह नान्यथा दृक् स्पृशेत्परम्इति. ''पराञ्चि खानि'' (कठोप.२।१।१) इति श्रुतेः, परं चक्षुः न स्पृशति, अन्यथा परत्वमेव न स्याद् इति. यद्वा एवं नीलरूपत्वेन निराकारत्वं ब्रह्मणि आयातीति अरुच्या पक्षान्तरम् आह अथवा इति. उक्तव्याख्यानेऽपि तथा. एवं नीलिमभानोपपत्तावपि पीतवसनादिभानानुपपत्त्यपरिहाराद् अपसिद्धान्तत्वात् च व्याख्यानान्तरम् उच्यते. ब्रह्म तादृशम्, यादृशं दृश्यते तादृशमेव तद्वस्तु इति अर्थः. तत्र अनेकरूपत्वेन अब्रह्मत्वम् आशङ्क्य निरस्यति दृष्टान्तेन. गाढं घनीभूतं सैन्धवं लवणम् इति यावत्. तद् यथा अन्तर्बहिश्च एकरूपरसं तथा ब्रह्म अनेकरूपत्वेन भासमानमपि शुद्धमेव इति अर्थः. ''स यथा सैन्धवघन''(बृहदा.उप.४।५।१३) इत्यादि धर्मिग्राहिकमानात् तत् तादृगेव मन्तव्यम् इति भावः. तर्हि ''पराञ्चि खानि'' (कठोपनि.२।१।१) इति श्रुतेः दृग्विषयत्वानुपपत्तिः इति अतः आह ''शून्यवद् व्योमवद् लोक-दृष्ट्या ब्रह्म न प्रकाशते'' इति. शून्यगृहादौ वस्त्वभावादेव यथा न किञ्चिद् दृश्यं भवति तथा इति अर्थः. दर्शनं हि द्वेधा, तदर्थं प्राकट्येन साधारण्येच्छया वा. तत्र आद्याभाववत् स्वयं दृष्टान्तः, तेषाम् आसुरभावाद् यथोक्तब्रह्मानङ्गीकारात् तादृक् तान् प्रत्यसदेव इति भावः.

यद्वा. शून्यं तम उच्यते. तेन तद्वद् गृहादि लक्ष्यते. तत्र यथा सदपि वस्तु प्रकाशकाभावात् न भाति तथा इदम् अनुग्रहाभावात् तथा इति अर्थः. अनवतारदशायां तथेच्छाभावाद् व्योमवत् तथा इति अर्थः. रूपाभावाद् यथा तद् अयोग्यं तथा इदमपि इति भावः. इच्छा तत्र रूपस्थानीया ज्ञेया. दर्शने हेतुम् आह अन्यथा उक्तवैपरीत्येन तदनुग्रह-तदिच्छाभ्यां दृक् परं स्पृशेद् इति अर्थः. यद्वा. जलेन न शून्या अशून्याः सजलमेघाः इति यावत् तद्वद् व्योमवच्च श्यामं स्वरूपं लोकदृष्ट्या यत् प्रतीयते तद् ब्रह्म. नतु उपाधिः औपाधिकं वा इति अर्थः.

ननु अत्र उपपत्तिः का? इति अत आह तादृशम् इति. तद् वस्त्वेव तथा इति अर्थः. न हि वस्तुस्वरूपम् उपप-त्तिम् अपेक्षते इति भावः. उपपत्तिमपि आह अन्यथा यदि शुद्धं ब्रह्म न स्यात् तदा अदृग् न विद्यते, दृग् ज्ञानं यस्य स तथा पशु-पक्षि-वृक्षादिः परं प्रकृतिकालाद्यतीतं न स्पृशेत् न प्राप्नुयाद् इति अर्थः.

अथवा. अन्यथा शत्रुत्वेन ज्ञानं यस्य स पूतनादिः प्रकृत्याद्यतीतं न प्राप्नुयाद् इति अर्थः. अस्य तर्करूपत्वाद् आपादकं ''यदि ब्रह्म न स्याद्'' इति रूपम् अर्थादेव प्राप्यते इति न उक्तम्।।७५।।

''तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महाराजानं यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्र गोपो यथाग्न्यर्चिः'' इत्यादि श्रुतिन्में इन्द्रगोप, मणि, अग्निज्वाला आदि पदार्थन्के समान परब्रह्म श्रीकृष्णको रूप लिख्यो हे सो रूप मायारचित नहीं हे किन्तु ब्रह्मात्मक ही हे. ''यन् मायया मोहिताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना'' या ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्डके वाक्यमें भी अन्य देवतान्कुं ही प्रकृति लिखे हें. श्रीकृष्णको तो स्वरूप निर्गुण ही हे, परन्तु अत्यन्त गम्भीर तथा अनवगाह्य हे, अर्थात् जा स्वरूपको अन्त दृष्टि नहीं पाय सके एसो आपको स्वरूप हे. तासों लोकदृष्टि करिके नील जेसो मालुम पडे हे. वस्तुतः नीलगुण वारो आपको स्वरूप नहीं हे किन्तु वो वस्तु ही वेसी हे. निज सामर्थ्यसों ही नील भासमान होवे हे.

न्यायके चोबीस गुणन्में जो 'रूप'नामको गुण लिख्यो हे सो ब्रह्ममें नहीं हे. ब्रह्म 'रूप'गुण रहित हे तो भी गम्भीर हे. तासों अपने स्वभावसों ही नील भासमान होवे हे. यामें दृष्टान्त:जेसे अन्धकार तथा आकाश 'रूप'गुण रहित हें तो भी गम्भीर हें तासों अपनी सामर्थ्य करिके ही नील भासमान होवे हें. दृष्टितो रूपकुं ग्रहण करिवे वारी हे. आकाशमें तो रूप नहीं दीखे हे, तब दृष्टि अत्यन्त दूरी गई भई नील रूपकुं जेसो देखे हे तेसे आकाशकुं देखे हे. तासों आकाशमें रूप हे एसें नहीं जाननो किन्तु रूप रहित ही आकाश गम्भीरताके कारण नीलरूप जेसो भासमान होवे हे. एसे ही ब्रह्म गम्भीर हे तासों नीलरूप जेसो भासमान होवे हे. जब आप गम्भीरताकुं नहीं दिखावे हें तब आपको स्वरूप जेसो श्रुतिमें लिखे हें वेसो ही दर्शन्में आवे हे. जेसे ''बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डम्'' (भाग.पुरा.१०।३५।२४) या भागवतके श्लोकमें वर्णन हे. कृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके दर्शन व्रजभक्तन्कुं बेरके समान पाण्डुवदन्के अर्थात् पीतगौर भये. इतने विस्तार करिके भगवान् प्राकृतरूप रहित हें तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हे ये प्रतिपादित कियो. नेत्र जेसें अन्य वस्तुन्कुं देख सके हे तेसें भगवान्कुं भी देख सकते होंय तो जेसें अन्य पदार्थ नेत्र आदि इन्द्रियन्सों पर नहीं हें तेसें भगवान् भी नेत्रादि इन्द्रियन्सों पर नहीं कहावेंगे तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हें ये सिद्ध भयो. याहीसों ''पराञ्चि खानि'' (कठोप.४।१) या श्रुतिमें उलटी इन्द्रियें ब्रह्मको स्पर्श नहीं कर सके हें ये बात लिखी हे. यासों यह शङ्का नहीं करनी के भगवान्में रूप इन्द्रिय कछु भी नहि हें. तब तो आप जा भक्तकुं दर्शन देनों चाहते होंयगे वाकु भी केसें दर्शन देते होंयगे, क्योंकि दर्शन देनो चाहे हें वाकुं तो हस्त चरणा-रविन्दादिक इन्द्रिय तथा रूपादिगुण सच्चिदानन्दात्मक ही दीखे हें.

याही श्लोककी श्रीगुसांईजीने करी भई व्याख्याको वर्णन करे हें. भगवान्को स्वरूप जेसो अनुग्रह वारे कृपापात्र भक्त देखे हें तेसो ही माननो चहिये. अनेक रूप होयवेसों ब्रह्मपनों नहीं मिटे हे, यामें दृष्टान्त देत हें. जेसो गाढो अर्थात् सघन सैन्धव-लवण बाहिर-भीतरसों एकरस रहे हे एसें ही अनेक रूप वारो ब्रह्म भी सदा एकरस तथा शुद्ध रहे हे.

''पराञ्चि खानि'' (कठोप.४।१) या श्रुतिसों ब्रह्म नहीं दीखे हे एसो तात्पर्य निकसे हे, तासों तो लोकदृष्टिसों नहीं दीखे हे ये बात समुझनी. वामें दृष्टान्त : जेसें सूने घरमें कोई पदार्थ नहीं दीखे हे, क्योंकि वहां दीखवे लायक कोई पदार्थ नहीं हे एसेंही लोकदृष्टि करिके दीखवे लायक पदार्थ लौकिकरूप हे तथा ब्रह्ममें लौकिक रूप नहीं हे तासों लोकदृष्टिसों शून्यके समान ब्रह्म प्रकाशमान नहीं होवे हे.

दर्शन होयवेके दो प्रकार हें. एक प्रकार तो ये हे के जाके अर्थ भगवान् प्रकट होंय वो दर्शन करि सके हे. दूसरो प्रकार ये हे के जिन जीवन्कुं अन्य मनुष्यन्के समान ही अपनो भी स्वरूप दिखायवेकी भगवान्की इच्छा होवे हे तब अन्य मनुष्य जेसें ही भगवान् भी दीखे हें. तथा जिनके अर्थ प्राकट्य नहीं हे एसे आसुरजीव शास्त्रोक्त ब्रह्मकुं असत् माने हें, अर्थात् झूठो माने हें, उनकुं भगवान् असत् जेसें ही दीखे हें. सूने घरमें कछु नहीं दीखे हे तेसें भगवान् प्रकाशमान नहीं होवे हें, क्योंकि ''मायेत्यसुरास्तं यथायथोपासते'' (मुद्गलोप.३।३) या मण्डल ब्राह्मणकी श्रुतिमें जो जेसी उपासना करे हे वाकुं वेसे ही भगवान् भासमान होवे हें एसे लिख्यो हे. अथवा 'शून्य'नाम अन्धकारको हे. जेसे अन्धकार वारे घरमें दिया विना धरी भई वस्तु भी नहीं दीखे हे एसें अनुग्रह विना अवतार समयमें विद्यमान भी भगवान् नहीं दीखे हें. जा समय अवतार नहीं होय वा समय तो स्वरूप प्रकट नहि हे तासों रूप रहित आकाश जेसें नहीं दीखे हे तेसें भगवान् भी नहीं दीखे हें. वहां इच्छाकुं ही रूपके ठिकानें समुझनो. जेसें रूप नहीं होय तो पदार्थ नहीं दीख सके हे तेसें इच्छा नहीं होय तो भगवान् नहीं दीख सके हें. अन्य लोगन्कों दृष्टि करिके ही जब आप अपनो रूप दिखानो चाहे हें तब भगवदनुग्रह भगवदिच्छा करिके लोकदृष्टि भी हरिको स्पर्श करे हे. जेसें महाभारतमें अश्वमेघपर्वमें उत्तङ्ककुं लोकदृष्टि करिके ही भगवान्ने दर्शन कराये. उद्योग पर्वमें कौरवन्कुं भी लोकदृष्टि करिके ही दर्शन कराये. या पक्षकुं हृदयमें राखिकें दूसरो अर्थ करे हें. जलसों भरे बादल जेसे श्याम तथा आकाश जेसो श्याम स्वरूप लोकदृष्टि करिके जो प्रतीत होवे हे वो ब्रह्म ही हे, औपाधिक अथवा मायिक नहीं हे, क्योंकि वो वस्तु ही वेसी हे. वस्तु स्वरूप युक्तिकी (उपपत्तिकी) अपेक्षा नहीं करे हे. श्रीकृष्ण यदि शुद्ध परब्रह्म न होते तो ज्ञान रहित पशु-पक्षी-

वृक्षादिकन्कुं प्रकृति–कालसों पर निज स्पकी प्राप्ति नहीं होती. अथवा आप यदि परब्रह्म न होते तो आपकुं अपने शत्रु जानिवे वारे पूतनादि दैत्य प्रकृति–कालातीत भगवान्के स्वस्पकुं नहीं प्राप्त होते.

इन कहे भये प्रकारन्को अपने–अपने अधिकारानुसार उपयोग हे. उत्तमाधिकारीकुं तो पुष्कल ज्ञान सिद्ध होयवेके अर्थ इन सर्वपक्षन्को ज्ञान होनों चाहिये. या प्रकार भगवान्में लौकिक दोषको परिहार कियो।।७५।।

एवं लौकिकत्वदोषं परिहृत्य कर्तृत्वेन वैषम्य–नैर्धृण्ये प्राप्ते परिहरति आत्मसृष्टेः इति.

आत्मसृष्टेर्न वैषम्यं नैर्धृण्यं चापि विद्यते।।
पक्षान्तरेऽपि कर्म स्यान्नियतं तत्पुनर्बृहत्।।७६।।

''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इति श्रुतेः. जगति नानाविधान् सृजन्नपि न विषमो भवति. नापि क्रूरं कर्म कुर्वन् निर्धृणो भवति. चकाराद् अन्येऽपि दोषाः परिहियन्ते.

अत्र मतान्तरम् आशङ्क्य परिहरति पक्षान्तरेपि इति. ''वैषम्य–नैर्धृण्ये न सापेक्षत्वात्'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३४) इति बादरायणः तत् कर्मसापेक्षत्वान् न विषमः इति आह. तथा सति कर्म नियतं नियामकं भवेत्. परं तत् कर्म किम्? इति विचारणीयम्. ब्रह्म चेत्, स दोषः तदवस्थः. अन्यश्चेद् ब्रह्मणः तत्सापेक्षत्वाद् असमर्थत्वम्. तद्धेतोरेव अस्तु इति न्यायेन कर्मणएव तत्समाधाने ईश्वरकारणता न सम्भवेत्, हेतुव्यपदेशश्च विरुद्ध्येत. नापि लोकवद् दूषणस्थापनं युक्तम्. अत आत्मसृष्टेः इत्येव हेतुः. सूत्रं तु लोकबुद्ध्यनुसारि. अन्यथा ''फलमत उपपत्तेः'' (ब्रह्मसूत्र३।२।२८) इति अधिक–रणं विरुद्ध्येत।।७६।।

अब भगवान् जगत्के कर्ता हें तो कोई जीवकुं हंस तथा कोई जीवकुं काक बनावे हें एसी विषमता क्यों होनी चहिये? तथा कोईकुं सुखी, कोईकुं दुःखी राखे हें एसो निर्दयपणों क्यों होनो चहिये? इन दोनों दोषन्को परिहार अगाड़ीके श्लोकमें करे हें.

सृष्टि ब्रह्मके स्वस्पसों ही होयवेसुं ब्रह्मकों सृष्टिकर्ता मानिवेमें ब्रह्ममें वैषम्य तथा नैर्घृण्य दोष आयवेकी सम्भावना नहीं हे. एक अन्य मत हे के व्यक्तिके सुख–दुःखके नियामक व्यक्तिके कर्म होय हें. वस्तुविचारसुं, किन्तु, ये कर्म भी ब्रह्म ही हे. ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (बृहदा.उप.१।४।३) या श्रुतिके अनुसार भगवान् अपने आत्माकुं ही जगद्रूप करे हें. अर्थात् आप ही सर्वस्प होय रहे हें. तासों भगवान् उंची–नीची, गज–गर्दभ आदि अनेक जाति रचते भये भी विषम नहीं कहावे हें. तथा कोईकों सुखी कोईकों दुःखी करते भये भी निर्दय नहीं कहावे हें. क्योंकि लोकमें भी ओरकुं दुःख देवे वारो ही निर्दय कहावे हे, जो समर्थ पुरुष क्रीडाके अर्थ अपनी इच्छा करिके ही कभी राजा कभी कङ्गाल बन जावे तथा कभी सुखी कभी दुःखी बन जावे वाकुं कोई विषम वा निर्दय नहीं कहे हे. एसे ही अवतारन्में जो आसुर जीवन्कुं मोह करायवेके अर्थ युद्धसों भागनो, कहिं अज्ञान दिखा देनों, कहिं भक्तवश होयकें बन्धनमें आय जानों इत्यादि अनेक चरित्रन्कुं दूषणस्प नहीं समुझनो, किन्तु एसे चरित्र क्रीडाके भूषणस्प ही हें.

कितनेक मतवादी कर्मकुं ही सुख–दुःखको देवे वारो माने हें ईश्वरकों नहीं माने हें, उनसों ये पूछनो चहिये के कर्म तो जड पदार्थ हे, सुख–दुःख केसे दे सके हे? कर्मानुसार सुख–दुःख देवे वारो अन्य चेतन पदार्थ मान लेनो चाहिये.

कदाचित् कहोगे कर्मको नियम करिवे वारो अन्य कोई नहीं हे, पहिलेको कर्म ही कर्मको नियम करिवे वारो हे, अर्थात् पूर्व जन्मको सुकर्म या जन्ममें सुकर्ममें प्रवृत्ति करावे हे तथा पूर्व जन्मको कुकर्म या जन्ममें कुकर्ममें प्रवृत्ति करावे हे. ताको ये उत्तर हे के पूर्व कर्म करिकेहि कर्ममें प्रवृत्ति होय जाती होय तो वेदके विधिवाक्यन्को कर्ममें प्रवृत्ति करवानो वृथा हो जायगो, तासों उन वाक्यन्कुं सार्थ करिवेके अर्थ सुकर्ममें प्रवृत्ति करायवे वारे वाक्यन्के आधीन सुकर्मकुं माननो पडेगो तथा

कुकर्मको निषेध करिवे वारे वाक्यन्के आधीन कुकर्मकुं माननों पडेगो तब तो सबही मनुष्य वेदवाक्यन्कुं पढके अथवा सुनकें सब ही कुकर्मसुं निवृत्त हो जायेंगे तथा सुकर्ममें प्रवृत्त हो जायेंगे, अधर्म कोई भी नहीं करेंगे. तब तो नरक बनानों भी वृथा होयगो. अधर्मके प्रायश्चित्त बतायवे वारी स्मृतियें वृथा जांयगी, तथा लोककी अधर्ममें प्रवृत्ति होय रही हे सोभी नहीं होनी चाहिये. तासों धर्माधर्मके स्वरूप जानवेवारे मनुष्यकुं भी निज इच्छाके अनुसार पुण्य-पापमें प्रवृत्ति निवृत्ति करायवे वारो स्वतन्त्र कर्ता ईश्वर अवश्य माननो चहिये.

शङ्का : कितनेक मतवादी कहे हें के ईश्वरतो कर्मके अनुसार सुख-दुःख देत हे. यासों उनके मतमें ईश्वर कर्मके आधीन भयो, ईश्वर समर्थ नहीं भयो, तासों कर्मन्कुं ही सुख-दुःखके मुख्य हेतु-कारण माननों उचित हे.

समाधान : यदि ये मत उचित हे तब तो ''ईश्वर ही सुखदुःखको देवेवारो हे'' या रीतसों कहिवे वारी सब स्मृति व्यर्थ भई. जेसें गीताजीमें ''सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च, भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः'' (भग.गीता१०।५) अर्थ : कृष्ण कहे हें प्राणिमात्रके सुख दुःख भय अभय मेरे करे भये होवे हें. तथा ''स एव साधु कर्म कारयति'' (कौषि.उप.३।८) या श्रुतिमें जा जीवकुं उपरके लोकमें लेजायवेकी इच्छा होवे हे वासों सुकर्म करवावे हें तथा जा जीवकुं नीचेके लोकमें लेजावेकी इच्छा होवे हे वासों कुकर्म करवावे हें ये लिखी हे ताको विरोध आयगो. तासों आत्मसृष्टिपक्ष माननों, लौकिक ईश्वर एसे राजादिकन्के समान सर्वेश्वर भगवान्में दोष नहीं लगावनो. ''वैषम्य-नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३४) ये सूत्र तो लोकबुद्धिके अनुसार हे. जो या सूत्रको अर्थ वादीके मतके अनुसार मानोगे तो ''फलमतः'' (ब्रह्मसूत्र३।२।३८) या सूत्रमें भगवान् ही सुख-दुःखादि सब फलके दाता हें ये बात लिखी हे तासों विरोध आवेगो।।७६।।

ननु अस्तु सापेक्षएव कर्ता, सगुणत्वाद् इति आशङ्क्य आह स एव हि जगत्कर्ता इति.

स एव हि जगत्कर्ता तथापि सगुणो न हि।।
गुणाभिमानिनो ये हि तदंशाः सगुणाः स्मृताः।।
कर्ता स्वतन्त्रएव स्यात् सगुणत्वे विरुद्ध्यते।।७७।।

यस्तु उच्चावचं सृजति सएव जगत्कर्ता. नापि सगुणः. हेतु सिद्ध्यर्थं सगुणस्य लक्षणम् आह गुणाभिमानिनः इति. गुणैः कृत्वा अभिमानिनः. अनेन देहेन्द्रियाभिमानाभावेऽपि गुणाभिमानमात्रेणैव सगुणत्वम्. ते गुणाः सृष्ट्यादिहेतवः. अनधिष्ठिताः पुनः न कुर्वन्तीति गुणाधिष्ठात्र्यो देवताः ब्रह्मादयः सगुणाः उच्यन्ते. तेषां स्वातन्त्र्यम् आशङ्क्य आह तदंशा इति. तत्र प्रमाणं, स्मृता इति. स्मृति-पुराणेषु तथा प्रसिद्धेः इति अर्थः. भगवांस्तु सर्वात्मा सर्वनियन्तामूलकर्तेति न सगुणः.बाधकम् आह कर्तास्वतन्त्रएवस्याद् इति।।७७।।

शङ्का : सगुण हे तासों कर्मसापेक्ष ईश्वर ही कर्ता होवे हे. अभिप्राय ये हे के गुणाधीन होयवेसों जेसें ईश्वरताकी हानि नहीं हे तेसें कर्माधीन होयवेसों भी ईश्वरताकी हानि नहीं होवे हे.

श्लोकार्थ : वो शुद्ध ब्रह्म ही जगत्कर्ता हे. कर्ता होते भये भी वो सगुण नहीं हे. जिन गुणाभिमानी देवतान्कुं स्मृति-पुराणादिमें सगुण कहे हें वे शुद्ध ब्रह्मके अंश हें. कर्ता वो ही हो सके हे जो स्वतन्त्र होय. सगुणको कर्तृत्वसों विरोध हे, अतः ब्रह्मकु सगुण मान लेवेसुं वाकुं स्वतन्त्र नहीं कह्यो जा सकेगो फलतः वाकु कर्ता नहीं मान्यो जा सकेगो.

उत्तर : जो उच्चावच सृष्टिकों सृजें हे वो ही जगत्कर्ता हे, परन्तु सगुण नहीं हे. गुणन् करिके अभिमानी जे ब्रह्मादिक देवता हें वे ही सगुण कहावें हे. यद्यपि ''हम देहेन्द्रिय वारे हें'' एसो अभिमान ब्रह्मादिकन्कुं नहीं हे तथापि विना अधिष्ठाता देवताके सत्व-रजस्-तमोगुण स्वयं सृष्टिकार्य नहीं कर सकें हे तासों गुणके अभिमानी ब्रह्मादिक देवता हें, वे ही गुणन्के अधिष्ठाता

देवता हे, वे ही सगुण कहावे हें. वे सब देवता ब्रह्मके अंशरूप हें अतः परतन्त्र हें ये बात ''यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः''–''आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे विष्णुः'' इत्यादि पुराण–स्मृतिमें प्रसिद्ध हे।।७७।।

एवं स्वमतं स्थापयित्वा परमतनिराकरणाय भगवन्तं सगुणं मन्यमानान् उपहसति केचिदत्र इति.

केचिदत्रातिविमलप्रज्ञाः श्रौतार्थबाधनम्।।

कृत्वा जगत्कारणतां दूषयन्ति परे हरौ।।७८।।

अतिक्रान्ता विमला प्रज्ञा येभ्यः. तत्र हेतुम् आह श्रौतार्थबाधनम् इति. श्रुत्या अभिधया वृत्त्या यो अर्थः प्रतिपाद्यते प्रकरणानुरोधेन सएव श्रुत्यर्थः. तत्र ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' (छान्दो.उप.६।२।१) ''आत्मा वा इदमेवाग्र आसीत्'' (ऐत.उप.१।१) ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''(तैत्ति.उप.२।१) ''भृगुर्वै वारुणिः'' (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिब्रह्मप्रकरणेषु निःसन्दिग्धेषु, ब्रह्मणएव केवलस्य जगत्कारणत्वं प्रतिपादितम्. तत्सामान्याद् इतरेष्वपि सन्दिग्धेषु व्यासैः सूत्रेषु तथैव अर्थो निर्णीतः. तद् उभयं बाधित्वा वाक्याभासं युक्त्याभासञ्च पुरस्कृत्य ब्रह्मणो जगत्कारणतां दूषयन्ति. परे हरौ पुरुषोत्तमः परं ब्रह्म इति यावत्।।७८।।

भगवान् तो सर्वात्मा रूप हें तासों गुणरूप भी आप ही हें. सबके नियन्ता हें. मूलकर्ता हें तासों सगुण नहीं हें. भगवान् यदि सगुण होवें तो गुणाधीन होयवेसों स्वतन्त्र कर्तापनो जो श्रुतिपुराणन्में लिखो हें तासों विरोध आवेगो.

कितनेके अतिविमलबुद्धि वारे, अर्थात् निर्मलबुद्धि जिनको उल्लङ्घन कर गई हे एसे पुरुष पहिले ब्रह्मकुं जगत्को कारण मान करिके कारणताको खण्डन करें हे. शुद्ध ब्रह्म हि जगत्को कर्त्ता हे ये जो श्रुतिन्को मुख्य अर्थ हे ताकुं नहीं माने हें.

तहां छान्दोग्य उपनिषद्में ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' (छान्दो.उप.६।२।१) या श्रुतिमें जगत्की उत्पत्तिके पहिले अप्रकट स्वरूप केवल सद्रूप एक परब्रह्मको ही वर्णन करिके शुद्ध ब्रह्मसों ही तेज आदि पदार्थन्की उत्पत्ति कही हे तासों शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को बीज हे ये सिद्ध होवे हे. ऐतरेय उपनिषद्में भी परमात्मासों ही जल आदि पदार्थन्के क्रमसों लोकपालादिकन्की सृष्टि कही हे. एसें ही तैत्तिरीय उपनिषद्में ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप हे एसे लक्षण कहिकें ''तस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' (तैत्ति.उप.२।१।१) वा ही शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मसों आकाश आदि सब जगत्की उत्पत्ति वर्णन करी हे. इन वाक्यन्में माया शबलित ब्रह्मसों जगत्की उत्पत्ति कहीं नहीं वर्णन करी हे. तासों व्यासजीने शुद्ध परब्रह्मकुं ही जगत्कारण कह्यो हे. तथा इन वाक्यन्के समान जिन वाक्यन्में आकाश प्राण आदिकन्सों सृष्टि वर्णन करी हे उन वाक्यन्में भी ''आकाशस्तल्लिङ्गात् अतएवप्राणः'' (ब्रह्मसूत्र१।१।२२) इत्यादि सूत्रन् करिके 'आकाश' 'प्राण' आदि शब्दन्कों ब्रह्मके वाचक कहि शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को कारण हे ये सिद्धान्त जतायो।।७८।।

तर्हि किं कारणम्? इति आकाङ्क्षायाम् आह अनाद्यविद्यया इति.

अनाद्यविद्यया बद्धं ब्रह्म तत्किल कारणम्।।

अनादिः अविद्या ''अहम् अज्ञः'' इति अनुभवसिद्धा भावरूपा. तेन बद्धं चैतन्यं तदध्यासाद् एतादृशं जगत्कारणम्. कार्यानुरूपस्यैव कारणस्य युक्तत्वात्. कार्यन्तु जगत्, जडात्मकं हेयं तुच्छनिष्ठम्, अतः कारणेनापि तथायुक्तेन भाव्यम् इति युक्त्याभासः. वस्तुतस्तु ''सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्'' (तैत्ति.उप.२।६) इति ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इति ''प्रजायेय'' (तैत्ति.उप.२।६) इत्यादिवाक्यैः स्वतःप्रमाणभूतैः निःसन्दिग्धं प्रतिपाद्यते कार्यरूपस्य जगतो ब्रह्मत्वम्.कुत्सितत्वं न क्वचिदपि ब्रह्मविदां हृदये भासते, यथा स्वाङ्गे पुरुषस्य. पृथग्भानएव तथा प्रतीतेः. अन्यथा बीजादीनां ब्रह्मत्वकथनं मलदृष्टान्तेन बाधितं स्यात्. तथा सति सर्वसन्मार्गनाशः. तथा वाक्याभासाः, ''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'' (बृहदा.उप.२।५।१९) ''अमृतापिधानाः'' (छान्दो.उप.३।८।१) ''वाचारम्भणं विकारः'' (छान्दो.उप.६।१।४) ''मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'' (श्वेता.उप.४।१०) इत्यादयः. एतेषां पदार्थप्राया माया

वाक्यविरोधेन न वाक्यार्थे सङ्गच्छते. तथा च यथायथं ‘माया’शब्देन क्वचिद् इन्द्रियवृत्तिः, क्वचित् प्रथमं कार्यं सूक्ष्मम्. ‘अनृत’शब्देन देहेन्द्रियादिकं ‘‘सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्’’ (तैत्ति.उप.२।६) इति ब्रह्मणएव देहेन्द्रियादिरूपत्वम् आत्मरूपत्वञ्च. नतु अत्र स्वप्नादिदृष्टान्तेन मिथ्यात्वं वक्तुं शक्यते, बाधश्रवणाच्च. ‘‘मिथ्यादृष्टिर् नास्तिकता’’ ‘‘मायेत्यसुराः’’ ‘‘असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्’’ (भग.गीता१६।८) इत्यादिवाक्यैः. साधकानि च सहस्रशो वाक्यानि सन्ति, ‘‘सभूतं स भव्यम्’’ (महाना.उप.१७।१३) इति ‘‘हरिरेव जगद्’’ इत्यादीनि. अतो बाधितोऽपि अविद्यावादः केषाञ्चिद् हृदये शमादिरहितानां चित्तदोषेण ‘‘जगद् दुष्टम्’’ इति पश्यतां प्रतिभातीति आह किल इति.

तन्मते बन्ध-मोक्षौ निरूपयति स्वाविद्यया इति.

स्वाविद्यया संसरति मुक्तिः कल्पितवाक्यतः।।७९।।

चैतन्यमात्रनिष्ठया जलावरणमलरूपया आत्मानं बहिर्मुखः संसारिणं मन्यते. तस्य च मोक्षः तेनैव विद्यावत्त्वेनैव कल्पितगुरोः उपदेशवाक्याद् इति।।७९।।

मायावादी श्रुति-सूत्रन्के मुख्य अर्थकुं नहीं मानें हे. याको बाध करिके मिथ्यावाक्य मिथ्यायुक्तिन् करिके ब्रह्मके जगत्कर्तापनेमें दोष लगावे हें. परब्रह्मकुं कारण नहीं माने हें. तब वे लोग जगत् बनायवे वारो कौनकुं माने हें? या आशङ्काकुं दूर करिवेके अर्थ मायावादी मतको वर्णन करें हें:

अनादि जो अविद्या अर्थात् जाको आदि नहीं हे एसे भावरूप अज्ञान करिके बंध्यो भयो जो साकार चैतन्य वो या जगत्को कारण हे. जेसो कार्य होवे हे कारण भी वाहीके अनुकूल वेसो ही होवे हे. कार्य जगत् जडरूप तथा हेय हे, कदर्य उत्पत्ति अन्तवारो हे. तासों कारण भी वेसो ही जड-हेय-तुच्छनिष्ठ होनो चहिये ये उनकी मिथ्या युक्ति हे.

सिद्धान्ततो ये हे : वेदव्यासजी महाराजनें ब्रह्मसूत्रन्में श्रुतिन्कुं ही प्रमाण मानी हे. लौकिक युक्तिन्कुं प्रमाण नहीं मानी हे. श्रुतिन्में ब्रह्मकुं कारण बतायो हे. ‘‘सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्’’ (तैत्ति.उप.२।६) या श्रुतिमें कार्यको भी ब्रह्मत्व कह्यो हे ‘‘स आत्मानं स्वयमकुरुत’’ (बृहदा.उप.१।४।३) या श्रुतिमें भगवान्नें अपने आत्माकुंही जगत्रूप कियो ये बात लिखी हे ‘‘बहुस्यां प्रजायेय’’ (तैत्ति.उप.२।६) या श्रुतिमें भगवान् ही बहुत रूप वारे होयवेकी इच्छा करते भये ये बात लिखी हे. उच्च-नीचादि भाव जगत्में दीखें हें तथापि ब्रह्ममें काहु प्रकारको दोष नहीं हे ये बात जताई. स्वयं प्रमाण वेदवाक्यन्सों कार्यरूप जगत्कुं ब्रह्मपनों सिद्ध कियो या ही कारण ब्रह्मज्ञानीन्कुं जगत्को तुच्छपनो अथवा कुत्सितपनो नहीं दीखे हे, निर्दोष ब्रह्मरूप ही दीखे हे. परन्तु जिनकी अविद्या दूर नहीं भई हे उन मनुष्यन्कुं ही जगत्में कुत्सितपनो आदि अनेक दोष दीखे हें. जेसें श्वेत शङ्ख पीलीया वारे मनुष्यकुं पीलो दीखे हे परन्तु शङ्ख तो सफेद ही हे याही प्रकार जगत तो ब्रह्मरूप ही हे, अज्ञानी लोगन्कुं अविद्या करिके अनेक दोषवारो दीखे हे. जेसें पुरुषकुं अपने अङ्गन्में कुत्सित्पनो नहीं मालुम पडे हे एसें ही ब्रह्मके साथ जगत्को अभेद मानवे वारे ज्ञानीन्कुं जगत् कुत्सित नहीं प्रतीत होवे हे. जहां भेद हे तहां ही कुत्सितत्वादि दोष प्रतीत होवे हें. जगत्कुं यदि कुत्सित मानोगे तो छान्दोग्यमें तथा गीतामें ‘‘बीजं मां सर्वभूतानाम्’’ (भग.गीता७।१०) या श्लोकमें बीजन्की ब्रह्मरूपता लिखी हे सो नहीं बन सकेगी. क्योंके जगतरूपी वृक्षकुं यदि कुत्सित-तुच्छ मानोगे तो जीवज, अण्डज तथा अन्नमय बीजकी मलतुल्यता भी कह सकेंगे, तो ब्रह्मपनो नहीं होयेगो. अर्थात् जगद्रूप वृक्षकुं तुच्छ मानोगे तो जगत्को बीज ब्रह्म भी तुच्छ भयो, तब तो ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ पञ्चाग्निविद्याके साधक जो श्रौतयज्ञादिकर्म तथा स्मृतिके बनाये ज्ञान होयवेके उपाय वृथा ही होंयगे. तब तो सब सन्मार्गको नाश होयगो इति.

आगे ईश्वरकों मायाकृत बन्ध होयवेमें मायावादीके मतानुसार प्रमाण दिखावे हें ‘‘इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते’’ (बृहदा.उप.२।५।१५). माया करिके बहुतरूप जाके हो रहे हें एसो परमेश्वर द्रष्टिगोचर होवे हे, या रीतिको या वाक्यको अर्थ मायावादी करे हें. परन्तु याको एसो अर्थ नहीं हे, अनेक रूपवारो परमेश्वर माया करिके अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियजन्य बुद्धिकी

वृत्तिन् करिके दर्शन्में आवे हे या रीतिको अर्थ हे. क्योंके या श्रुतिमें पहिलेके दोय पदमें विना ही माया बहुत रूप धारण करनो लिख्यो हे तासों बहुत रूप धारण करिवेमें माया कारण नहीं हे, बहुरूप वारे परमेश्वरके देखिवेमें माया सहायक मात्र हे.

ऐसेंही ''मायान्तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनन्तु महेश्वरम्'' (श्वेता.उप.४।१०) अर्थ:माया प्रकृतिसों कहे हें, प्रकृति सहित परमेश्वरकुं मायी जाननो. या वाक्यमें सत्य प्रकृतिको ग्रहण करनो मिथ्या मायाको ग्रहण नहीं करनो, क्योंके एकादशस्कन्धमें ''प्रकृतिर्ह्यस्योपादानम्'' (भाग.पुरा.११।२४।१९) या श्लोकमें प्रकृति-पुरुष-कालकुं भगवद्रूपता लिखी हे. ''अनृतापिधानाः'' ये श्रुति भी जगत्कुं मिथ्या नहीं कहे हे किन्तु दहरज्ञानीके मनोरथ अनृत करके अर्थात् देहेन्द्रियादिकन् करिके ढके भये इत्यादि अर्थकों कहे हे.

ऐसें ही 'वाचारम्भण' श्रुतिको भी कार्यकुं कारणात्मा मानिकें वाकुं सत्य कहिवेमें ही तात्पर्य हे. 'माया'शब्दके क्रिया, दम्भ, बुद्धि आदि अनेक अर्थ अनेकार्थकोशमें लिखे हें. वेदनिघण्टुमें माया, अभिख्या, वयुन इनकुं बुद्धिके नाम कहे हें. बुद्धि हे सो न्यारी-न्यारी इन्द्रियन् करिके नानाप्रकारकी होवे हे तासों ''मायाभिः'' (बृहदा.उप.२।५।१५) ये बहुवचन हे. ''मायां तु प्रकृतिम्'' (श्वेता.उप.४।१०) या वाक्यमें 'माया'नाम सृष्टिके आरम्भमें जो सूक्ष्म कार्य हे वाको हे. 'अनृत'नाम देहेन्द्रियादि-कको हे. यहां 'अनृत'नाम यदि मिथ्याको होय तो मिथ्या होय सो सत्य नहीं होय सके हे. यों तो आगेकी श्रुति ''सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्'' में अनृत तथा सत्यरूप होते भये ये बात लिखी हे. तासों या वाक्यको एसो अर्थ करनो ''अनृत जो देहन्द्रिया-दिक, सत्य जो जीवात्मा दोनोंरूप सत्य जो ब्रह्म हे सो ही होतो भयो''. याके आदिमें भगवान् बहुरूप होयवेकी इच्छा करते भये ऐसें लिखी हे. अन्त्यमें ''सत्यमभवत्'' अर्थात् सत्य ही होतो भयो ये लिखी हे. 'अनृत'शब्दकुं यदि मिथ्यावाची मानोगे तो आद्यन्तसों विरोध आवेगो. तासों स्वप्नके द्रष्टान्तसों जगत्कुं भ्रमरूप नहीं मान लेनो. ''असत्यम् अप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्व-रम्'' (भग.गीता१६।८) या गीतावाक्यमें जगत्कुं असत्य मानवेवारेन्कुं आसुरजीव कह्यो हे. तथा ''यद्भूतं यच्च भव्यम्'' (ऋग्वेद.मण्ड.१०।९०।२) ''हरिरेव जगत्सर्वम्'' इत्यादि सहस्रवाक्यन्में जगत् भगवद्रूप मान्यो हे. या प्रकार अनेक प्रमाणन्सों खण्डन कियो भयो भी अविद्यावाद चित्तदोष करिके जगत्कुं दोष सहित मानवे वारे शमदमादि साधन रहित पुरुषन्के हृदयसों दूर नहीं होवे हे, उनके हृदयमें वेसो ही भासमान होतो रहे हे.

मायावादीके अनुसार बन्ध-मोक्ष दिखावे हें.

उनके मतमें प्रदेशविशेषमें जलको जो आवरण मल ताके स्थानापन्न अविद्या करिके निष्फल ब्रह्म अपने स्वरूपको ज्ञान भूल जावे हे तब बहिर्मुख होयके आपुन्कों संसारी माने हे ये ही बन्ध हे. मूल अज्ञानसों छूट जानो ही मोक्ष मानें हे. कल्पना करिके ज्ञानवान् माने गये गुरुके उपदेशवाक्यकों ही मोक्षको साधन माने हें तथा जितने लौकिक-वैदिक यज्ञ, भक्ति आदि साधननकुं भ्रमात्मक जगन्मध्यपाति मानिके मिथ्या बतावे हें।।७९।।

ननु एवमेव अस्तु शास्त्रार्थः, को दोषः? इति चेत् तत्र आह एवं प्रतारणाशास्त्रम् इति.

एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्यनाशकम्।।
उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुति-स्मृतिविरोधतः।।

यथा प्राणिनो भगवद्विमुखाः भवन्ति तथोपायो रचितः. ननु अत्र किञ्चित् ज्ञातव्यम् अस्ति. तत्र हेतुम् आह सर्वमाहात्म्यनाशकम् इति. यद्धि सर्वोपास्यं तस्य माहात्म्यं नाशयति, सर्वेश्वरः सर्वकर्त्ता सर्वकारणरूपः इत्यादिरूपम्. तर्हि एतन्मतं सर्वं लिखित्वा दूषणीयम् इति चेत्, न, इति आह उपेक्ष्यम् इति. असद्भावनया स्वस्यापि बुद्धिनाशः स्यात् अतः तत्र उपेक्षैव कर्तव्या सुतरां भगवद्भक्तैः, भक्तिमार्गविरोधात्. दूषणम् आह श्रुतिस्मृतिविरोधतः इति. स्वप्रकरण-पठितैः ''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्ति.उप.३।६) इति ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रल-स्तथा''(भग.गीता७।६) इति वाक्यसहस्रैः मायावादो विरुद्ध्यते.

सर्वेषाम् आदरान्यथानुपपत्तिं परिहरति कलौ तदादरो मुख्यः इति.

कलौ तदादरो मुख्यः फलं वैमुख्यतस्तमः।।८०।।

तत्रापि हेतुः फलं वैमुख्यतः इति. भगवद्वैमुख्यात् तमो भावि।।८०।।

या रीतिको मोह करायवे वारो शास्त्र प्राणिनकुं भगवान्सों विमुख करिवेके अर्थ बनायो हे. या रीतिके शास्त्रमें कोई भी बात जानिवे योग्य नहीं हे. भगवान् सबके ईश्वर हें, सबके कर्ता हें, कारणके भी कारण हें या रीतके सर्वोपास्य पुरुषोत्तमके माहात्म्यको नाश करिवेवारो ये मायावाद भक्तिमार्गको विरोधि हे, तासों भगवद्भक्तन्कुं या मतकी उपेक्षा कर देनी चहिये.

या मायावादमें ''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्ति.उप.३।६) ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलय-स्तथा'' (भग.गीता१०।८) इत्यादि हजारन् वाक्यको विरोध हे. कलियुगमें या मतको बहुत आदर हे, या करिके आसुरजीव भगवान्सों विमुख होयकें तमके भागी होंयगे।।८०।।

ननु स्वात्मज्ञानान् मोक्षः सिद्ध्यत्विति प्रपञ्चनिवृत्त्यर्थं प्रपञ्चस्य अज्ञानकार्यत्वम् उच्यते.

ज्ञाननाश्यत्वसिद्ध्यर्थं यदेतद् विनिरूपितम्।।

तदन्यथैव संसिद्धिं विद्याऽविद्यानिरूपणैः।।८१।।

यतो ज्ञानम् अज्ञानस्यैव नाशकमिति सकार्याम् अविद्यां विद्या नाशयत्विति जगतो मायिकत्वं प्रतिपाद्यते, इति चेत्, तत्र आह तदन्यथैव संसिद्धम् इति. नहि ब्रह्मविद्यायां प्रपञ्चविलयो अपेक्ष्यते. तथा सति प्रलयवत् सर्वेषाम् अना-दरणीयता स्यात्. अतो विद्याविद्यानिरूपणैः साधनशास्त्रैरेव अन्यथासिद्धमिति न तदर्थं प्रपञ्चविलयो वक्तव्यः. ''वि-द्याञ्चाविद्याञ्च'' (ईशोप.११) इत्यादि श्रुतयो अत्र अनुसन्धेयाः. हृदये स्वयं भासमानो भगवान् मोक्षं दास्यति, किं प्रपञ्चविलयेन? इति भावः।।८१।।

शङ्का:आत्मज्ञानसों मोक्ष होवे हे. यासों विद्या अर्थात् ज्ञान हे सो जगद्रूप कार्य सहित अविद्याको नाश करे हे. जगत्कुं मायिक अर्थात् अविद्याको कार्य मानें हे, क्योंके जगत् यदि अविद्याको कार्य न होय तो ज्ञानसों केसें निवृत्त होय.

उत्तर:अविद्याको कार्य अहन्ता-ममतारूप संसार ही हे, जगत् अविद्याको कार्य नहीं हे. एवञ्च विद्या अर्थात् ज्ञानसों भी अहन्ता-ममतारूप संसारको ही नाश होवे हे, जगत्को नाश ज्ञानसों नहीं होय हे. ब्रह्मज्ञानमें जगत्के लय होयवेकी अपेक्षा नहीं हे. एसें ही होतो तो जेसें प्रलयकु कोई पुरुषार्थ नहीं समुझे हे एसे ही ब्रह्मविद्या भी अनादर करिवेयोग्य होय जायगी तासों विद्यासों अविद्याकी निवृत्ति करिवेवारे शास्त्रन्सों प्राप्त होतो ज्ञान अज्ञानत्मक अहन्ता-ममतारूप संसारकी निवृत्ति करे हे ये ही बात सिद्ध होय हे. अतः मोक्षको अर्थ:जगत्को लय होनो एसे नहीं कहेनो चहिये. ''विद्याञ्चाविद्याञ्च'' (ईशोपनि.११) या श्रुतिके अन्तमें भी ''विद्ययामृतमश्नुते'' या वाक्यमें ब्रह्मसाक्षात्कार करिके अमृत-मोक्षकी प्राप्ति लिखी हे. तासों हृदयमें भास-मान भये भगवान् स्वयं मोक्ष देंयगे, जगत्के लय होयवेसों कहा प्रयोजन हे?।।८१।।

ननु पुराणेषु मायिकत्वं श्रूयते प्रपञ्चस्य ''विद्धि माया मनोमयम्'' (भाग.पुरा.११।७।७) ''त्वय्युद्धवाश्रयति'' (भाग.पुरा.११।१९।७) इत्यादिषु. ततो लाघवात् मायावादएव बुद्धिसौकर्याद् अङ्गीकर्तव्यः इति आह यन्मायिकत्व-कथनम् इति.

यन्मायिकत्वकथनं पुराणेषु प्रदृश्यते।।

तदैन्द्रजालपक्षेण मतान्तरमिति ध्रुवम्।।

एवम् अनूद्य परिहरति तदैन्द्रजालपक्षेण इति. सृष्टिभेदेषु ऐन्द्रजालपक्षो निरूपितः. सएव पुराणेषु वैराग्यार्थं निरूप्यते. अतो न वस्तुनिरूपकं किन्तु तन्मतान्तरम् असुरव्यामोहजनकम्. पुराणानि भगवल्लीलाप्रतिपादकानि भगवच्चरित्रवद् दैत्यानं मोहम् उत्पादयन्ति.

एवमेवेति अत्र उपपत्तिम् आह नास्ति श्रुतिषु इति.

नास्ति श्रुतिषु तद्वार्ता दृश्यमानासु कुत्रचित्।।८२।।

यदि जगतो मायिकत्वं ज्ञानार्थं कर्मार्थं वा अभिमतं स्यात् तदा काण्डद्वयमध्ये क्वचिदुक्तं स्यात्. ननु सर्वे वेदाः त्वया न ज्ञायन्तइति कथं ज्ञायते न उक्तम्? इति चेत् तत्र आह दृश्यमानासु इति. एकादशशाखाः साम्प्रतं प्रचरन्ति, तासु न दृश्यते इति अर्थः।।८२।।

पुराणन्में जो कहुं-कहुं ''विद्धि मायामनोमयम्'' (भगा.पुरा.११।७।७) ''त्वय्युद्भवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारः'' (भाग.पुरा.११।१९।७) इत्यादि स्थलन्में जगत्कुं मायिक बतायो हे सो या ग्रन्थमें पहिले कहे भये वैदिक सृष्टिके प्रकारन्में इन्द्रजालके समान जो सृष्टिको प्रकार लिख्यो हे-जा सृष्टिके भगवान् उपादान कारण नहीं हे केवल मायाद्वाराही होय हे-वो भगवान्को वैराग्यगुण दिखायवेके अर्थ कियो हे. वाही मिथ्या सृष्टिको निरूपण पुराणन्में कहुं-कहुं हे सो लोग जगत्कुं मिथ्या समुझिके अहन्ता-ममता छोड देंगे तो उनकुं वैराग्य सिद्ध हो जायगो याके अर्थ कियो हे.

या पक्षसों पदार्थको ज्ञान नहीं होय हे किन्तु ये मतान्तर हे, आसुरजीवन्कुं मोहजनक हे. भगवल्लीलाके कहिवे वारे पुराण अवतारन्में आसुरजीवन्की भक्ति जा तरेहसुं नहीं होय वा तरेहसुं मोहक चरित्रको वर्णन करे हें. जेसें शाल्व दैत्यके लाये भये मिथ्या वसुदेवके मस्तकको खण्डन देखिके श्रीकृष्णको शोच करनो मतान्तरके अभिप्रायसों शुकदेवजीनें भागवतमें लिखिकें वाको खण्डन कर दीनो हे एसें ही जगन्मिथ्यापक्ष लिखिके पुराण दैत्यनकुं मोह करावे हें. जगत्के मिथ्यापनेको ज्ञानमें अथवा कर्ममें उपयोग होय तो वेदके दोउ काण्डमें लिख्यो दीखवेमें आनो चहिये. कदाचित् कहोगे के सब वेदकों आप जानो नहीं हो तब केसें मालुम पडी के वेदमें नहीं लिख्यो हे?

तहां आप आज्ञा करे हें के या समयमें वेदकी ग्यारह शाखाको प्रचार हे. उनमें कहुं नहीं लिख्यो हे. उन शाखान्के नाम या प्रकारहें:

१.तैत्तिरी २.काण्वी ३.माध्यन्दिनी ४.मैत्रायणी ५.मानवी ये पांच यजुर्वेदकी शाखा हें. हिरण्यकेशी तैत्तिरीको ही नामहे.
६.शांखायनी ७.आश्वलायनी ये दो ऋग्वेदकी शाखाहें. ८.कौथुमी ९.राणायनी ये दो सामवेदकी शाखाहें. १०.शौनकी तथा ११.पैप्पलादी ये दो शाखा अथर्ववेदकी हें।।८२।।

ननु अस्ति सामशाखायाम् उत्तरकाण्डे वाचारम्भणवाक्यम् इति चेत् तत्र आह वाचारम्भणवाक्यानि इति.

वाचरम्भणवाक्यानि तदनन्यत्वबोधनात्।।
न मिथ्यात्वाय कल्प्यन्ते जगतो व्यासगौरवात्।।८३।।

अत्र उपक्रमे ''कतमः स आदेशः'' (छान्दो.उप.६।१।३) इति प्रश्ने ''यथैकेन मृत्पिण्डेन'' (छान्दो.उप.६।१।४) इत्यादिदृष्टान्तैः सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिरिव निरूपिता. दृष्टान्ते कार्य-कारणयोः उभयोरपि प्रत्यक्षत्वम्, दार्ष्टान्तिकेषु कार्यं प्रत्यक्षसिद्धं, कारणं श्रुतिसिद्धम्, कारणताप्रकारश्च. तत्र कार्य-कारणयोः अभेदो बोधनीयः. अन्यथा एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न स्यात्, प्रकारभेदानाम् अज्ञानात्. अतः कार्यप्रकाराः व्यवहारार्थं वाचा सङ्केतिता घटः, पटः इत्यादयः, नतु तेन रूपेण तेषां वस्तुत्वम्. तथा सति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न भवेत्. सत्यता तु ''मृत्तिकेत्येव'' (छान्दो.उप.६।१।४) इति कारणत्वेनैव. अतः कार्याणां तदनन्यत्वमेव श्रुत्या बोध्यते, नतु मिथ्यात्वं, शुक्तिरजतवत्. अन्यथा शुक्तिरजतादिकमेव दृष्टान्तीक्रियते. नापि तत्र सामान्यलक्षणा सम्भवति, भ्रमाणाम् अनन्तरूपत्वात्. तस्माद् वाचारम्भणवाक्यानि जगतो मिथ्यात्वाय न कल्प्यन्ते. तथैव आह सूत्रकारः ''तदनन्यत्वम् आरम्भण-

शब्दादिभ्यः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।१४) इति. ननु यथा व्यासो महान् तथा शङ्करादिरपि; ततः तद्विरोधात् कथम् एवं निर्णयः? तत्र आह व्यासगौरवाद् इति. व्यासो अस्माकं गुरुः अतो व्यासाभिप्रेतविरुद्धं नाङ्गीक्रियते इति अर्थः।।८३।।

सामवेदकी शाखामें 'वाचरम्भण' श्रुतिसों जगत्‌को मिथ्यात्व सिद्ध होय हे एसे कहिवे वारे मायावादीके प्रति 'वाचा-रम्भण' श्रुतिको ठीक-ठीक अर्थ दिखावे हें.

''वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'' या श्रुतिके आरम्भके पूर्व मृत्तिकापिण्डको दृष्टान्त दियो हे. जेसे एक मृत्तिकापिण्डके जानिवेसों जितने माटीके बने पदार्थ हें उनको ज्ञान होवे हे या प्रकार सामान्य रीतिसों ब्रह्मको लक्षण दिखायो. दृष्टान्तमें कारण मृत्तिका तथा कार्य घडा-चप्पन आदि प्रत्यक्ष दीखवेमें आवे हें. जाके अर्थ दृष्टान्त दियो वा दार्ष्टा-न्तिकमें कार्य-जगत्‌के पदार्थ तो दीखवेमें आवे हे, कारण जो ब्रह्म हे सो केवल शास्त्र मात्रसों जान्यो जाय हे. तथा जेसे मृत्ति-कासों घटको भेद नहीं हे या प्रकार ब्रह्मसों भी जगत् अलग नहीं हे. यदि अलग होय तो ब्रह्मज्ञान् सों जगत्‌को ज्ञान नहीं होय सके. अनेक घट-पट आदि पदार्थनकुं व्यवहारमें लायवेके अर्थ ''एसो होय तासों घडा कहनो''-''एसो होय तासों कूंडा कहनो'' या रीतिसों नाम धरि दीने हें. विचारपूर्वक देख्यो जाय तो ये सब मृत्तिका ही हे, तासों ''मृत्तिका सत्य हे'' या श्रुतिसों कार्य जो हे सो कारणसों अलग नहीं हे ये बात जताई हे.

जगत् मिथ्या हे ये बात श्रुतिन्सों नहीं सिद्ध हो सके हे. एसो ही यदि श्रुतिको अभिप्राय होतो तो ''छीपमें जो चांदीको भ्रम होवे हे सो चांदी मिथ्या हे'' एसो ही दृष्टान्त देनो योग्य हतो. जगत् यदि मिथ्या होय तो सत्य ब्रह्मज्ञान्सों मिथ्या जगत्‌को ज्ञान केसे सम्भव होय सके हे तथाच एक ज्ञान् सों सर्व पदार्थको ज्ञान हो जायवेकी जो प्रतिज्ञा हे ताकी हानि होय हे, तासों जगत्कुं मिथ्या बनायवेके अर्थ ये श्रुति नहीं हे. सूत्रकार वेदव्यासजीनें भी ''तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः'' (ब्रह्म-सूत्र२।१।१४) या सूत्रमें जगत्‌को ब्रह्मके साथ अभेद ही सिद्ध कियो हे.

शङ्का:कदाचित् कहोगे के जेसे व्यासजी बडे हें वेसे शङ्कराचार्यजी भी तो बडे हें, उनके वाक्यन्कुं भी प्रमाण माननो चहिये आपके करे निर्णयमें तो शङ्कराचार्यके वचनन्को विरोध आवे हे.

समाधान:तहां आज्ञा करें हें व्यासजी हमारे गुरु हें अर्थात् वेदान्तविचार करिवेवारे हम सबनके निर्वाह करिवेवारे हें. तात्पर्य ये हे के व्यासजी सूत्रन्कुं बनायकें श्रुतिके सन्देहन्कों नहीं मेटते तो हम वेदान्तविचार कैसे करि सकते तासों व्यासजीके अभिप्रा-यसों विरुद्ध मतकुं हम नहीं मानें हें।।८३।।

ननु सर्वेषां विचारो महान्. तत्र सूत्रेषु उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तायाअपि वक्तव्यत्वात् कथम् एकान्ततो निर्णयः? सृष्ट्यादिवाक्यानि अर्थवादरूपाणि अतः तेषां स्तावकत्वमेव मुख्यमिति सृष्ट्यादौ तात्पर्याभावात् ज्ञानस्यैव फलसाध-कत्वात् क्रियावद् ज्ञानस्य अर्थवादवाक्यप्रयोजनाभावाद् वस्तुस्वरूपज्ञाने कार्यापेक्षया विवर्तस्य प्रयोजकत्वात् मिथ्या-त्वमेव स्वीक्रियताम् इति आह ज्ञानार्थम् इति.

ज्ञानार्थम् अर्थवादश्चेच्छ्रुतिः सृष्ट्यादिरूपिणी।।
अनङ्गीकरणाद्युक्तं विधिमाहात्म्ययोर्न तत्।।८४।।

परिहरति अनङ्गीकरणाद् इति. भवेद् एतदेवं यदि मिथ्यावादिमते सृष्ट्यादिवाक्यैः सह महावाक्यस्य एकार्थता सम्भवति. पूर्वकाण्डे विध्येकवाक्यता अर्थवादानां ''स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः'' (मीमां.सूत्र१।२।७) इति उत्तरकाण्डे ब्रह्मवादिनां माहात्म्यज्ञानेन एकवाक्यता. अन्येषां मतेतु न वेदान्तेषु माहात्म्यज्ञानम् उपयुज्यते, नापि विधिः. अतएव एकवाक्यताभावात् न एवम् अर्थः स्वीकर्तव्यः।।८४।।

शङ्का:वेदार्थ जानिवेके अर्थ विचार ही बडो साधन हे. विचारके द्वारा व्याससूत्रको अर्थ अन्य आचार्यन्नें भी कह्यो हे तहां आपको ही कियो अर्थ व्यासजीके सम्मत हे अन्यको कियो अर्थ व्यासजीके अभिप्रायके विरुद्ध हे या बातको निर्णय केसे होय? तासों विचार करनों ही योग्य हे. तहां मोक्षको देवे वारो ज्ञान हे. सृष्टिके कहिवे वारे वेदके जितने वाक्य हें वे सब अर्थ-वादरूप हें, अर्थात् स्तुति करिवे वारे हें. तथा जगत्कों यदि ब्रह्मको कार्य मानोगे तो ब्रह्म विकार वारो माननो पडेगो, क्योके कारणमें कछु विकार भये विना वो कार्यरूप नहीं बन सके हे. तथा कार्यके द्वारा कारणको विलम्बसों ज्ञान होय हे, विर्वत (भ्रम)के द्वारा भ्रमके आधारको शीघ्र ज्ञान होवे हे तासों जगत्कुं मिथ्या भ्रमरूप ही माननो उचित हे.

उत्तर:तुमारे मतमें सृष्टिवर्णन करिवेवारे वाक्यन्की ''तत्वमसि'' आदि महावाक्यन्के साथ एकवाक्याता नहीं सम्भव हो सके हे क्योंके तुमारे मतमें तो ज्ञान ही मोक्षको साधन हे, अर्थात् मोक्षके देवेमें असहायशूर हे. तासों सृष्ट्यादि वाक्य व्यर्थ ही होंयगे, क्योंके ''तत्वमसि'' ये वाक्य विधिरूप नहीं हे तासों सृष्ट्यादि वाक्य कोनकी स्तुति करिवे वारे होंयगे? स्तुति करिवे वारे भये विना एकवाक्यता होनी दुर्घट हे. अतएव जगन्मिथ्यात्वरूप अर्थ भी नहीं मानवे योग्य हे.

हमारे ब्रह्मवादीन्के मतमें तो पूर्व काण्डमें यज्ञादिकन्में प्रवृत्ति करिवेके अर्थ विधिकों जेसे अर्थवादकी अपेक्षा रहे हे तेसें उत्तर काण्डके ज्ञानवाक्य भी जननादि माहात्म्यज्ञानके द्वारा ब्रह्मज्ञान सिद्ध होयवेके अर्थ सृष्टिवाक्यन्की अपेक्षा राखे हें, तासों एकवाक्यता बन सके हे. क्योंके जिन वाक्यन्को प्रयोजन एक होय तथा परस्पर आकांक्षावाले होंय उन वाक्यन्की एक-वाक्यता होवे ये एकवाक्यताको लक्षणहे।।८४।।

ननु अस्तु एकवाक्यतायां प्रकार: अध्यारोपापवादः. पूर्वश्रुत्या प्रथमं जगज्जननम् उक्त्वा कर्तृत्व-भोक्तृत्वे ब्रह्मणि प्रतिपाद्य तद्द्वारा सोपाधिके ब्रह्मणि बुद्धौ सिद्धायां, शाखारुन्धतीन्यायेन पूर्वोक्तम् अपोह्य कर्तृत्वाद्यपेतं पश्चाद् ब्रह्म बोध्यते इति आह अपवादार्थम् इति.

अपवादार्थमेवैतद् आरोपो वस्तुतो न हि।।
दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थम् इति चेत् तन्न युज्यते।।८५।।

एतस्य कर्तृत्वादे: आरोप:. तस्य प्रयोजनम् दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थम् इति. अतो न ब्रह्मणि वस्तुतः कर्तृत्वम्, इति चेत्, न एवं वक्तुं युक्तम्।।८५।।

शङ्का:जेसे कोई पुरुष अरुन्धतीके ताराकों नहीं जानतो होय वा पुरुषकुं अरुन्धतीको ज्ञान करायवेके अर्थ जा वृक्षकी शाखाके ऊपर अरुन्धतीको तारा होय वा शाखाकुं अरुन्धतीके नामसों बतावे हें. ता पीछे मुख्य अरुन्धतीको ज्ञान करवायके शाखामें अरुन्धतीके ज्ञान्कुं दूर करदे हें. एसें ही निराकार ब्रह्मज्ञान करायवेके अर्थ सृष्टिवाक्यन् करिके ब्रह्मकुं कर्ता-भोक्ता बतायकें मायिक सगुण ब्रह्मको ज्ञान करावे हें. ता पीछें वाक्यन् करिके कहे भये कर्ता भोक्तापनेको निषेध करिके शुद्ध ब्रह्मको ज्ञान वेद करावे हे. तासों ज्ञानवाक्यन्कुं कर्ता-भोक्तापनेको निषेध करिवेके अर्थ पहिले झूठो कर्ता-भोक्तापनो नहीं भये विना निषेध कायकी करी जाय? तासों वाक्यन्सों कर्ता-भोक्तापनेको प्रतिपादन करिवेवारे सृष्टिवाक्यन्की अपेक्षा हे. यासों एकवाक्यता बन सके हे.

उत्तर:जेसे वन्ध्याके पुत्रको निषेध करिवेके अर्थ कोई झूठो वन्ध्याको पुत्र बनावे तो वो पुत्र वाणीमात्रमें ही आ सके हे, इन्द्रियन्सों वाकी प्रतीति नहीं होवे हे. एक ही इश्वरमें कर्ता-भोक्तापनेको निषेध करिवेके अर्थ वेदमें सृष्ट्यादि वाक्यन् करिके मिथ्यासृष्टिकी कल्पना करी होय तो ये जगत् वाणीमात्रमें आनो चहिये, प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होनो चहिये।।८५।।

तत्र हेतुः मुख्यार्थबाधनम् इति.

मुख्यार्थबाधनं नास्ति कार्यदर्शनतः श्रुतेः।।

ऐन्द्रजालिकपक्षेऽपि तत्कर्तृत्वं नटे यथा।।८६।।

अपवादार्थं जगत्कथने तस्य सती प्रतीतिः न स्यात्. न हि जगत्प्रतीतिः वेदसिद्धा येन प्रथमं बोधयति पश्चात् निषेधति; लोकसिद्धा हि एषा, तथा च तत्कर्तारमेव आह. जगदनूद्य तत्कतृत्वं बोधयित्वा यदि हि निषेधं कुर्यात् तदा कार्यस्य विद्यमानत्वात् कर्त्रन्तराभावाच्च बाधितविषया स्यात्. सर्वतो बलवती हि अन्यथानुपपत्तिः. वेदोऽपि स्वभ्रान्तिकल्पितः इति महत्साहसम्. किञ्च स कल्पको न अस्मदादिः, तथा सति पारम्पर्यं न उपपद्येत. ''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' (ब्रह्मसूत्र२।२।२९) इति न्यायविरोधश्च. अतः प्रपञ्चप्रतीतेः विद्यमानत्वात् मुख्यार्थबाधनं नास्ति.

अथ ग्रहिलतया मायासहितस्यैव कर्तृत्वम् अङ्गीक्रियते, प्रपञ्चस्य च मायिकत्वं, तदा लौकिकमायिनो दृष्टान्तीकर्तव्यः. तत्रच तादृशप्रदर्शनसामर्थ्यरूपमन्त्रादिना कर्तृत्वं नटे वर्ततएव इति आह ऐन्द्रजालिकपक्षेऽपि इति. दर्शनन्यायश्रुतिभिः न जगतो मिथ्यात्वम् इति भावः।।८६।।

शङ्का:जगत्की प्रतीति वेदसिद्ध नहीं हे तासों वेद पहिले कहिके फिर निषेध कर सके हे.

समाधान:जगत् तो प्रत्यक्ष दीख ही रह्यो हे, तासों वेद तो या जगत्के करिवे वारेकुं बतावे हे. कहोगे के वेद हे सो जगत्को करिवे वारो ईश्वर हे ये पहिली कहके पीछें कहे हे जगत्के करिवे वारो ईश्वर नहीं हे, ईश्वरतो अकर्ता हे, तब तो कार्यरूप जगत् तो विद्यमान ही हे, ईश्वर विना अन्य कोई कर्ता होय नहीं सके हे, फिर वेदको अकर्तापनेंको कथन असम्भव होयवेसों वञ्चक मनुष्यके वचनके समान भयो.

ओर वेद भी भ्रम करिकें कल्पित हे एसें कहोगे तो नास्तिकके समानता तथा दुराग्रहीपनो प्राप्त होयगो. वेद यदि अस्मदादिकनकी कल्पनासों बन्यो होय तो वेदके पढवे-पढायवेकी परम्परा अनादिसु चली आवे हे वो नहीं बन सकेगी. तथापि यदि जगत्कुं मिथ्या मानोगे तो ''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' (ब्रह्मसूत्र२।२।२९) या व्याससूत्रसों विरोध आवेगो. क्योंके या सूत्रमें स्वप्नादिकन्के तुल्य जगत् नहीं हे ये बात स्पष्ट लिखी हे. तासों प्रत्यक्ष विद्यमान जगत्रूप कार्यको कर्तापणों जो वेदने ब्रह्ममें बतायो हे ताको निषेध नहीं करनो.

मायावादी यदि हठ करिकें मायासहित ब्रह्मकुं जगत्को कर्ता मानेंगे तथा जगत् माया करिके बन्यो भयो मानेंगे तब तो जेसे नट मन्त्र-तन्त्रादिकन् करिके मिथ्या वृक्षादिकन्कुं दिखावे हे तथा उनको कर्ता नट ही कहावे हे एसें ही मायिक जगत्को कर्ता ईश्वर ही भयो।।८६।।

मिथ्यात्वाङ्गीकारे बाधकम् आह मुक्तिस्तदा इति.

मुक्तिस्तदातिनष्टा स्यात् स्वप्नदृष्टगजेष्विव।।

कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्य कल्पितत्वे तन्मध्यपातात् मनुष्यादीनां मुक्त्यर्थं प्रयत्नो व्यर्थः स्यात्. न हि मायायां प्रतीताः पारावताः कदाचिदपि मुच्यन्ते, नापि स्वप्नदृष्टाः गजाः. अतो अखिलजगत्साक्षी भगवानेव मुच्येत नतु अस्मदादयः, तन्मायापरिकल्पितत्वात्. तथा सति व्यर्थः पारलौकिकप्रयासः. अस्मदज्ञानपरिकल्पितत्वन्तु मोहार्थमिति पक्षद्वयेऽपि मायावादो बाधितः. उपहितचैतन्यरूपभगवन्मायापक्षे अस्मदज्ञानपरिकल्पनापक्षे च.

स्वप्रवृत्तिविघातेन गुर्वादीनां च दूषणात्।
मायावादो न मन्तव्यः सर्वव्यामोहकारकः।।

ननु अस्तु मायैव कर्त्री, तदुपहितो जीवो वा ''ब्रह्म तूभयबिम्बरूपम्'' इति श्रुतौ तत्कर्तृत्वं बोध्यते इति आशङ्क्य आह मायादीनां च कर्तृत्वम् इति.

मायादीनाञ्च कर्तृत्वं श्रुतिसूत्रैर्विबाध्यते।।८७।।

‘‘कथमसतः सज्जायेत’’ (छान्दो.उप.६।२।२) ‘‘स ईक्षां चक्रे’’ (प्रश्नोपनि.६।३) ‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ (ब्रह्मसूत्र१।१।४) ‘‘कामाच्च नानुमानापेक्षा’’ (ब्रह्मसूत्र१।१।१७) ‘‘नेतरोऽनुपपत्तेः’’ (ब्रह्मसूत्र१।१।१५) इत्यादिश्रुतिसूत्रैः मायायाः प्रकृतेः जीवस्य च कर्तृत्वं निषिध्यते।।८७।।

जगत्कुं मिथ्या मानिवे पर स्वप्नमें देखे गये हाथीकी मुक्तिके समान् संसारी जीवकी मुक्ति अति नष्ट हो जायगी.

या पक्षमें मुक्तिको अत्यन्त नाश प्राप्त होवे हे. क्योंके सब जगत् जब इन्द्रजालके समान कल्पित हे तब तो मनुष्य भी जगत्में आयगये इतनें वे भी मिथ्या–कल्पित ही भये. तब तो इनको मुक्तिके अर्थ प्रयत्नकरनो वेसे ही वृथा होयगो जेसे इन्द्रजालके बने भये कबूतर आदि पदार्थन्को कभी मोक्ष नहीं होवे हे, जेसे स्वप्नके हाथीकी मुक्तिके अर्थ कोई भी पुरुष प्रयत्न नहीं करे हे. या पक्षमें जगत्के साक्षी भगवान् ही मुक्त माने जायेंगे. उनकी मायाके बने भये अस्मदादिक जीव सब बद्ध ही रहेंगे. तब तो परलोककी प्राप्ति हायवेके अर्थ जो शास्त्रमें साधन लिखे हें उनको परिश्रम व्यर्थ ही होयगो.

वाचस्पतिमिश्र कहे हें ‘‘जगत् जीवके अज्ञानको बनो भयो हे’’ ये उनको कहनो धोका देवेके अर्थ हे.

‘‘सूर्याचन्द्रमसौ’’ (ऋग्वेद:१०।१९०।१) या श्रुतिमें सूर्यादि सब पदार्थकों ब्रह्मके बनाये भये कहे हें. यासों भी विरोध आवे हे.

किञ्च इन दोउ पक्षन्में जीवकी मुक्तिमें प्रवृत्तिको विघात होवेगो तथा शिष्य–शास्त्र–गुरु ये सब मिथ्या ही होवेंगे. तासों सबन्कुं मोह करायवे वारो मायावाद नहीं माननो चहिये.

शङ्का:सांख्यकी रीतिसों माया जगत्की करिवेवारी हे एसो माननो; अथवा माया करिके (उपहित) चारों ओरसों ढक्यो भयो जीव ही जगत्को करिवेवारो हे ऐसो माननो. ईश्वर तो मायाको अथवा जीवको बिम्बरूप हे. मेघन्के चलवेमें जेसे चन्द्रमा चले हे एसो प्रतीत होवे हे एसें ही मायादिकन्के जगत् बनायवेमें ब्रह्म जगत् बनावे हे एसी प्रतीति होवे हे. तासों वेदमें ब्रह्मकुं जगत्को कर्ता कह्यो हे.

उत्तर:‘‘कथमसतः सज्जायेत’’ (छान्दो.उप.६।२।२) अर्थ:असत् अर्थात् झूठे पदार्थसुं सत्य पदार्थ केसें बन सके हे? ‘‘यदिदं किञ्च तत्सत्यम्’’ (तैत्ति.उप.२।६) इत्यादि श्रुतिन्सों सिद्ध होवे के ब्रह्म भी सत्य हे तथा जो कछु पदार्थ प्रत्यक्ष दीखें हे वे भी सब सत्य हें. या श्रुति करिके मायाके कर्तापणेको निषेध सिद्ध होवे हे. ‘‘नेतरोनुपपत्तेः’’ (ब्रह्मसूत्र१।१।१५). या सूत्रसों भी जीवके कर्तापणेको निषेध व्यासजीने कियो हे. जा समय सृष्टिकी आदिमें जीवन्के शरीर ही पैदा नहीं भये वा समयमें शरीर विना जीव जगत्कुं कैसे बनाय सके हे? एसें अनेक श्रुति–सूत्रन करिके जीव तथा माया कर्ता नहीं बन सकें हे ये सिद्ध होवे हे।।८७।।

ननु ब्रह्मणि कर्तृत्वनिषेधः श्रूयते अस्थूलादिवाक्यैः. तथा निरञ्जनश्रुतिः ‘‘अकर्ता अभोक्ता च’’ इति. ‘‘अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते’’(भग.गीता३।२७) इति एतद् अन्यथानुपपत्त्या, कर्तृत्वस्य भ्रान्तिसमानाधिकरणत्वं लोके दृष्टमिति दूषणभयाद् ब्रह्मणि कर्तृत्वं न अङ्गीक्रियते इति आशङ्क्य आह अकर्तृत्वञ्च इति.

अकर्तृत्वञ्च यत्तस्य माहात्म्यज्ञापनाय हि।।

ब्रह्मणि अलौकिकं कर्तृत्वं वदन् अकर्तृत्वम् आह लौकिककर्तृत्वनिषेधार्थम्. अन्यथा ‘‘अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा’’ (भग.गीता७।६) इति स्वयं पश्चात् कर्तृत्वम् उच्यमानं विरुद्ध्येत. एतदेव अभिसन्धाय केनचिद् उक्तं ‘‘न प्रमाणमनाप्तक्तिर्नादृष्टे क्वचिदाप्तता, अदृश्यदृष्टौ सर्वज्ञः’’ (न्यायकुसुमाञ्जलि:३।१६) इति. अतो माहा–

त्म्यज्ञापनार्थमेव अकर्तृत्वकथनम्, यथा ''पुरुष एवदं सर्वम्'' (ऋग्वेद:१०।९०।२) ''उतामृतत्वस्येशानः'' (तत्रैव) ''एतावानस्य महिमा'' (तत्रैव१०।९०।३) इति 'हि' शब्दार्थः.

माहात्म्यबोधनप्रकारम् आह विरुद्धधर्मबोधाय इति.

विरुद्धधर्मबोधाय न युक्त्यैकस्य वारणम्।।८८।।

यत्र एवं परस्परविरुद्धाः धर्माः बोध्यन्ते सएव महान्. ते धर्माः उभये सत्याः, अन्यथा माहात्म्यं न सिद्ध्येत्, नटवत्. अतो युक्त्या अन्यतरस्य न बाधः।।८८।।

शङ्का:''अस्थूलमनण्वम्'' (बृहदा.उप.३।३।८) इत्यादि ''निरवद्यं निरञ्जनम्'' (मुण्ड.उप.३।१।३) इत्यादिवाक्यन् सों ब्रह्मके कर्तापणेंको भी तो निषेध सिद्ध होवे हे. गीतामें ''अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'' (भग.गीता३।२७) या वाक्यसों भी ये ही निश्चय होय हे. लोकमें जो कर्ता दीखे हे वो अहङ्कार-मोह-भ्रमवारो दीखे हे. ब्रह्मकुं भी कर्ता मानोगे तो ब्रह्ममें भी ये दोष आवेंगे तासों ब्रह्मकुं कर्ता नहीं माननों चहिये.

उत्तर:श्रुति हे सो ब्रह्ममें अलौकिक कर्तापणेको स्थापन करती भई अहङ्कारादि दोष सहित लौकिक कर्तापणेको निषेध करि-वेके अर्थ ब्रह्मकुं अकर्ता कहे हे. सर्वथा कर्तापणेके निषेधमें ही यदि श्रुतिको तात्पर्य होय तो गीतामें ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'' (भग.गीता७।६) या श्लोकमें ब्रह्ममें जगत्को कर्तापणो वर्णन कियो हे तासों विरोध आवेगो. तासों ब्रह्मकी महिमा जतायवेके अर्थ ब्रह्मकुं अकर्ता बतायो हे. जेसे पुरुषसूक्तमें ''पुरुषएवेदं सर्वम्'' (ऋग्वेद:१०।९०।२) ''उतामृतत्वस्ये-शानः'' (तत्रैव) ''एवतावानस्य महिमा'' (तत्रैव१०।९०।३) अर्थ:ब्रह्म सर्वरूप हे. अमृतको भी ईशान हे. या मन्त्रमें ब्रह्मकुं सब जगत्को स्वामी बतायकें जगत्कुं भी ब्रह्मरूप ही बतायो हे. आगे लिख्यो हे के ''ब्रह्मकी महिमा हे जो अपने स्वरूपको ही आप स्वामी हो जावे हे''. यद्यपि लोकमें अपने शरीरको आप मालिक होय वा पुरुषकी महिमा नहीं होय हे अन्यन्को मालिक होय ताहीकी महिमा होवे हे तथापि ब्रह्ममें लोकविरुद्ध धर्म ही महिमा जतायवे वारो हे.

परस्पर विरुद्धधर्म जा पदार्थमें वेदनें जताये होंय वो पदार्थ ही बडो समुझनो तथा दोनों प्रकारके धर्मन्कुं भी सत्य ही समुझनो. जेसे ''समो मशकेन समो नागेन'' या वाक्यमें ब्रह्मकुं हाथीके तथा मच्छरके समान लिख्यो हे. तहां लोकमें मच्छरके समान पदार्थ हाथीके समान नहीं होय सके हे एसे तर्क करिके हाथीके समान ब्रह्मकुं बतायवे वारे वाक्यकुं मिथ्या नहीं माननो. एकवाक्यकुं यदि मिथ्या मानलियो जाय तो ब्रह्मको माहात्म्य नहीं सिद्ध होय. नट जेसे मन्त्र-औषधादिक करिके नाहर तथा हाथी बन जावे हे तेसे ब्रह्म स्वभाव करिकें ही छोटो-बडो, चल-अचल, कर्ता-अकर्ता आदिरूप हो जाय हे।।८८।।

पुराणन्तु मित्रसम्मतमिति लोकरीत्या बोधयन् कदाचिन् मायिकत्वं बोधयति इति आह मायिकत्वं पुराणेषु इति.

मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थम् उदीर्यते।।
तस्माद् अविद्यामात्रत्वकथनं मोहनाय हि।।८९।।

आसक्तिनिवृत्त्यर्थं तथा बोध्यते, अवान्तरप्रकरणानुरोधात् च तथा अवसीयते. उपसंहरति तस्माद् इति।।८९।।

पुराणन्में प्रपञ्चके मायिकत्वके प्रतिपादक जो वाक्य उपलब्ध होंय हें वाको प्रयोजन जनावे हें के पुराण मित्र समान उपदेश करिवेवारो हे, अत: लौकिक रीतिसुं समुझाते भये पुराणन्में कहुं-कहुं जगत्कुं जो मिथ्या बतायो हे सो आसक्ति दूर करिवेके अर्थ बतायोहे. जेसें कोई पुरुषनें अपने मित्रसों कही ''हे मित्र विष खानो उचित हे परन्तु शत्रुके घर भोजन करनों योग्य नहीं'' या वाक्यको शत्रुके घर भोजन नहीं करायवेमें तात्पर्य हे, विष खवायवेमें तात्पर्य नहीं हे, एसें ही विषयतारूप अन्तरा सृष्टिकुं मिथ्यात्व कहिकें आसक्ति दूर करायकें वैराग्य सिद्ध करिवेमें पुराणन्को तात्पर्य हे, सत्यब्रह्मात्मक जगत्कुं मिथ्या बता-यवेमें पुराणन्को तात्पर्य सर्वथा नहि हे. जगत्कुं मिथ्या कहिवेमें ही यदि पुराणन्को तात्पर्य होय तो भागवतमें ''विश्वं वै ब्रह्म

तन्मात्रम्'' तथा विष्णुपराणमें ''तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्'' इत्यादि अनेक स्थलन्में जगत्कुं सत्यरूपता तथा ब्रह्मात्मकता नहीं लिखते. तासों अवतार प्रकरणके अनुसार वेसे वचनन्कों वेराग्य बोधनार्थ समुझ लेनों. याको विस्तार 'आवरणभङ्ग'में या श्लोकव्याख्यानमें बहुत कियोहे।।८९।।

अस्मिन् अर्थे भगवद्वाक्यं सम्मतिरूपम् आह असत्यमप्रतिष्ठं तेइति.

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहेतुकम्।।९०।।

अतो यत्र क्वचित् जगतो मिथ्यात्वम् असत्यत्वं मायिकत्वम् इति बोध्यते तद् आसुरम् इति निश्चयः।।९०।।

तासों प्रकरणके अनुसन्धान राखे विना जगत्कुं अविद्यारूप कहेनो प्रतारणा करनो हे. श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें के हमारे सिद्धान्तमें भगवान्के वाक्यकी सम्मति हे. गीतामें ''असत्यमप्रतिष्ठम्'' (भग.गीता१६।८) या श्लोकमें जगत्कुं मिथ्यामायिक-असत्य बतायवे वारेन्कुं आसुर कहे हें.

श्लोकार्थ:वे आसुर लोग जगत्कुं असत्य, अप्रतिष्ठित तथा अनीश्वर अर्थात् ईश्वररहित बतावे हें. वे जगत्कुं स्त्री-पुरुषके संसर्गसों उत्पन्न भयो माने हें. तथा उनके मतमें जगत्की उत्पत्तिको हेतु काम ही हे ईश्वर नहीं ।।९०।।

ननु ब्रह्मवादेऽपि 'वाचारम्भण'वाक्यानुरोधाद् विकल्पानाम् असत्यत्वम् अङ्गीकर्तव्यम् इति आशङ्क्य आह अखण्डाद्वैतभाने तु इति.

अखण्डाद्वैतभाने तु सर्वं ब्रह्मैव नान्यथा।।
ज्ञानाद् विकल्पबुद्धिस्तु बाध्यते न स्वरूपतः।।९१।।

द्वेधा हि वेदान्तानां बोधन प्रकारः. ''प्रजायेय'' (तैत्ति.उप.२।६) इतिवाक्यानुरोधाद् उच्च-नीचत्वं भगवानेव प्राप्तः इति विकल्पबुद्धावपि ब्रह्मावगतिः न विरुद्ध्यते. क्वचित्पुनः विकाराः वाचैव आरब्धाइति कार्यांशम् अनादृत्य वस्तुस्वरूपविचारेण आविर्भावतिरोभावौ पृथक्कृत्य ''सन्मात्रं जगद्'' इति बोधयन्ति. तत्र प्रथमपक्षे सन्देहएव नास्ति, द्वितीयपक्षेऽपि न दूषणमिति 'तु'शद्बः. यदा अखण्डाद्वैतभानं सुवर्णग्राहकवत् सत्वेनैव सर्वं गृह्णाति तदा अवान्तरविकल्पविषयिणी बुद्धिः 'घटः'-'पटः' इति सा बाध्यते. सर्वत्र ब्रह्मैव इति बुद्धिः भवति. नतु स्वरूपतोऽपि घटादिपदार्थोऽपि धर्मी बाध्यते इति अर्थः।।९१।।

शङ्का:'वाचारम्भण' श्रुति करिके जगत्में ब्रह्मबुद्धिकुं सत्यता आवे हे तथापि घट-पटादिक विकल्पकुं तो मिथ्यापणो प्राप्त होवे ही हे.

उत्तर:वेदान्तमें ज्ञान करायवेके दो प्रकार लिखे हें मुख्याधिकारीन्के अर्थ सखण्डाद्वैत को प्रथम पक्ष हे. तामें ब्रह्मासों लेकें घास पर्यन्त जितनें हु पदार्थ हें उनमें उच्च-नीचत्वकों भगवान् ही प्राप्त हो रहे हें. अर्थात् भगवान् ही घट-पटादि पदार्थरूप हें. या रीतिकी विकल्पबुद्धि भी ब्रह्मज्ञान् सों विरुद्ध नहीं हे. तथा अन्य अधिकारीन्के अर्थ दूसरो पक्ष हे. तामें ''ये घट हे''-''ये पट हे'' एसी विकल्प बुद्धिको अनादर करिकें सब ब्रह्म हे एसी बुद्धि राखनी चहिये. जेसें सुवर्णको लेवेवारो ''ये कुण्डल हे''-''ये कडा हे'' एसी बुद्धिकों छोडिके सबन्कुं सुवर्ण मानके ही ले जावे हे एसें ही अखण्डाद्वैतको ज्ञान सुवर्णग्राहकके समान हे. जब सब पदार्थन्कुं सद्रूप ही माने हे तब ''ये घट हे''-''ये पट हे'' एसी बुद्धिको बाध हो जावे हे. सब ठिकाने ब्रह्म हे एसी बुद्धि हो जावे हे. या पक्षमें भी सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि हो जावे हे तब ''ये घट''-''ये पट'' एसी बुद्धि ही मिट जावे हे तथापि घट-पटादि पदार्थ नहीं मिटे हें. तासों या रीतसों भी जगत् मिथ्या नहीं हो सके हे.

श्लोकार्थ:अखण्डाद्वैतकी अनुभूति होयवे पर तो सम्पूर्ण भेद सहित प्रपञ्च ब्रह्मके रुपमें ही प्रतीत होवे हे. अर्थात् ब्रह्मत्वेन ही गृहीत होवे हे, अन्यथा नहीं, अर्थात् वा स्थितिमें भेदको ज्ञान नहीं होय हे. ब्रह्मज्ञान होयवे पर विकल्पबुद्धि अर्थात् भेदबुद्धिको बाध होय हे किन्तु प्रपञ्च स्वरुपत: बाधित नहीं होय हे अर्थात् प्रपञ्चके घट-पटादि स्वरुपको बाध नहीं होय हे।।९१।।

ननु घट-पटयो: द्वैतं न उपपद्यतइति प्रत्यक्षानुरोधाद् द्वैतम् अङ्गीकर्तव्यम् इति आशङ्क्य आह भिन्नत्वम् इति.

भिन्नत्वं नैव युज्येत ब्रह्मोपादानतः क्वचित्।।
वाचारम्भणमात्रत्वाद् भेदः केनोपजायते।।९२।।

कटक-कुण्डलयो: भेदो न सर्वथा भवति, उपादानस्य एकत्वात्. धर्मरुपत्वे एकस्यैव उभयं धर्मः. तयोश्च उपादानाभेदाद् भेदो न युक्तिसहः. प्रत्यक्षन्तु अभेदेपि भेदं गृह्णाति, द्विचन्द्रादिवत्. महतान्तु प्रत्यक्षं तदपि न गृह्णाति. अतः प्रमाणानुरोधाद् वाचारम्भणमात्रत्वं पदार्थानाम् अवगत्य सर्वत्र ब्रह्माभावावगतौ केन भेद: उपजायते इति अर्थः. तस्माद् भेदानुरोधेनापि ब्रह्मवादो न निराकर्तव्य: इति भावः।।९२।।

कितनेक मतवारे घडा वस्त्र आदि पदार्थन्कुं न्यारे-न्यारे देखिकें प्रत्यक्षके अनुसार घट-पटादि पदार्थन्को भेद माने हें सो भी ठीक नहीं हे. जेसें सुवर्णके बने भये कडा, कुण्डल आदि पदार्थन्में भेद नहीं होवे हे, क्योंके दोनोंको (कारण) अर्थात् बनायवेवारो एक ही पदार्थ हे एसें ही जगत्के पदार्थन्में भी भेद नहीं हे, क्योंके सब पदार्थन्को बनायवेवारो उपादानकारण ब्रह्म एक ही हे.

घट-पटादि पदार्थन्कुं धर्मरुप माने जांय तो भी एक ब्रह्मके ही दोनों धर्म भये. या पक्षमें भी उपादान-ब्रह्मके साथ अभेद हे. तासों भेद माननों युक्ति विरुद्ध हे. प्रत्यक्ष देखिवेसों तो भेद अभेदको निश्चय नहीं होय सके हे. कभी एक चन्द्रमाके भी दो चन्द्रमा दीख आवे हें. घटाकाश-महाकाशको भेद नहीं हे.

लोकमें देहसों न्यारो आत्मा भी नहीं दीखे हे तासों महात्मानको ही प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण हे. उनकुं तो सर्वत्र अभेद ही प्रतीत होवे हे तासों ‘प्रजायेय’ तथा ‘वाचारम्भण’ वाक्यके अनुसार सब ठिकानें ब्रह्मबुद्धि भये पीछे भेद करिवे वारो कोई भी पदार्थ बाकी नहीं रहे जो भेद करि सके. तासों भ्रमयुक्त लौकिक भेदप्रतीति केवलसों ब्रह्मवादको खण्डन नहीं करनो।।९२।।

एवं मायावादं निराकृत्य साङ्ख्यनिराकारणार्थम् आह साङ्ख्यो बहुविध: इति.

साङ्ख्यो बहुविधः प्रोक्त: तत्रैकः सत्प्रमाणकः।।
अष्टाविंशतितत्वानां स्वरुपं यत्र वै हरिः।।९३।।

ब्रह्मवादएव प्रथमसृष्टानां पदार्थानां साङ्ख्य-योगात् साङ्ख्यम् इति यन् मतं तद् ब्रह्मवादएव प्रविशति. स्वतन्त्रतया यानि मतानि तानि अप्रामाणिकानि तत्र एकं स्थापयति तत्रैक: इति. सतां प्रमाणसिद्धः. तस्य स्वरुपम् आह अष्टाविं-शति इति।।९३।।

या प्रकार मायावादको निराकरण करिके अब सांख्यमतके निराकरणार्थ आगेकी कारिका कहि रहे हें.

सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न भये पदार्थन्की प्रामाणिक गणना तथा उनको सम्यक् विवेचन ब्रह्मवादमें ही भयो हे अत: ‘साङ्ख्य’नामसुं प्रसिद्ध सिद्धान्तको ब्रह्मवादमें ही समावेश हे. श्रुतिसिद्धान्तसों स्वतन्त्र रीतिसों बनाये भये जे साङ्ख्यमत हें वे प्रमाण नहीं माने जावे हें. अर्थात् भागवतके द्वितीय-तृतीय तथा एकादश स्कन्धमें लिख्यो जो साङ्ख्य सिद्धान्त हे वाकु प्रमाण माननो. वो ही मनुआदि महर्षिगणनें प्रमाण मान्यो हे।।९३।।

अन्येषां दूषणप्रकारम् आह अन्ये इति.

अन्ये सूत्रे निषिध्यन्ते योगोऽप्येकः सदादृतः।।
यस्मिन् ध्यानं भगवतो निर्बीजेऽप्यात्मबोधकः।।९४।।

अन्येषां च अनुपलब्धेः. न हि महत्तत्वं प्रकृतिर्वा जगति प्रतीयते. नित्या वा प्रकृतिः निरवयवा च कथं परिणमति. अतः स्वभाववादएव प्रकृतिवादोऽपि प्रविशति इति. अन्यत् दूषणं भाष्ये विस्तरेण उक्तम्.

योगं निराकरोति योगोऽप्येकः इति. चित्तवृत्तिनिरोधो योगः, स च भगवद्ध्यानार्थम् अङ्गत्वेन उपयुज्यते, स प्रामाणिकः. यस्तु स्वतन्त्रतया फलसाधकत्वेन प्रोक्तः, तथा सिद्धिहेतुः ज्ञानात्मा च, तथा अन्ये देहेन्द्रियादिसाधकाः ते अप्रमाणिकाः. सूत्रे च निषिद्ध्यन्ते ''एतेन योगः प्रत्युक्तः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३) इति. तदाह यस्मिन् ध्यानं भगवतः इति. ''अन्ये सूत्रे निषिध्यन्ते'' इति अनुषङ्गः. ध्यानाभावेऽपि आत्मबोधाङ्गभूतः प्रामाणिकएव।।९४।।

निरीश्वर कापिल सांख्य आदि मतन्में प्रकृति, महत् आदि तत्व जा रूपमें स्वीकृत भये हें वा रूपमें उनकी उपलब्धि लोक-वेदमें नहीं होय हे अतः वो सांख्यमत सिद्धान्तमें स्वीकार्य नहीं हे. प्रकृति नित्य तथा निरवयव हे अतः वाको परिणमन हो ही नहीं सके हे. या प्रकारसों प्रकृतिपरिणामवाद मानिवे वारे सांख्यमतको पर्यवसान अथवा अन्तर्भाव अन्ततः स्वभाववादमें ही होवे हे. सांख्यमें रहे भये अन्य दूषण भाष्यमें ही विस्तार पूर्वक लिखे हें.

एसें ही योगशास्त्र भी वोही प्रमाण हे जो पुराणोक्त हे. योग चित्तकी वृत्ति रोकवेको नाम हे. भगवान्को ध्यान चित्त रुके विना नहीं हो सके हे तासों एसो योग भगवद्ध्यानको साधक हे तासों भक्तिको अङ्ग हे. जो योग भक्ति विना हि स्वतन्त्र होयकें फल देवेवारो हे वो प्रमाण नहीं हे, वाकुं लौकिक सिद्धि देयकें वृथा काल खोयवे वारो समुझनो. वा योगकुं पुराणादिकन्में भी तुच्छमान्यो हे. ज्ञानात्मादिक योग कापालिकमतमें तथा वाममार्गमें लिखे हें वे भी प्रामाणिक नहि हें. एसे ही देहेन्द्रियादिकन्कुं दृढ करिवेवारे जो जोग हें उनकुं वृथा काल खायवेवारे जानिके अप्रामाणिक मानने. उन ही योगन्को ''अनेन योगः प्रत्युक्तः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३) या व्याससूत्रमें खण्डन कियो हे.

योग वो ही प्रमाण हे जामें भगवान्को ध्यान लिख्यो होय. जा योगमें ध्यान नहीं लिख्यो होय वाकुं केवल आत्मज्ञानको अङ्ग समुझनो, वाकुं वा ही विषयमें प्रमाण समुझनो।।९४।।

उपसंहार

एवं परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा निरूपितस्य भक्त्युपयोगम् आह वैराग्य इति.

वैराग्यज्ञानयोगश्च प्रेम्णा च तपसा तथा।।

एकेनापि दृढेनेशं भजन् सिद्धिमवाप्नुयात्।।९५।।

पञ्चाङ्गयुक्तः पुरुषो भगवन्तं भजेत्. तत्र प्रथमं वेराग्यम् अङ्गम्, तदभावे भगवदावेशाभावात् न भजनसिद्धिः. द्वितीयं ज्ञानं सर्वपदार्थनां याथार्थ्यरूपं भगवतश्च, तदभावे निश्चयाभावात् न प्रवृत्तिः. योगोऽपि अङ्गम्, मनसः चाञ्चल्ये भजनानुपपत्तेः. तथा प्रेमापि अङ्गं, तदभावे भजनं स्वतःपुरुषार्थरूपं न भवेत्. रसाभिव्यक्त्यभावात्. तपोऽपि अङ्गं, तदभावे देहादेः आत्मत्वात् न भजनं सिद्ध्यति, तपसा च देहेन्द्रियादीनां पाकः.

पञ्चानां समुदायो दुर्लभइति गौणपक्षम् आह एकेनापि इति. 'दृढेन' इति विशेषः. ईशं समर्थं कृष्णम्. सिद्धिं मोक्षम्।।९५।।

इतने ग्रन्थ करिके परमतको निराकरण कियो तथा स्वमतको वेदादिके अनुसार स्थापन कियो. अब या मतको भक्ति-मार्गमें उपयोग दिखावेहें.

पांच साधन सहित पुरुषकों भगवान्‌को भजन करनो चहिये. प्रथम तो १वैराग्य अर्थात् विषयभोगकी तृष्णाकुं छोडनो चहिये, क्योंके जहां तांई विषयभोगकी इच्छा नहिं मिटे हे तहां तांई भगवान्‌को आवेश नहिं आवे हे, ओर भगवान्‌को आवेश आये विना भगवद्भजन नहिं सिद्ध होय हे. दूसरो साधन २ज्ञान, अर्थात् जा पदार्थको जेसो स्वरूप हे वेसो ही स्वरूप वा पदा-र्थको जान लेनो, तथा भगवान्‌को भी शास्त्ररीतिसों यथार्थ स्वरूप जान लेनो, याको नाम 'ज्ञान' हे. या विना भगवद्भजन्‌में प्रवृत्ति हु नहिं होय. तीसरो साधन ३योग हे, अर्थात् चित्तके रोकिवेको नाम 'योग' हे. चित्तके रुके विना भगवद्भजन बन नहिं सके हे. चतुर्थ साधन ४प्रेम हे. प्रेम विना भगवद्भजन्‌में रस नहिं प्रकट होवे हे, रस आये विना भगवद्भजन्‌कुं मुख्य फलरूप नहिं माने हे. तहां तांई अन्य फलकी कामना करिके करी गई भक्ति स्वतः पुरुषार्थरूप स्वतन्त्र नहीं कहावे हे. भगवद्भजनको ५.तप पांचवो साधन हे. तप विना देहेन्द्रियादिक कच्चे रहे हें. तप करकें ही देह-इन्द्रिय आदि पक जावे हें. जब देहेन्द्रियादिक पक्के होंय तब हि भगवद्भक्ति बन सके हे.

परन्तु इन पांच साधनन्‌को सिद्ध होनो बहुत दुर्लभ हे. तासों मुख्य रीतिसों भजन नहिं बन सके तो गौण रीतिसों ही करनो. इन कहे पांच साधनन्‌मेंसों एक साधनकुं भी दृढ करिके वासों सर्वसमर्थ श्रीकृष्णको भजन कियो जाय तो मोक्ष होवे हे।।९५।।

एवम् उत्पत्तिप्रकारेण परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा काल-द्रव्य-गुणैः त्रेधैव प्रलयः इति प्रलय-प्रकारेणापि परमतं निराकर्तुम् आह ज्ञाने लयप्रकारा हि इति.

ज्ञाने लयप्रकारा हि जगतो बहुधोदिताः।।

मनसः शुद्धिसिद्ध्यर्थम् एकः साङ्ख्यानुलोमतः।।९६।।

ज्ञानमार्गे जगतो लयप्रकारा बहवः उक्ताइति ते सर्वे प्रकरणाभावात् मनसः शुद्ध्यर्थं ज्ञेयाः, यतः त्रिविधएव सङ्क्रमः, कालेन नित्यः. द्रव्येण सङ्कर्षणमुखाग्निना नैमित्तिकः, गुणैः प्राकृतिकः. तएव प्रकारान्तरम् आपन्नाः भाव-नया साधिता आत्यन्तिकशब्दवाच्या भवन्ति. नतु आत्यन्तिको अतिरिक्तः, अहन्ता-ममतानाशएव विषयाणां नाशोप-चारात्. ततो अतिरिक्तकल्पनायां प्रमाणाभावः. भावनया फलं भवतीति तदाह मनसः शुद्धिसिद्ध्यर्थम् इति. ''एकः साङ्ख्यानुलोमतः'' इति, ''अन्ने प्रलीयते मर्त्यः'' (भाग.पुरा.११।२४।२२) इत्यादिना निरूपितः।।९६।।

कितनेक मनुष्य ''ज्ञानसों जगत्को लय होवे हे'' या रीतिके अनेक वाक्य सुनिकें जगत्कुं अज्ञानरूप मान लेवे हें या सन्देहकुं दूर करिवेके अर्थ लयको स्वरूप दिखावे हें.

चित्त शुद्ध होयवेके अर्थ शास्त्रमें जगत्के लय होयवेके अनेक प्रकार कहे हें. मुख्य तीन प्रकार हें. एक नित्यप्रलय हे. काल करिके नित्य-नित्य सर्व पदार्थन्को लय होवे हे, जेसें दियाकी ज्योतिको उपरसों लय होतो जावे हे ओर भीतरसों दूसरी निकसती जावे हे. देखिवे वारेकुं एक ही ज्योति प्रतीत होवे हे. एसें ही सब पदार्थको नित्य प्रलय होवे हे, अस्मदादिकन्कुं प्रतीत नहिं होवे हे. दूसरो नैमित्तिक प्रलय हे. ये प्रलय द्रव्य करके होवे हे. जेसें दण्डके प्रहारसों घडाको लय हो जावे हे. तीसरो प्राकृतिक प्रलय हे. ये प्रलय गुणन् करिके होवे हे. ब्रह्माकी आयुष्य पूरी भयेसों सब सृष्टिको लय होवे हे. ता समयमें क्षोभित गुणन्को भी नाश हो जावे हे. इन प्रलयन्कुं भावना करिके सिद्ध कर लेनो येही आत्यन्तिक प्रलय हे. यद्यपि भावना करिके करे भये प्रलयमें जगत्के पदार्थन्को नाश नहिं होवे हे परन्तु भावना करिके उन पदार्थन्को प्रलय भयो समुझवेसों अहन्ता-ममताको नाश हो जावे हे वाहीसों विषयन्को नाश अथवा आत्यन्तिक प्रलय कहे हें. इन तीन प्रकार विना केवल ज्ञान करिके जगत्को नाश माननों प्रमाण विरुद्ध हे. वेसी कल्पनासों कछु फल भी नहिं होवे हे.

साङ्ख्यशास्त्रोक्त लयकी भावना करिवेको प्रकार एकादाश स्कन्धके चतुर्विंशाध्यायमें लिख्यो हे:अन्नमें शरीरके लयकी भावना, अन्नको धानामें लय, धानाको भूमिमें, भूमिको गन्धमें, गन्धको जलमें, जलको रसमें, रसको ज्योतिमें, ज्योतिको रूपमें, रूपको वायुमें, वायुको स्पर्शमें, स्पर्शको आकाशमें-या प्रकार परमेश्वरमें सब पदार्थन्के प्रलयकी भावना लिखी हे. आगेके श्लोकमें ''एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः, मनसो हृदि तिष्ठेत'' (भाग.पुरा.११।२४।२८) अर्थ:एसी भावना करिवे वारेके हृदयमें आत्माध्यासरूप अहङ्कारात्मक भ्रम नहिं रहे हे ये ही फल लिख्यो हे. देहनाश अथवा जगत्को नाश होनो फल नहिं लिख्यो हे. एसो ही होय तो भावना करिवे वारेको वाही समय देहनाश हो जानो चहिये. प्राकृतिक प्रल-यकी भावनाको नाम प्राकृतिक आत्यन्तिक लय हे. नित्य प्रलयकी भावनाको नाम नित्य-आत्यन्तिक लय हे. नैमित्तिक प्रल-यकी भावनाको नाम नैमित्तिक-आत्यन्ति लय हे।।९६।।

प्रकारान्तरम् आह इन्द्रियाणाम् इति.

इन्द्रियाणां देवतात्वं भावनाप्रापणे तथा।।
गोविन्दासन्यसेवातः प्रापणं नान्यथा भवेत्।।९७।।

''वाचमग्नौ सवक्तव्यम्'' (भाग.पुरा.७।१२।२६) इत्यादिना प्रापणेन तदंशमात्रलयो भिन्नो भवतीति तत्प्र-कारम् आह गोविन्दासन्यसेवात: इति. अयं लयो रूपान्तरापादकः कार्यरूपः उत्पत्तिरेव न लय: इति भावः।।९७।।

लयभावनाके एक अन्य प्रकारको निरूपण करे हें.

श्लोकार्थ:या ही प्रकार देवत्वभावनासों देवभावको प्राप्त होयवे पर इन्द्रियन्को लय होवे हे. गोविन्दकी सेवा अथवा आसन्य-प्राणकी उपासनासों इन्द्रियन्कुं देवतात्व प्राप्त होवे हे. इन्द्रियन्कुं देवतात्वकी प्राप्ति अन्य कोई प्रकारसुं नहीं हो सके हे.

लयभावनाको एक प्रकार सप्तम स्कन्धमें लिख्यो हे. तहां वाक्यन् सहित वाणीको अग्निमें न्यास करनो, शिल्प सहित हस्तको इन्द्रमें न्यास करनो कह्यो हे. या रीतिसों इन्द्रियन्को तत्वन्को लय दिखायो हे सो भी यतिधर्ममें वैराग्य होयवेके अर्थ दिखायो हे, कछु वो सृष्टिप्रकरण नहिं हे. पहिलो या ग्रन्थमें देह-सङ्घातके लयको प्रकार दिखायो हे, वो भी लय मनकी भावनामात्रसों नहिं होय हे किन्तु आसन्यकी अथवा गोविन्दकी सेवा करिके इन्द्रियन्में देवभाव होवे तब देवांशको लय होय, तब देहको लय होवे हे. ये लय रूपान्तर, अर्थात् दूसरेरूपकुं सिद्ध कर देवे वारो हे।।९७।।

प्रकारान्तरम् आह अद्वय इति.

अद्वयात्मदृढज्ञानाद् वैराग्यं गृहमोचकम्।।
वागादिविलयाः सर्वे तदर्थं मन आदिषु।।९८।।

''वाचं जुहाव मनसि'' (भाग.पुरा.१।१५।४१) इत्यादिना सङ्घातस्य लयभावनया अद्वयात्मदृढज्ञानं भवति, तस्य वैराग्यहेतुत्वम्. रागाभावस्य च सन्न्यासोपयोगः. अतएव न कारणे लयः उक्तः।।९८।।

श्लोकार्थ:अद्वयात्माके दृढ ज्ञानसों गृहमोचक अर्थात् गृहत्याग करायवे वारो वैराग्य होवे हे. मन आदिमें वागादि इन्द्रियन्के विलयकी भावना करिवेको प्रतिपादन वाही वैराग्यके अर्थ कियो हे.

जेसें कीडा भृङ्गीकी भावना करते-करते भृङ्गी होवे हे या न्यायसों भावनासों पहिले रूपको तो त्याग नहिं होय अपितु वाही पदार्थको अन्य रूप होय जाय—ये उत्पत्तिको ही प्रकार हे, ये लय नहिं हे. एसें ही राजा युधिष्ठिरने भी सङ्घातके लयकी भावना करी हे तहां वाणी, मन, प्राण आदि नव अग्निमें नव आहुतिन् करिके कल्पना मात्रसों होम कियो. या होममें अपने नियामकन्में होमकी भावना करी जावे हे, जेसें वाणीको होम मनमें कियो जावे हे, क्योंके वाणी मनके आधीन हे. मनको होम प्राणमें कियो जावे हे, क्योंके ''प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः'' (छान्दो.उप.६।८।२) या श्रुतिमें मनकुं प्राणके आधीन लिख्यो हे. इत्यादि प्रकारको भी अद्वयज्ञान दृढ होवे हे, वासों वैराग्यको सन्यासमें उपयोग हे. राजाने सन्न्यासकी सिद्धिके अर्थ ही एसी भावना करी हती यासों ये निश्चय भयो।।९८।।

एवं लयत्रयम् उक्त्वा प्रकृतोपयोगम् आह भावनामात्रतः इति.

भावनामात्रतो भाव्या न हि सर्वात्मना लयः।।
मनोमात्रत्वकथनं तदर्थं जगतः क्वचित्।।९९।।

सर्वात्मना कालादिनेव न लयः. ''देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा'' (भाग.पुरा.११।२३।५०) इत्यादिवाक्यानां बाधकत्वम् आशङ्क्य तेषामपि वैराग्योपयोगित्वम् इति आह मनोमात्रत्वकथनम् इति।।९९।।

उपर्युक्त तीनों लय भावनामात्रसों वैराग्यकी सिद्धिके अर्थ करने योग्य हैं. काल आदि द्वारा प्रपञ्चको जा प्रकार लय होवे हे वा प्रकारको प्रपञ्चको लय इनकुं नहीं समुझनो. कहुं-कहुं वैराग्य, मनःशुद्धि आदिके सिद्ध्यर्थ जगत् वा देहादि के मनोमात्रत्वको प्रतिपादन भयो हे.

जितने लयके प्रकार हैं भावनामात्र करिके भाव्य हैं. देहादिकन्को लय करिव वारे नहिं हे. एसें ही जहां देहादिकन्कुं मनोमात्रता लिखी हे वो भी वैराग्य होयवेके अर्थ ही लिखी हे. वेसें भिक्षुगीतामें वैराग्य प्रकरणमें ''देहं मनोमात्र मिमम्'' (भाग.पुरा.११।२३।५०) या श्लोकमें लिखी हे।।९९।।

एवं मतान्तराणि निराकृत्य तेषां फलाभावं वक्तुं येनकेनापि मार्गेण भगवद्भजनं चेत् फलाय भवेत् तदा न एकान्ततः स्वमतं साधकं भवति इति मार्गन्तरवर्तिनां भगवद्भजनेऽपि फलाभावम् आह भक्तिमार्गानुसारेण इति सार्द्धेन.

भक्तिमार्गानुसारेण मतान्तरगता नराः।।
भजन्ति बोधयन्त्येवम् अविरुद्धं न बाध्यते।।
नैकान्तिकं फलं तेषां विरुद्धाचरणात् क्वचित्।।१००।।

नहि मायावादादिमते श्रीकृष्णादिः व्यवहारत्वाद् ब्रह्म भवितुम् अर्हति. ते तु सदानन्द-चित्स्वरूपम् इति चाहुः. अतः स्वमते यथा तथा पदार्थसिद्ध्यभावात् चेद् भक्तिमार्गानुसारेणैव वदन्ति इति ज्ञातव्यम्, तदा तेषां प्रतितन्त्रन्यायाभ्युपगमसिद्धान्तो भवति. तावता तेषां फलं भविष्यति इति आशङ्क्य आह नैकान्तिकम् इति. कस्यचिद्

भक्तेरेव अतिशये नाममात्रेण मायावादित्वे बिल्वमङ्गलादीनामिव मोक्षो भवेदपि, नतु स्वमतपक्षपाते, अतो नैकान्तिकं फलम्. तत्र हेतुः, विरुद्धाचरणाद् इति. भगवति कदाचिद् अन्यथाभावनया स्वाज्ञानकल्पितत्वादिना।।१००।।

एसें मतान्तरको निराकरण करिके भक्तिमार्गकी रीतिसों भगवद्भजन करे हें उनकुं ही फल मिले हे. अन्य मार्गवर्ती होयकें भजन करे तो फल नहिं होय हे ये आज्ञा करे हें. ''भक्तिमार्गानुसारेण'' इति.

श्लोकार्थ:अन्य मतन्को अनुसरण अथवा अवलम्बन करिवे वारे लोग यदि भक्तिमार्गानुसार भगवान्को भजन करे हें तथा तदनुसार ही पदार्थन्को बोध करावे हें तो उनको या प्रकारको अविरुद्ध भजन बाधित नहीं होय हे, किन्तु उन लोगन्कुं भक्ति-मार्गसों विरुद्ध आचरण करिवेके कारण ऐकान्तिक फल अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं होवे हे.

मायावादादि मतमें ब्रह्मकुं व्यवहारके योग्य नहिं माने हें ओर श्रीकृष्णकुं व्यवहारके योग्य माने हें तासों उनकी रीतिसों श्रीकृष्ण ब्रह्म ही नहिं होय सकें हे.

कदाचित् कहोगे के उनके मतमें सदानन्द-चित्स्वरूपकुं ब्रह्म कहे हें, तो वे भी भक्तिमार्गानुसार ही कहि रहे हें एस ही जाननो चहिये, क्योंके जा शास्त्रको जो अङ्गीकार कर लेवे हे वो पुरुष वा शास्त्रके मतकुं ही अपनो मुख्य सिद्धान्त माने हे. तथा 'अन्धहस्ति'न्याय करिकें एक-एक शास्त्र ईश्वरके एक देशको प्रतिपादन करिवे वारे हें तासों वा मत करिकें फल भी अवश्य होयगो.

तहां उत्तर देत हें. मायावादीके मतमें मोक्ष कोई पुरुषको होवे तो भी मायावाद भगवद्भजनको साधक नहिं हो सके हे. जेसें बिल्वमङ्गल जो पूर्वावस्थामें विरुद्धाचरण वाले भी हते परन्तु पीछें प्रबल भक्ति करिकें मोक्षकों प्राप्त भये एसें प्रबल भक्ति होय तो नाम मात्रको मायावादी भी होय तो भी मोक्ष हो जाय. यदि मायावादको पक्षपात नहिं करें तो, क्योंके मायावादकी रीतिसों भगवान्में विपरीत भावना करिकें अज्ञानकी कल्पित बुद्धि हो जाय तो भक्ति सर्वथा सिद्ध नहिं होय. यासों मायावादादि मतमें भक्तिविरुद्ध आचार होयवेसों फलप्राप्तिको निश्चय नहिं होय सके हे ये बात सिद्ध भई।।१००।।

एवं परमतं निराकृत्य, स्वमते यथा भजनं तथा सङ्कलीकृत्य आह एवं सर्वम् इति.

एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः।।
यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः।।१०१।।

एवं सर्वं निश्चित्य, सर्वं भगवतएव, सएव च सर्वम् इति वैदिक-गौणमुख्यज्ञानयुक्तः, प्रेम्णा श्रवणादिप्रकारेण यः भजते स भक्तिमार्गे उत्तमः।।१०१।।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें जो या ग्रन्थमें ज्ञान वर्णन कियो ताको निश्चय करिकें, अर्थात् सब जगत् भगवान् सों ही प्रकट भयो हे तथा भगवान ही सर्वरूप हें एसें गौण-मुख्य भावसों भगवान्को माहात्म्य जानिकें, चित्तके वैराग्यद्वारा विषयभो-गकी आसक्ति छोडिकें, योगके द्वारा चित्तकों एकाग्र करिके, तपश्चर्याके द्वारा देहेन्द्रियादिकन्कुं पक्के करिके उत्कट प्रेमसों प्रकट भयो जो रस वा रसके बढवेसों भक्तिको ही परम पुरुषार्थरूप मानिकें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मसमर्पण रूप नव प्रकार करिकें भगवान्को भजन करे हे वो उत्तमाधिकारी हे।।१०१।।

प्रेमाभावे मध्यमः स्याज्ज्ञानाभावे तथादिमः।।
उभयोरप्यभावे तु पापनाशस्ततो भवेत्।।१०२।।

शास्त्रार्थज्ञानाभावेऽपि प्रेम्णा भजने मध्यमः. प्रेमाभावे मध्यमः इति वा. ज्ञानाभावे तथा मध्यमः इति अर्थः. आदिमो वा. उभयोः अभावे श्रवणादीनां पापनाशकत्वं धर्मत्वं वा, नतु भक्तिमार्गः इति अर्थः।।१०२।।

जो मनुष्य शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकुं तो नहिं जानतो होय परन्तु उत्कट प्रेम करिकें श्रवण–कीर्तनादि नव भक्ति करिकें भगवत्सेवा करतो होय वाकुं मध्यमाधिकारी कहेनो, क्योंके माहात्म्य जानिकें वाको प्रेम भयो हे तासों वो प्रेम गौण हे. जो पुरुष शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकुं जानके प्रेमविना श्रवणादि नवप्रकारन्के द्वारा भगवद्भजन करे हे वामें मुख्य अङ्ग प्रेमके नहिं होयवेसों वाकुं भी मध्यमाधिकारी कहेनों. जो पुरुष शास्त्रद्वारा भगवन्माहात्म्यकुं भी नहिं जानें हे, जामें सबसों अधिक उत्कट प्रेम भी नहिं हे, साधारण प्रेम करिके श्रवणादि नवप्रकारसों भगवद्भजन करे हे वाकुं 'आदिम', अर्थात् हीनाधिकारी कहनो. जो पुरुष ज्ञानवारो भी नहिं होय तथा प्रेमवारो भी नहिं होय, केवल श्रवणादि नव प्रकारन्सों भगवद्भजन करतो होय वा पुरुषको पापनाश मात्र होय हे, क्योंके श्रवणादिकन्कुं पानाशकता भागवत द्वितीयस्कन्धमें ''लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषम्'' (भाग.पुरा.२।४।१२) या श्लोकमें लिखी हे. अथवा प्रेम–ज्ञान विना श्रवणादिककुं चान्द्रायणादिकन्के समान धर्मरूप समुझनो परन्तु माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेह रहित हे तासों भक्तिमार्गीय वे नहिं होय सके हे।।१०२।।

तपोवैराग्ययोगे तु ज्ञानं तस्य फलिष्यति।।
योगयोगे तथा प्रेम स्तुतिमात्रं ततोऽन्यथा।।१०३।।

तपोवैराग्यसहितं चेत् श्रवणादिकं भवेद्, अन्यतरसहितं वा, तदा जन्मान्तरे ज्ञानं भविष्यति इति ज्ञातव्यम् ''बहूनां जन्मनामन्ते'' (भग.गीता.७।१९) इति वाक्यात्. योगसहितभजने प्रेम. प्रथमस्य मध्यमत्वं, मध्यमस्य उत्तम–त्वम् इति क्रमः. मार्गाङ्गाभावे केवलश्रवणादीनां यत् परमपुरुषार्थसाधकत्वं निरूप्यते तद् भगवतः स्तोत्रनिरूपणं, 'धन्यो अहम्'' इत्यादिवत्. प्रमेयबलेन तेषां सिद्धिः भवति चेद् भवतु, न अन्यथा इति अर्थः।।१०३।।

जो पुरुष तप–वैराग्य सहित होयकें श्रवणादि नव प्रकारसों भगवद्भजन करे हे अथवा केवल तप सहित होयकें अथवा केवल वैराग्य सहित होयकें श्रवणादि नव प्रकारसों भगवद्भजन करे हे वाके किये भये श्रवणादिकन्कुं ज्ञानमार्गीय समुझनो. विन श्रवणादिकन्सों जन्मान्तरमें ज्ञानप्राप्ति होवे हे.

जो पुरुष योगद्वारा चित्तकुं एकाग्र करिके केवल योग सहित होयकें श्रवणादिक नव भक्ति करे हे वाके श्रवणादिक भक्तिमार्गीय हें तासों विन श्रवणादिकन्सों प्रेम प्रकट होवे हे. साधन करते–करते प्रथमाधिकारी हे सो मध्यमाधिकारी हो जावे हे, मध्यमाधिकारी साधन करते–करते उत्तमाधिकारी होय जावे हे.

ज्ञानमार्गकी रीतिसों अथवा भक्तिमार्गके अनुसार करे भये ही श्रवणादिक भगवप्राप्ति साधक हें. ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग विना तथा तप–वैराग्य–ज्ञान–प्रेम–योगरूप पांच साधन विना केवल श्रवणादिककुं जो परमपुरुषार्थ साधक कहे हें वो भगवान्की स्तुतिमात्र हे. अर्थात् ''कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्'' इत्यादि वाक्यन्कुं भगवान्की स्तुति करिवेवारे जानने. जेसे कोई पुरुषके घर कोई महात्मा पधारे तब वो कहे हे ''में धन्य हुं, मेरे घर आप पधारे'' वाको एसे कहेनो महा–त्माकी स्तुति करनों ही केवल समुझो जावे हे, एसें ही केवल श्रवणादिकन्कुं पुरुषार्थ साधक बतायके भगवान्की स्तुति करी हे. अर्थात् भगवान् बडे कृपालु हें, साधन विना केवल श्रवणादिकसों ही पुरुषार्थसिद्धि करि देत हें इत्यादि. तात्पर्य ये हे के कभी भगवान् अपनें प्रमेयबलसों पञ्च साधन रहित केवल श्रवण–कीर्तनादिकन्सों भी सिद्धि देत हें, जेसें अजामिलकुं भगव–त्प्राप्ति भई. परन्तु शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार तो ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग की रीतिसों पञ्चाङ्ग सहित अथवा पांचन्मेंसों कोई एक दृढ अङ्ग सहित हि श्रवणादिक भगवत्प्राप्ति करायवे वारे हें ये ही सिद्धान्त सिद्ध होवे हे।।१०३।।

एवं शास्त्रार्थम् उक्त्वा उपसंहरति अर्थोऽयमेव इति.

अर्थोयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैः रामायणैः सहितभारतपञ्चरात्रैः।।
अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव।।१०४।।

इति श्रीश्रीकृष्णव्यासविष्णुस्वामिमतवर्ति श्रीवल्लभदीक्षितविरचिते
तत्त्वार्थदीपनिबन्धे शास्त्रार्थकथनं प्रथमं प्रकरम्।।

सर्वेषां प्रमाणानाम् अत्र एकवाक्यता. अन्येषु वाक्याभासाएव. रामायणानां बहुत्वं सर्वकल्पेष्वपि एवमेव प्रतिपादयन्ति इति ज्ञापनार्थम्. भारत–पञ्चरात्रयोः रामायणशेषत्वं चरित्रप्रतिपादकत्वाविशेषात्. अन्यानि शास्त्राणि पुराणरूपाणि. तच्छेषत्वं भारतादेः. तत्त्वसूत्राणि चतुर्लक्षणी मीमांसा. तैः सर्वैरपि ज्ञानं प्रेमसहितं कर्तव्यम् इति निर्णीयते. अन्यथा चतुर्दशविद्यानां सरस्वतीरूपत्वाद् एकनिष्ठता न स्यात्. तत्रापि सहृदयम्, भावोऽपि तस्याः एकत्रैव इति. अयम् अर्थः सरस्वतीभर्त्रैव ज्ञायतइति 'हरिणा' इति उक्तम्. कदाचिद् अन्यथा केचिद् वक्ष्यन्तीति तन्निराकरणार्थं 'सदा' इति।।१०४।।

या प्रकारसों शास्त्रार्थ अर्थात् भगवद्गीताशास्त्रके प्रतिपाद्य अर्थको निरूपण करिके प्रस्तुत प्रकरणके उपसंहारको उपक्रम करे हें.

श्लोकार्थ : सभी वेदवाक्य, महाभारत, पञ्चरात्र, आगम, रामायण तथा ब्रह्मसूत्र सहित अन्य शास्त्रके वचनन्में ये ही ब्रह्मवादको प्रतिपादन भयो हे, ये ही सिद्धान्त कह्यो गयो हे. भगवान् श्रीहरिने गीतामें या ही सिद्धान्तको सर्वकालिक सत्यके रूपमें निर्धारण कियो हे तथा उनको तात्पर्य भी या ही सिद्धान्तमें हे.

श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करे हें के मुख्य सिद्धान्त ये ही हे. यामें सब प्रमाणन्की एकवाक्यता हे, अर्थात् समस्त वेदवाक्य, रामायण, तदङ्गभूत भारत–पञ्चरात्र तथा समस्त पुराण–व्याससूत्र इन सब प्रमाणन् करिकें प्रेम सहित ज्ञान सिद्ध करनो ये ही निर्णय होवे हे. अन्य रीतिसों निर्णय कियो जाय तो चतुर्दशविद्यारूप सरस्वतीकी एकनिष्ठता कभी नहिं होय सके हे. तहां भी सरस्वतीको हृदय सहित भाव निजपति एक भगवान्में ही हे तासों पतिव्रताके अभिप्रायकुं जेसें पति विना अन्य कोउ नहिं जान सके हे एसें सरस्वतीके या प्रकारके अभिप्रायकुं सरस्वतिके भर्ता श्रीहरि ही जानें हे. ये एकादश स्कन्धमें भगवान्नें आज्ञा करी हे. ''इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन''. अर्थःया सरस्वतीके हृदयके अभिप्रायकुं मेरे विना अन्य कोउ नहिं जाने हे. तासों आगे होयवे वारे विद्वान् या सिद्धान्तसों विरुद्ध कहें तो सर्वथा नहिं माननो. सदा सर्वदा याहीकुं मुख्य सिद्धान्त समुझनो–।।१०४।।

प्रमाणबलमाश्रित्य शास्त्रार्थो विनिरूपितः।।
प्रमेयबलमाश्रित्य सर्वनिर्णय उच्यते।।

इति श्रीतत्त्वदीपनिबन्धटीकायां प्रकाशाख्यायां श्रीवल्लभाचार्यकृतायां प्रथमं प्रकरणम्।।

या प्रकार प्रमाणबलको आश्रय करिके शास्त्रार्थ अर्थात् गीतार्थको सम्यक् निरूपण भयो. अब प्रमेयबलको आश्रय करिके 'सर्वनिर्णय'नामको दूसरो प्रकरण कह्यो जाय हे.

इति श्रीमद्गोस्वामिवर्यरणछोडलालात्मजजैवातृकजीवनलालविरचितायां
साचोरापण्डितगोकुलदासेन लोके प्रकटीकृतायां
निबन्धतात्पर्यबोधिन्यां भाषाटीकायां
प्रथमं शास्त्रार्थप्रकरणं समाप्तम्।।
श्रीगोवर्द्धननाथो जयति।